खण्ड–1
इकाई–1. बाल्यावस्था एक परिचय
;प्दजतवकनबजपवद जव बेपसकीववकद्ध

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना ;प्दजतवकनबजपवदद्ध

1.2 उद्देष्य

1.3. बाल्यावस्था का संप्रत्यय ;ब्वदबमचज वि बेपसकीववकद्ध
- 1.3.1. बाल्यावस्था का अर्थ ;डमंदपदह वि बेपसकीववकद्ध
- 1.3.2 बाल्यावस्था का महत्व ;प्उचवतजंदबम वि बेपसकीववकद्ध
- 1.3.3 बाल्यावस्था की विषेषताएँ ;बिंतंबजमतेजपबे वि बेपसकीववकद्ध

1.4 अभिवृद्धि एवं विकास का अर्थ ;डमंदपदह वि ळतवजी ंदक क्मअमसवचउमदजद्ध
- 1.4.1 अभिवृद्धि एवं विकास के सिद्धान्त
  ;च्जपदबपचंस वि ळतवजी ंदक क्मअमसवचउमदजद्ध

1.5 सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृष्य से प्रभावित विकास
;ैवबपव.ब्नसजनतंस बवदजमगज – प्दसिनमदबपदह क्मअमसवचउमदजद्ध
- 1.5.1 सामाजिक–सांस्कृतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
  ;थ्ंबजवत प्दविनमदबपदह वि वबपव.ब्नसजनतंस क्मअमसवचउमदजद्ध

1.6 विभिन्न परिदृष्य में बाल्यावस्था
- 1.6.1 बाल्यावस्था और गरीबी;बेपसकीववक ंदक चवअमतजलद्ध
- 1.6.2 बालश्रम ;बेपसक स्ंइवनतद्ध
- 1.6.3 बालषोषण और बाल सुरक्षा ;बेपसक ।इनेमे ंदक बीपसक च्तवजमबजपवदद्ध

1.7 बाल्यावस्था के पालन–पोषण के परिप्रक्ष्य में
- 1.7.1 तलाक का प्रभाव ;र्मिबज वि क्पअवतबमद्ध
- 1.7.2 एकल अभिभावक परिवार ैपदहसम च्तमदजीववक थ्ंउपसलद्ध
- 1.7.3 परिवार के बिखराव ;डपहतंजपवद वि थ्ंउपसपमेद्ध

1.8 इकाई सांराष ;न्दपज ैनउउंतलद्ध

1.9 अपने प्रगति की जांच करें ;बेमबा लवनत चतवहतमेद्ध

1.10 सत्रगत कार्य/गतिविधियाँ ;।पहदउमदजध।बजपअपजपमेद्ध

1.11सन्दर्भ ;त्मिमितमदबमेद्ध

1. बाल्यावस्था ;बेपसकीववकद्ध

भूमिका ;प्दजतवकनबजपवदद्ध– बालक के विकास की दूसरी अवस्था बाल्यावस्था है। शैषवावस्था के पष्चात् बालक बाल्यावस्था में प्रवेष करता है। जब शैषवावस्था होती है तो बालक का शरीर एवं मन दोनों ही अविकिसत होते हैं। जैसे ही वह बाल्यावस्था में प्रवेष करता है उसका पर्याप्त तथ सर्वांगीण विकास होता है। वह वातावरण से सामंजस्य बैठा लेता है। बाल्यावस्था में ही बालक सबसे ज्यादा सीखता है इसलिए बाल्यावस्था ही भावी जीवन की आधारषिला है।

उद्देष्य–

1. इस अध्याय को पढ़कर बच्चे बाल्यावस्था को संप्रत्यय जान सकेगें।
2. बाल्यावस्था में बच्चों की वृद्धि एवं विकास को जान सकेगें।
3. बच्चे इस अध्याय को पढ़कर बाल्यावस्था में होने वाले वृद्धि एंव विकास के सिद्धांत को समझेगें।
4. सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास कैसे होगा उसे जान सकेगें।
5. बाल्यावस्था के विभिन्न परिदृष्य जैसे– बाल्यावस्था और गरीबी, बाल–श्रम, बाल–षोषण एवं बाल सुरक्षा क्या है और उनको रोकने के उपाय क्या है जान सकेगें।
6. बाल्यावस्था के पालन–पोषण के परिप्रेक्ष्य में बच्चों पर माता–पिता के तलाक के दुष्प्रभाव जान सकेगें।
7. बच्चे एकांकी अभिभावक परविार क्या है तथा उनमें रहने वाले बच्चों का विकास कैसे होता है जान सकेगें।
8. बच्चे परिवारों के बिखराब के कारण जान सकेगें एंव ये कारण कैसे बच्चों के विकास को प्रभावित करते हैं जान सकेगें।

2. बाल्यावस्था का संप्रत्य

2.1 बाल्यावस्था का अर्थ ;डमंदपदह व िबैपसकीववकद्ध– वृद्धि विकास की अलग–अलग अवस्थायें होती हैं। उनमें से 2 से 12 वर्ष की अवस्था को बाल्यावस्था कहा गया है। बाल्यावस्था को भी तीन भागों में बाँटा गया है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था **;म्तसल बैपसकीववकद्ध–** 2 से 12 वर्ष

- मध्य बाल्यावस्था **;डपककसम बैपसकीववकद्ध–** 6 से 10 वर्ष
- पूर्व किषोरावस्था या उत्तर–बाल्यावस्था– 10 से 12 वष

;च्तम. ।कवसमेबमदबम वत स्ंजम बैपसकीववकद्ध

2.2 बाल्यावस्था का महत्त्व ;प्उचवतजंदबम व िबैपसकीववकद्ध– बाल्यावस्था में प्रवेष करने पर बालक अपने वातावरण एंव परिस्थितियों से परिचित होने लगता है। इस अवस्था में बालक का सर्वाधिक विकास होता है। **फ्रायड** यद्यपि यह मानते हैं कि बालक का विकास पाँच वर्ष की आयु तक हो जाता है लेकिन बाल्यावस्था में विकास की सम्पूर्ण गति प्राप्त होती है। यह अवस्था बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की होती है। बालक में इस अवस्था में विभिन्न आदतों व्यवहार, रूचि एवं इच्छाओं के विभिन्न रूपों का निर्माण होता है। उन्हें रूपान्तरित करना आसान नहीं होता।

शैक्षिक दृष्टि से बाल्यावस्था एक महत्त्वपूर्ण अवस्था है। इसलिए इस काल में षिक्षा की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए तथा उन सभी साधनों एवं विधियों को उपयोग किया जाना चाहिए, जो बालक के स्वाभाविक, संतुलित एवं सर्वांगीण विकस में सहायक सिद्ध होते हैं। कोल व ब्रुस ने बल्यावस्था को जीवन का 'अनोखा काल' बताते हुए लिखा है– "वास्तव में माता–पिता के लिए बाल–विकास की इस अवस्था को समझना कठिन है।"

2.2 बाल्यावस्था की मुख्य विषेषताएँ–

- **शारीरिक व मानसिक स्थिरता–** 6 या 7 वर्ष की आयु के बाद बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास में स्थिरता आ जाती है। इस अवस्था में विकास की गति में स्थिरता एवं स्थायित्व आ जाता है। विकास की दृष्टि से इस अवस्था को 2 भागों में बाँटा गया है। 6 से 9 वर्ष तक संघर्ष काल और 10 से 12 वर्ष तक परिपक्वता का काल।
- **मानसिक योग्यताओं में वृद्धि–** बाल्यावस्था में बालक की मानसिक योग्यताओं में निरंतर वृद्धि होती है उसकी संवेदना और प्रत्यक्षीकरण की शक्तियों में भी वृद्धि होती है वह पहले से अधिक तर्क–वितर्क करने लगता है और अधिक से अधिक केन्द्रित कर सकता है।
- **जिज्ञासा की प्रवलता–** इस अवस्था में बालक में जिज्ञासा की प्रबलता पाई जाती है वह जिन भी चीजों को देखता है उनके बारे में हर तरह की जानकारी प्राप्त करना चाहता है। ऐसा क्यों है? ये कैसे हुआ? इत्यादि प्रषनों को वह सभी से पूछता है।
- **वास्तविक जगत के सम्बन्ध––** इस अवस्था में बालक, शैषवावस्था के काल्पनिक जगत से जब वास्तविक जगत में प्रवेष करता है तब उसके ज्ञान एवं अनुभवों में वृद्धि होती है। इस तरह वह जीवन के वास्तविकताओं से परिचित होता है और वास्तविक जगत में सही तालमेल बिठाना अच्छे से सीखता है।
- **नैतिकता का विकास–** जब बालक शैषवास्था में बालक न तो नैतिक होता है और न ही अनैतिक होता है और जैसे–जैसे बालक बाल्यावस्था में प्रवेष करता है उसमें नैतिकता का विकास होने लगता है। सामाजिकता से बालक में नैतिकता का प्रार्दुभाव होने लगता है वह ऐसे कार्य करता है जिससे उसकी प्रषंसा हो।
- **सामाजिक गुणों का विकास–** शैषवास्था में बालक के सामाजिक सम्पर्क का दायरा बहुत ही सीमित होता है अतः उसमें सामाजिक गुणों का विकास कम होता है। जैसे–जैसे बालक शैषवास्था से बाल्यावस्था में आता है इसका सामाजिकता का दायरो बढ़ने लगता है क्योंकि बाल्यावस्था में प्रवेष करने के साथ–साथ बच्चे विद्यालय जाना प्रारम्भ कर देते हैं। विद्यालय में बालकों का पर्याप्त समय अपने समूह के सदस्यों के साथ व्यतीत करते हैं अतः उनमें सामाजिक गुणों का विकास होता है जैसे– सहयोग सद्भावना, सहनषीलता, आज्ञाकारिता आदि।
- **संचय प्रवृति का विकास–** बाल्यावस्था में बालक में रूचि और जिज्ञासा का विकास होता है साथ ही उसमें संचय प्रवृत्ति का विकास भी होता है। इस अवस्था में बालक टिकिट, तस्वीरें, बाल, बेंट आडि एकत्रित करते हैं तथा बालिकाओं में चित्र, खिलौने, गुड़िया और कपड़ों के टुकड़ों का संग्रह करने की प्रवृत्ति पाई जाती है।
- **खेल–कूद के प्रति आकर्षण–**बाल्यावस्था में बालकों में खेल–कूद के प्रति कॉफी लगाव होता है। सामूहिकता की भावना से प्रेरित होकर वह अपने साथियों के साथ खेल–कूद में भाग लेता है। बालक जिस समूह का सदस्य होता है वह अपने समूह के सदस्यों के प्रति दायित्वों का अनुभव करता है तथा हर समूह का एक बालक नेता होता है तो बाकी सभी बालक उसकी आज्ञानुसार कार्य करता है और धीरे–धीरे उसमें सामाजिकता की भावना भी बढ़ती जाती है।

वृद्धि एवं विकास के सिद्धान्त–

अभिवृद्धि का विकास का अर्थ– मानव विकास का अध्ययन षिक्षा मनोविज्ञान का महत्त्पूर्ण अंग है। एक षिक्षक को बालक की अभिवृद्धि के साथ–साथ उसमें होने वाले विभिन्न प्रकार के विकास का ज्ञान होना भी आवष्यक है तभी वह ठीक प्रकार से उसका ज्ञान दे पायेगा।

फ्रेंक ने अभिवृद्धि को समझाते हुए लिखा है कि शरीर एवं व्यवहार के किसी पहलू में होने वाले परिवर्तन अभिवृद्धि कहलाते हैं तथा समय से व्यक्ति में जो परिवर्तन दिखाई देता है वे विकास कहलाते हैं। **मेरेडिथ** के शब्दों में– "कुछ लेखक अभिवृद्धि का प्रयोग केवल आकार की वृद्धि के अर्थ में करते हैं और विकास का प्रयोग विभेद या विषिष्टीकरण के रुप में करते हैं।"

अभिवृद्धि और विकास का अर्थ समझने के लिए हमें उनके अन्तर को समझ लेना आवष्यक हैं। **सोरेन्स** के अनुसार – सामान्य रुप से 'अभिवृद्धि' शब्द का प्रयोग शरीर और उसके अंगों के भार और आकार में वृद्धि के लिए किया जाता है इस वृद्धि को नापा जा सकता है। 'विकास' का सम्बन्ध 'अभिवृद्धि' से अवष्य होता है पर यह शरीर के अंगों में होने वाले परिवर्तनों को विषेष रूप से व्यक्त करता हैं। उदाहरण– हड्डियों के आकार में वृद्धि होती है पर कड़ी हो जाने के कारण उनके स्वरुप में परिवर्तन भी हो जाता है।

"अभिवृद्धि और विकास" की प्रक्रियाएँ उसी समय से आरम्भ हो जाती है जिस समय से बालक का गर्भाधान होता है। ये प्रक्रियाएँ, उनके जन्म के बाद भी चलती रहती है फलस्वरुप, वह विकास की विभिन्न अवस्थाओं में से गुजरता है, जिनमें उनका शारीरिक , मानसिक, सामाजिक आदि विकास होता है।

विकास और अभिवृद्धि में अन्तर

अभिवृद्धि	विकास
1. विषेष आयु तक चलने वाली प्रक्रिया है।	1. जन्म से मृत्यु तक चलने बाली प्रक्रिया है।
2. परिणात्मक परिवर्तन की अभिव्यक्ति होती है।	2. गुणात्मक तथा परिणात्मक परिवर्तनों की अभिव्यक्ति होती है।
3. वृद्धि विकास का एक चरण है।	3. विकास में वृद्धि भी सम्मिलित हैं।
4. परिवर्तन को देखा एवं मापा जा सकता है।	4. परिवर्तन को अनुभव किया जा सकता है।
5. केवल शारीरिक परिवर्तन को प्रकट करता है।	5. शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तनों को संयुक्त रुप से परिवर्तित करता है।

वृद्धि एवं विकास के परिवर्तनों के परिणात्मक और गुणात्मक दोनों ही पहलू हैं। इसलिए समान्यतया वृद्धि और विकास की प्रक्रिया लगभग साथ–साथ चलती है और यही कारण है कि ये दोनों शब्द समानर्थक रूप में प्रस्तुत होते हैं।

वृद्धि एवं विकास की अवस्थायें– बच्चे की जीवन यात्रा और वृद्धि एवं विकास की कहानी माँ के गर्भ में आने के साथ–साथ ही शुरू हो जाती हैं। वह भी गर्भ में धीरे–धीरे वृद्धि और विकास को प्राप्त होता रहता है। जैसे–जैसे उसकी उम्र बढ़ती है उसमें सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक और नैतिक परिवर्तन आते रहते हैं। इन सभी अवस्थाओं की जीवन अवधि के साथ अच्छी प्रकार से निम्न रूप में दिखाया जा सकता है।

विकास की अवस्था	जीवन अवधि
1. गर्भकाल या गर्भवस्था	1. गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2. षिषुकाल और शैषवास्था	2. जन्म से लेकर 3 वर्ष की आयु तक
3. बाल्यकाल या बाल्यावस्था	3. वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक
।ण पूर्व बाल्यावस्था	।ण 4 वर्ष से लेकर 6 वर्ष तक
ठण उत्तर बाल्यावस्था	ठण 7 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक
4. किषोरवस्था	4. 13 वर्ष से लेकर 19 वर्ष तक
5 प्रोढ़ावस्था	5. 20 वर्ष से लेकर मृत्यु को प्राप्त होने तक

वृद्धि एवं विकास के सिद्धांत– जब बालक विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेष करता है, तब हम उसमें कुछ परिवर्तन देखते हैं। व्यक्ति विषेष में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन कुछ विषेष सिद्धांत के अनुसार होते है। इन सिद्धांतो को वृद्धि एंव विकास के सिद्धांत कहा जाता है।

1. निरन्तरता का सिद्धांत– यह सिद्धांत बताता है कि विकास एक न रूकने वाली प्रक्रिया है। माँ के गर्भ से ही यह प्रारम्भ हो जाती है तथा मृत्यु पर्यन्त निरन्तर चलती रहती हैं। एक छोटे से नगण्य आकार से अपना जीवन प्रारम्भ करके हम सबके व्यक्तित्व के सभी पक्षों शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि का सम्पूर्ण विकास इसी निरन्तरता के गुण के कारण भली–भाँति संपन्न होता है।

2. विकास की विभिन्न गति का सिद्धांत– सभी व्यक्तियों के विकास की गति भिन्न–भिन्न होती है और विभिन्नता विकास के सम्पूर्ण काल में यथावत् बनी रहती है अर्थात् विकास बराबर होता रहता है, परन्तु इसकी गति सब अवस्थाओं में एक जैसी नहीं रहती। यह गति कभी तीव्र होती है तो कभी

मन्द होती है। उदाहरणार्थ, प्रथम तीन वर्षों में बालक के विकस की प्रक्रिया बहुत तीव्र रहती है और उसके बाद यह प्रक्रिया धीमी गति से होती है। इस प्रकार वृद्धि और विकास की गति में उतार–चढ़ाव आते ही रहते हैं। किसी भी अवस्था में एक जैसी गति नहीं रहती है।

3. वैयक्तिगत अन्तर का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार बालकों का विकास अपने व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार होता है। वे अपनी स्वाभाविक गति से ही वृद्धि और विकास के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ते रहते हैं और इसी कारण उनमें पर्याप्त विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। किसी भी बालक का वृद्धि और विकास की दृष्टि से दूसरे बालक के समरूप नहीं होता है अर्थात् प्रत्येक बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास में दूसरे बालक की अपेक्षा पर्याप्त विभिन्नता देखने को मिलती है।

4. विकास क्रम की एकरूपता का सिद्धांत– विकास की गति एक जैसी न होने तथा पर्याप्त वैयक्तिक अन्तर पाए जाने पर भी विकास क्रम में कुछ एकरूपता के दर्षन होते हैं। इस क्रम में एक ही जाति विषेष के सभी सदस्यों में कुछ एक जैसी विषेषताऐं देखने को मिलती हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य जाति के सभी बालकों की वृद्धि सिर से पैर की ओर होती है जैसे बालक जन्म के प्रथम सप्ताह में केवल सिर को उठा पाता है। फिर अगले 3 माह में वह अपने नेत्रों की गति पर नियंत्रण करना सीख पाता है। 6 माह में वह अपने हाथों की गतियों पर अधिकार कर लेता है। 8 माह में वह सहारा लेकर बैठने लगता है। 10 माह में वह स्वयं बैठने और घिसट कर चलने लगता है। एक वर्ष का हो जाने पर उसे अपने पैरों पर नियंत्रण हो जाता है और वह खड़ा होने लगता है। और चलने की कोषिष करने लगता है।

5 वर्ष – सामाजिकता में पढ़ना
4 वर्ष – संख्या आकार का ज्ञान
3 वर्ष – वाक्य बोलना
2 वर्ष – आंतो पर नियंत्रण
18 माह – चलना, शब्द बोलना
12 माह – खड़ा होना
40 सप्ताह – बैठना, खिसकना
28 सप्ताह – हाथों से पकड़ने की चेष्टा करना
16 सप्ताह – सिर का संतुलन
4 सप्ताह – आँखों पर नियंत्रण
0 – जन्म
40 सप्ताह – जन्म से पूर्व की स्थिति
24 सप्ताह – शारीरिक एवं रासयनिक नियंत्रण
20 सप्ताह – गर्दन की सहज क्रिया
18 सप्ताह – मुट्ठी बन्द करना
16 सप्ताह – निगलना व छींकना
10 सप्ताह – धड़ का विकास
08 सप्ताह – गर्भावस्था
01 सप्ताह – भ्रूणावस्था
0 – गर्भाधान

विकास और अभिवृद्धि का सोपान

5. सामान्य व विषिष्ट प्रतिक्रियाओं का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार विकास और वृद्धि की सभी दिषाओं में विषिष्ट क्रियाओं से पहले सामान्य क्रियाऐं होती है जैसे– बालक अपने हाथों से कुछ चीज पकड़ने से पहले बालक इधर–उधर यूँ ही हाथ मारने या फेलाने की कोषिष करता है किसी विषेष वस्तु की ओर इषारा करने से पूर्व अपने हाथों की सामान्य रूप से चलाता हैं, परन्तु बाद में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप बालक पूरी अभिव्यक्ति करने लगता किसी विषेष वस्तु के प्रति।

6. एकीकरण का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार, बालक पहले सम्पूर्ण अंग को फिर अंग के भागों को चलाना सीखता है। उसके बाद वह उन भागों में एकीकरण करना सीखता है। उदाहरणार्थ– वह पहले पूरे हाथ को फिर ऊँगलियों को और फिर हाथ और ऊँगलियों को एक साथ चलाना सीखता है।

7. परस्पर संबध का सिद्धांत– विकास की सभी दषाएँ– शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि एक–दूसरे से परस्पर संबंधित हैं। इनमें से किसी भी एक दिषा में होने वाला विकास अन्य सभी दिषाओं में होने वाले विकास को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए जिन बच्चों में औसत से अधिक वृद्धि होती है, वे शारीरिक और सामाजिक विकास की दृष्टि से भी काफी आगे बढ़े हुये होते हैं। दूसरी ओर एक क्षेत्र में पाई जाने वाली न्यूनता दूसरे क्षेत्र में हो रही प्रगति में बाधक सिद्ध होती है। यही कारण है कि शारीरिक विकास की दृष्टि से पिछड़े बालक संवेगात्मक, सामाजिक और बौद्धिक विकास में भी उतने ही पीछे रह जाते हैं।

8. परिपक्वता एवं तत्परता का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार विकास का सीधा सम्बन्ध शारीरिक एवं मानसिक परिपक्वता से हैं। जब व्यक्ति अपने और वातावरण के प्रति समांजस्य बैठा लेता है तब वह विभिन्न प्रकार की विषिष्ट क्रियाओं को करने में सक्षम अथवा परिपक्व माना जाने लगता है। जैसे– एक वर्ष के बालक को हम पूरे वाक्य बोलने की क्रिया नहीं सम्पन्न करा सकते क्योंकि इसके लिए वह परिपक्व एवं तत्पर नहीं होता है किन्तु 2–3 वर्ष की अवस्था पूरी करने पर वह इन क्रियाओं को करने में सक्षम होता है।

9. वंषानुक्रम एवं वातावरण की अन्तः क्रिया का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति वंषानुक्रम एवं वातावरण की अन्तः क्रिया का परिणाम होता है। बालक के विकास में इन दोनों का योगदान होता है। उच्च कोटि के वंषानुक्रम लेकर उत्पन्न होने पर यदि उचित वातावरण नहीं मिल पाता है तब बालक का समुचित विकास नहीं हो पाता है। इसी प्रकार निम्न जन्मजात शक्तियों वाले बालक को बहुत अच्छा वातावरण मिलने पर भी उसका सही विकास नहीं हो पाता है। इस प्रकार मानव के विकास में वंषानुक्रम एवं वातावरण दोनों का योगदान होता है।

सामाजिक – सांस्कृतिक परिदृष्य से प्रभावित विकास

विकासात्मक कार्य बालकों की आयु विषेष तथा जीवन अवस्था विषेष से जुड़े रहते हैं उसी तरह समाज तथा संस्कृति भी बालक से जुड़े रहते हैं। बाल साहित्यों मे भी बच्चों तथा उनके बचपन को कई तरह से प्रस्तुत किया जाता है, जो हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक चिंतन को दर्षाते हैं। अब चूंकि बच्चा स्वंय में एक महत्वपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक इकाई है। हर सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बच्चे एवं बचपन को अलग–अलग नजरिए से देखा जाता है। हर जाति धर्म व परंपर में बच्चे तथा बचपन की समझ को अलग–अलग से देखा जाता है। हर जाति धर्म व पंरपरा में बच्चे तथा बचपन की समझ अलग–अलग है। जाति, धर्म, आर्थिक एवं सामाजिक दषा आदि बच्चे व बचपन को देखने के हमारे नजरिये को प्रभावित करते हैं। समाज में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों तरीकों से बच्चों को बैठना, किसके साथ खेलना व किसके साथ खाना है ये सारी बातें सिखायी जाती हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि समाज बच्चों का एक ऐसी उपर्युक्त इकाई के तौर पर भी देखता है जिन्हें सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताओं को सीखना या सिखाना वयस्कों की अपेक्षा सरल होता हैं

हम यह भी देखते हैं, कि जहाँ एक ओर अभिजात्य वर्गो में बच्चों के लालन–पालन एवं सुरक्षा की अलग अवधारणा है, वही सुविधा विहीन परिवारों में बच्चों के लालन–पालन भिन्न प्रकार से होते हैं। उदाहरण के तौर पर वैष्वीकरण के इस दौर में बच्चों के लालन–पालन के लिए आया का सहारा लिया जाता रहा है क्योंकि माता–पिता दोनों काम करते हैं जिसके कारण बच्चों में संस्कृति का अभाव होता है। जबकि गाँवों में तो माता–पिता बच्चों का अपने साथ खेतों पर ले जाते हैं। धीरे–धीरे उन्हें भी काम करना भी सिखाना शुरू कर देते हैं जिससे बच्चों में समाजिक एवं सांस्कृतिक दोनों प्रकार का विकास साथ–साथ हो जाता हैं। इसके साथ ही, ग्रामीण एवं शहरी परिवेष में भी बच्चे के पालन पोषण का तरीका अलग होता है। जिसका प्रभाव बच्चों के व्यवहारों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

यह स्पष्ट है कि बच्चों का बचपन व्यक्ति विषेष के सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों के अनुरूप विषिष्ट होते हैं। अलग–अलग समाज व संस्कृतियों में बच्चों को भिन्न–भिन्न रूपों में समझा जाता है।

सामाजिक–सांस्कृतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1. **वंषानुक्रम ;भ्मतमकपजलद्ध.** बालक के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में वंषानुक्रम का विषेष प्रभाव पड़ता है इसकी पुष्टि में क्रो एवं क्रो ने लिखा है– "षिषु की पहली मुस्कान या उनका कोई विषिष्ट व्यवहार वंषानुक्रम से उत्पन्न होने वाला हो सकता है।"

2. परिवार ;थ्ंउपसलद्ध. परिवार ही वह स्थान है, जहाँ सबसे पहले बालक का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास होता है। परिवार के बड़े लोगों का जैसा व्यवहार एवं आचरण होता है बालक वैसा ही आचरण और व्यवहार करने का प्रयत्न करता है तथा परिवार में बड़े लोगों को देखकर वह अपने परिवार की संस्कृति का भी पालन करना सीख जाता है क्योंकि पारिवारिक परिवेष में ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास अच्छी तरह से हो पाता है।

3. आर्थिक स्थिति– आर्थिक स्थिति एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में आर्थिक स्थिति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास पर उचित या अनुचित प्रभाव पड़ता है। यदि माता–पिता के आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण वे बच्चों को अच्छी षिक्षा एवं अच्छा पालन पोषण दे पाते हैं, धनी माता–पिता की अपेक्षा अच्छी परिवेष दे पाते हैं।

4. विद्यालय– बालक के सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से परिवार के बाद विद्यालय का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यदि विद्यालय का वातावरण स्वस्थ्य है, तो बच्चों का उचित विकास होता है। परिवार के अलावा विद्यालय ही एक ऐसा स्थान है, जो षैक्षिक, और सामाजिक विकास की षिक्षा के साथ–साथ संस्कृति की षिक्षा भी देता है। विद्यालय से बच्चों में सांस्कृतिक और सामाजिक विकास का पूरी तरह से विकास होता है।

5. समूह– समूह बनाकर ही बच्चे आपस में खेलते हैं और समूह के सदस्य के रूप में बालक इतना व्यवहार कुषल हो जाता है कि समाज में प्रवेष करने के बाद उसे किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता है। समूह में रहने वाले बच्चे अलग–अलग संस्कृति के भी होते हैं जिसके कारण बच्चे एक दूसरे के साथ रहकर सभी की संस्कृति को जल्दी सीख जाते हैं।

इस प्रकार से प्रत्येक समाज और सांस्कृतिक समूह अपने–अपने बच्चों से उनकी आयु और जीवनकाल के हिसाब से विषेष प्रकार के विकासात्मक कार्यों के सम्पादन की अपेक्षा करता है और

इसी दृष्टिकोण से इन कार्यों के सम्पादन हेतु उन्हें आवष्यक रूप से तैयार करने के लिए विभिन्न प्रकार की औपचारिक तथा अनौपचारिक षिक्षा का भी प्रबन्ध करता है।

(बाल्यावस्था और गरीबी) बेपसकीववक ।दक च्वअमतजल

वर्तमान सामाजिक समस्याओं में गरीबी एक महत्वपूर्ण समस्या है, क्योंकि इससे बालक के आर्थिक, शैक्षिक एवं नैतिक विकास में बाधाएँ उत्पन्न होती है। सामान्यतः धन के अभाव या कमी को गरीबी कहते हैं, जिससे व्यक्ति अपनी ओर से अपने आश्रितों की मौलिक अवष्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होता है। **रेबर एवं रेबर** के शब्दों में "निर्धनता का तात्पर्य सम्पत्ति एंव सामग्रियों के अर्थ में अपेक्षाकृत निम्न जीवन स्तर से है।" गरीबी या धन के अभाव में बच्चों पर माता–पिता द्वारा ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है जिससे बच्चों का विकास बाधित होता है क्योंकि माता–पिता बच्चों की बुनयादी जरूरतें पूरी नहीं कर पाते हैं जिससे ना तो बच्चों की पोषण आहार की जरूरत पूरी होती हैं और न ही बच्चों की आहार की जरूरत पूरी हो पाती हैं, और न ही बच्चों की षिक्षा की आवष्यकता पूरी हो पाती है। इन जरूरतों के अभाव में साथ ही माता–पिता समय ना दिये जाने के अभाव में बच्चों का विकास प्रभावित होता जाता है

गरीबी के कारण– गरीबी या निर्धनता के अनेक कारण हैं।

1. व्यक्तिगत कारण– गरीबी के कारणों में एक कारण व्यक्तिगत कारण है। व्यक्तिगत कारण से तात्पर्य परिवार के कुछ व्यक्तिगत कारण जैसे– परिवार मुखिया का कुछ गंभीर बीमारियों से ग्रसित होना जो कि परिवार की आर्थिक स्थिति की और अधिक स्तर पर गिरा देता है क्योंकि जो भी पैसा कमाया जाता है वह उसकी बीमारी पर खर्च हो जाने के कारण बच्चों के पालन–पोषण तथा उनके आहार पर ध्यान नहीं दिया जा पाता है जिससे बच्चों का विकास प्रभावित होता है।

2. जैविक कारक– जैविक कारकों में जन्म दर पर नियंत्रण की कमी, बढ़ती हुई सदस्य संख्या आदि कारणों से पूरा परिवार गरीबी की समस्या से लड़ता है परिवार का पालन–पोषण करने के लिए पूरे परिवार को मजदूरी के काम पर जाना पड़ता है।

3. षिक्षा– परिवार के मुखिया का अषिक्षित होना गरीबी को बढ़ावा देने का मुख्य कारण है क्योंकि अषिक्षित होने के कारण उन्हें उनकी मेहनत का पूरा मेहनताना नहीं मिल पाता है और जो उनके मालिक होते हैं वे उन्हें ज्यादा पैसे पर रखकर उन्हें कम पैसे देते हैं जिससे उसके पूरे परिवार का भरण–पोषण ठीक से नहीं हो पाता है। पैसे की कमी के कारण गरीब परिवार के बच्चों को पढ़ने–लिखने का मौका नहीं मिलता है। गरीब माता–पिता आर्थिक रूप से इतने पिछड़े होते हैं कि वे अपने बच्चों को षिक्षा देने में सक्षम नहीं होते है। दूसरी बात यह है कि वे अपने बच्चों को पैसे कमाने के लालच से मजदूरी करने में लगा देते हैं।

4. आर्थिक कारक– निर्धनता और गरीबी का मूल कारण आर्थिक असमानता है। भारत में औद्योगीकरण का अभाव, कृषि क्षेत्र में उन्नति की कमी, कृषकों में खेती के नवीन तरीकों की उपेक्षा, षिक्षा के अभाव में सरकारी या गैर–सरकारी नौकरी के अवसरों का अभाव आदि कारणों से आर्थिक स्थितियों और खराब हो गयी है।

5. सामाजिक कारक– गरीबी के सामाजिक कारणों में जाति व्यवस्था, वर्ग–व्यवस्था, धार्मिक विष्वास आदि मुख्य हैं। जाति व्यवस्था के कठोर विष्वास के कारण कुछ लोग अपना परम्परागत व्यवसाय को छोड़कर दूसरे लाभप्रद व्यवसाय को अपनाने के लिए तैयार नहीं है उनकी सोच आज भी बहुत पुरानी है जिसके कारण उनकों और उनके परिवार के बाकी सदस्यों को परेषानीयों का सामना करना पड़ रहा है और परिवार की गरीबी से बालकों का बाल्यकाल ज्यादा प्रभावित हो रहा है जिस उम्र में उनकों खेलना–कूदना चाहिए उस उम्र में वे बाल–मजदूरी जैसे कार्यों में संलग्न है जिन हाथों

में कॉपी–किताब होना चाहिए वे परिवार के बाकी सदस्यों की तरह पैसा कमाकर घर में मदद कर रहे हैं। इन सबसे बालकों का विकास रूक जाता हैं।

गरीबी को दूर करने के उपाय– निर्धनता या गरीबी एक बहुआयामी समस्या है जिसका समाधान सरल एवं सहज नहीं हैं। सच में तो गरीबी को पूरी तरह से दूर करना असम्भव सा है। लेकिन निर्धनता को कम किया जा सकता है।

गरीबी को दूर करने के उपाय नि.लि. है–

1. जनसंख्या वृद्धि पर नियत्रंण– बढ़ती हुई परिवार की संख्या के कारण परिवार की आर्थिक हालत बहुत खराब हो जाती है यदि इस पर नियंत्रण हो जाये तो परिवार की स्थिति को सुधारा भी जा सकता है। जिससे बच्चों को सही पालन–पाषण हो पायेगा।

2. रोजगार के अवसर में वृद्धि– निर्धनता का एक मुख्य कारण रोजगार के अवसर की कमी है। यदि रोजगारों के अवसर में वृद्धि की जायें तो लोगों के जीवन स्तर में सुधार आयेगा और उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधरेगी जिससे वे अपने बच्चों की बुनियादी अवष्यकताओं पूरी कर पायेगें जिससे बालक विकास में वृद्धि होगी।

3. व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन– भारत में परम्परागत रूप से अलग –अलग धर्म एवं जाति के लोग रहते हैं और उनके अलग–अलग व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्य निर्धारित होते हैं। जैसे– बाह्मण जाति के लिए निम्न जाति के लोगों से सेवा कराना,श्रमिक का काम कराना। इसी प्रकार निम्न जाति के लोगों को उच्च कार्य वर्णित थे। इन सभी मूल्यों में परिवर्तन आवष्यक है। इनमें परिवर्तन होने से लोगों के सामाजिक मूल्य ऊँचे उठते हैं जिनसे इनका जीवन स्तर उच्च होता है।

4. षिक्षा– षिक्षा किसी बात की अभिव्यक्ति का सषक्त माध्यम है षिक्षा से व्यक्ति की सोच विकसित होती है और वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते हैं लेकिन अषिक्षित लोगों का हमेषा शोषण होता रहा है। इसलिए यदि गरीब लोग षिक्षित होंगे तो कोई भी उनका शोषण नहीं कर पायेगा और जो वो मेहनत करते हैं तो उन्हें उनका पूरा भुगतान मिलेगा जिससे वे अपने बच्चों को सुख–सुविधा दे पायेगें और षिक्षित होने से माता–पिता गरीब होने के बावजूद भी अपने बच्चों को षिक्षित कर उन्हें समाज में स्थान दिला पायेंगे।

5. कुसंगत– बाल–श्रमिक कई बार कुसंगत में फंस जाते हैं और नषा आदि बुराईयों के आदि हो जाते हैं। जिसके कारण वो नषे के लिए जाते हैं। बाल–श्रमिकों का जीवन और नरक बन जाता है, जिससे उनका आने वाला भविष्य भी प्रभावित होता है।

<u>बाल श्रम</u>

बाल–श्रम एक सामाजिक बुराई है एवं यह आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, जो बच्चे भविष्य के आधार हैं उनका स्कूल जाना छोड़कर काम करने के लिए मजबूर होना एक अभिषाप ही है। बाल–श्रम किसी भी क्षेत्र में बच्चों द्वारा अपने बचपन में दी गई सेवा को बाल मजदूरी कहते हैं। बाल श्रम का मतलब यह है कि जिसमें कि कार्य करने वाला व्यक्ति कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से छोटा होता है। कानून के अनुसार 14 वर्ष छोटे–बालकों से काम लेना अपराध है। इस प्रथा को कई देषों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने शोषित करने वाली प्रथा माना है। बच्चों से बलपूर्वक परिश्रम और दोहराव वाले काम लेते हैं जैसे– जूते पॉलिष, साफ–सफाई और होटलों और कारखानों में भी उनका सहयोग।

बाल–श्रम होने के कारण बालकों का बचपन अवरूद्ध हो रहा है उन्हें न तो उचित पोषण मिल पा रहा है और न ही उन्हें अच्छा वातावरण मिल रहा है जिससे उनका सर्वांगीण विकास हो सके। बाल–श्रम हमारे समाज का सबसे विकृत रूप है, उसका कारण गरीबी, अज्ञानता आदि है।

बाल–श्रमिक बनाने में बच्चों के माता–पिता ज्यादा जिम्मेदार है वो बच्चों को परिवार के प्रति बचपन से ही जिम्मेदार बनाना चाहते हैं। वो ये नहीं समझतें कि बच्चों को अच्छी परवरिष की जरूरत होती है, माता–पिता या गरीबी रेखा से नीचे के लोग अपने बच्चों की षिक्षा का खर्च वहन नहीं कर पाते हैं और जीवन–यापन के लिए जरूरी पैसा नहीं कमा पाते हैं इसी वजह से वो अपने बच्चों को स्कूल भेजने के बजाय कठिन श्रम में शामिल कर लेते हैं।

बाल श्रम की समस्याएँ

1. गरीबी– हमारे यहाँ गरीबी अभिषाप है आम परिवारों में गरीबी का मुख्य कारण निरंतर बढ़ती हुयी बच्चों की संख्या को ही कहा जायेगा। गरीबी के कारण माता–पिता स्वयं बच्चों को बाल–श्रम की ओर भेजते हैं उनका सोचना होता है जितना ज्यादा लोग काम करेगें उतना फायदा होगा। ऐसी ही सोच के कारण बाल–श्रम दिन–प्रतिदिन बढ़ता रहा है।

2. अषिक्षा– बाल–श्रम को बढ़ावा देने में अषिक्षा भी बहुत हद तक जिम्मेदार है क्योंकि माता–पिता के अषिक्षित होने से वे षिक्षा का लाभ नहीं समझ पा रहे हैं। अषिक्षा के कारण मालिक काम के बाद पूरा वेतन भी नहीं देता है।

3. महँगी षिक्षा– एक तो गरीबी अभिषाप है, और साथ में मँहगी षिक्षा भी फन उठाये खड़े हुये है। एक गरीब पालक बच्चों के पेट भरने के पष्चात् अच्छी षिक्षा भी देना चाहे तो महँगी षिक्षा के कारण वे भी अपना हाथ खींच लेते हैं।

4. दूषित वातावरण– गरीबी के कारण ये बच्चे गंदी बस्तियों में रहते हैं जहाँ का वातावरण दूषित बना रहता है वहाँ गाली–गलौज, मार–पीट का वातावरण होने के कारण उनकी षिक्षा और बाल्यवास्था दोनों ही प्रभावित होती है।

बाल शोषण और बाल सुरक्षा ;बैपसक ।इनेमे ंदक बीपसक च्तवजमबजपवदद्ध.

आज हमारे समाज में सबसे ज्यादा विकराल रूप में बाल शोषण है क्योंकि बच्चे आज सबसे ज्यादा शोषण और दुर्व्यवहार का षिकार हो रहे हैं ये शोषण शारीरिक, मानसिक एवं भावानात्मक शोषण है और इस तरह के शोषण से ग्रसित बच्चों का विकास भी पूरी तरह से नहीं हो पाता है क्योंकि जो बच्चे इन शोषण का षिकार होते हैं वे अपने परिवार के लोगों से इस बात को बता नहीं पाते हैं कि उनका शोषण हो रहा है। आज के वर्तमान समय में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों का शोषण भी हो रहा है, जिसके कारण वे मानसिक रूप से परेषान हो रहे हैं।

भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा बाल–षोषणः– भारत सरकार द्वारा 2007 में कराये गये अध्ययन से पता चला कि विभिन्न प्रकार के शोषण में पाँच से 12 वर्ष तक की उम्र के छोटे बच्चे शोषण और दुर्व्यवहार के सबसे अधिक षिकार होते हैं तथा इन पर खतरा भी सबसे अधिक होता है। इन शोषण में शारीरिक, यौन और भावानात्मक शोषण शामिल हैं। समाज में व्याप्त हर बुराई के पीछे का कारण षिक्षा का अभाव होता है।

बाल शोषण क्या है?

जब बच्चों को शारीरिक या मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है, तो उसे बाल शोषण कहते हैं, इसके अर्न्तगत 18 वर्ष से कम आयु के बच्चे षामिल होते हैं। जब भी बच्चों को चोट पहुँचाई जाये। तब इस तरह की घटना बाल शोषण के दायरे में आती है। बाल शोषण में घटनाऐं जो घटित होती है उन्हें अंजाम देने वाले हमेषा परिवार के करीबी होते हैं, जिनका घर में आना जाना रहता है।

बाल शोषण के प्रकार

1. मानसिक प्रताड़ना–

जब किसी बच्चे से ऐसी बातें की जाती हैं जो उन्हें मानसिक तनाव दे या उन्हें डराये वे सभी मानसिक प्रताड़ना के अंतर्गत शामिल हैं, बच्चों से अनुचित बातें करना, उन्हें किसी चीज से डराना, उनके मन में भय पैदा करना ये सभी अपराध हैं, जिनके खिलाफ आवाज उठाई जा सकती है।

2. शारीरिक प्रताड़ना–

जब किसी बच्चे को अनुचित तरीके से अनुचित जगहों पर छुआ जाता है, उन्हें तकलीफ पहुँचाई जाती है या उन्हें मारा जाता है, वे सभी शारीरिक प्रताड़ना में शामिल हैं, इस दिषा में बच्चों को षिक्षित करना आवष्यक है ताकि वे इस शोषण को समझ सकें और खुलकर अपने माता–पिता अथवा पालकों से कह सकें।

बाल शोषण रोकने के उपाय

1. बाल शोषण को रोकने के लिए जरूरी है कि बच्चों को सही और गलत का ज्ञान दिया जाये। उनसे इस विषय में खुलकर बात की जाये, ताकि वे इस शोषण को समझ सके और अपनों से कह सके।
2. बच्चों का यह ज्ञान होना बहुत आवष्यक है कि वो अपने और पराये के अंतर को समझ सके। वैसे यह बहुत मुष्किल है कि कौन अपना है या पराया यह बच्चे नहीं समझ सकते इसलिए बच्चों इसलिए बच्चों को इस तरह से समझाया जाये कि वे सही–गलत की पहचान कर सके।
3. बच्चों को शारीरिक शोषण को समझने के लिए अच्छे और बुरे स्पर्ष को महसूस करने का ज्ञान दिया जाना जरूरी है।
4. बच्चों को बातों को छिपाने के बजाय उसका विरोध करना सिखायें जिससे बच्चों में आत्मविष्वास बढ़ेगा इससे समाज का हर व्यक्ति इससे षिक्षित होगा और अपराधी अपराध करने से पहले कई बार सोचेगा।

बाल संरक्षण का अर्थ–

बच्चों के स्वास्थ्य और उनकी सुरक्षा पर पूरा–पूरा ध्यान देते हुए उन्हें घर पर अथवा समाज में उपेक्षा, शोषण, दुर्व्यवहार, हिंसा, अथवा किसी भी अन्य जोखिम से सुरक्षित रखना। बाल संरक्षण में बच्चे को उस स्थिति में सहायता और पुर्नवास प्रदान करना भी शामिल हो। यदि बच्चों को बाल संरक्षण नहीं दिया जायेगा तो वे शारीरिक और मानसिक रूप से प्रभावित हो जायेगें। हमारे समाज में बहुत सारी ऐसी स्थितियाँ जैसे– बाल–श्रम, बाल यौन उत्पीड़न, शारीरिक दंड, उपेक्षा और परित्याग आदि। इन स्थितियों में बच्चों की सुरक्षा एवं संरक्षण की बहुत आवष्यकता है इस ओर बहुत से कानून बनाये गये हैं लेकिन उनका पालन सही प्रकार से नहीं हो पाता है। इसलिए बाल संरक्षण में सुधार लाया जाय और उनका कडाई ये पालन किया जाये जिससे बच्चों का किसी भी प्रकार का शोषण न हो।

बाल्यावस्था के पालन–पोषण परिप्रेक्ष्य में ;बेपसकीववक त्मंतपदह च्तंबजपबमेद्ध.

बाल्यावस्था में बच्चों का मन बहुत नाजुक होता है और छोटी से बात से आहत हो जाता है इसलिए बाल्यावस्था में माता–पिता को बच्चों के पालन–पोषण पर ज्यादा ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि बच्चों का विकास सबसे ज्यादा बाल्यावस्था में होता है और यदि इस अवस्था में उन पर किसी भी बात का असर सकारात्मक या नकारात्मक दोनों प्रकार से पड़ता है, तो ही उनका विकास प्रभावित होता है इसलिए माता–पिता को ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है।

बच्चों के पालन–पोषण के परिप्रेक्ष्य में

1. तलाक का प्रभाव– तलाक सिर्फ पति–पत्नि के रिष्तों को ही नहीं तोड़ता, बल्कि ये बच्चों के कोमल दिल को भी गहरी ठेस पहुँचाता है माता–पिता का अलग होना उन्हें अकेला और तनावग्रस्त बना देता है। बच्चों को सही परवरिष के लिए माता–पिता दोनों के साथ, प्यार व दुलार की जरूरत होती है लेकिन तलाक के बाद बच्चा माता–पिता में से किसी एक से दूर हो जाता है, और ये अलगाव बच्चे के कोमल मन पर बुरी तरह असर डालता है क्योंकि माता–पिता के बीच आई दूरी से बच्चा अवसाद का षिकार हो जाता है जिससे उसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक आदि सभी तरह का विकास रूक जाता है। माता–पिता के अलगाव का अलग–अलग उम्र के बच्चों पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है।

- **0–4 साल–** 4 साल की उर्म तक के बच्चे अपने आस–पास रहने वाले लोगों से ज्यादा जुड़े रहते हैं, लेकिन उन्हें आसपास होने वाली बातों या घटनाओं की ज्यादा समझ नहीं होती है जिसके कारण यदि उस समय के माता–पिता के तलाक को ज्यादा समझ नहीं पाते हैं और वे यदि माता या पिता के पास हैं तो वे दूसरे की अनुपस्थिति के आदि हो जाते हैं लेकिन फिर भी उनका विकास सामान्य बालकों की तरह नहीं होता है तलाक के कारण प्रभावित होता है।

- **05–10 साल–** इस उम्र में बच्चे चीजों को अच्छी तरह से समझने लगते हैं और अपनी इच्छाओं को भी अभिव्यक्त करते हैं। इस उम्र में बच्चों का सबसे अधिक विकास होता है ऐसे में तलाक के बाद उपजे तनाव से वे दुखी और अवसाद से ग्रसित हो जाते हैं। इस उम्र के बच्चे तलाक जैसी चीजों का समझ नहीं पाते इसलिए वो केवल यही सोचते हैं कि मेरे माता–पिता साथ क्यो नहीं रहते हैं। इस तरह के सवाल बार–बार बच्चों को परेषान करते हैं इन सबका उनके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

- **11–15 साल–** इस उम्र तक बच्चे समझदार हो जाते हैं, उनमें हार्मोनल बदलाव भी बहुत तेजी से होते हैं जिसके कारण उनके जीवन में परिवर्तन आते हैं और ऐसे समय में उन्हें अपने माता–पिता की सर्वाधिक आवष्यकता होती है, और उस वक्त उनके माता–पिता का अलगाव (तलाक) को लेकर वे परेषान हो जाते हैं कि ये सब उनके साथ क्यों हो रहा है? उम्र के इस दौर में बच्चें को भावात्मक मजबूत बनाने के लिए माता–पिता दोनों के प्यार व मार्गदर्षन की आवष्यकता होती है। इस उम्र के बच्चे माता–पिता का तलाक स्वीकार नहीं कर पाते हैं, और वे अवसाद से ग्रसित हो जाते हैं जिसका प्रभाव उनका षिक्षा एवं व्यवहार पर पड़ता है।

एकल अभिभावक परिवार ;पदहसम च्तमदजीववक थ्ंउपसलद्ध. आज के दौर में जहाँ एकल परिवारों का चलन बढ़ा है तो वहीं तलाक के केस में भी वृद्धि हो रही है तो कहीं माता या पिता की मृत्यु से एकल अभिभावक की तादाद भी बढ़ रही है।

आज महानगरों से लेकर छोटे शहरी, कस्बों और ग्रामीण इलाकों में भी एकल अभिभावकों की संख्या बढ़ रही है। ऐसे स्थिति में बच्चों का सर्वांगीण विकास किस तरह हो यह एक प्रष्न है। आज समाज में स्त्री–पुरूष एकल अभिभावक की भूमिका निभा रहे हैं तो उनमें सामने बच्चों की परवरिष सबसे बड़ी चुनौती है क्योंकि उन्हें बच्चों की हर छोटी–बड़ी बातों का ख्याल रखने कि जरूरत है जिससे बच्चों के शारीरिक, मानसिक व भावात्मक हर तरह से सम्पूर्ण विकास हो और वह भविष्य में एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में समाज में अपनी जगह बना सके। इसलिए एकल अभिभावक की जिम्मेदारी निभा रहे स्त्री व पुरूष को हमेषा इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि आप अपने व्यक्तित्व में माँ और पिता दोनों की ही भुमिका साथ लेकर निभायें तभी बच्चे की परवरिष ठीक तरह से हो पायेगी। इसके लिए कुछ बातें जरूरी हैं–

1. बच्चों के साथ समय बितायें–

आज के समय में बच्चे न केवल खिलौने किताबें ही नहीं बल्कि अभिभावकों का समय व साथ चाहते है क्योंकि उनकी जरूरत की चीजों को दिलाने भर से आपकी जिम्मेदारी पूरी नहीं हो पाती। आज अगर आप बच्चों को समय नहीं देते तो वे गलत रास्ते पर भी जा सकते हैं, इसलिए उन्हें अधिक से अधिक समय दें और बाहर लेकर भी जायें जिससे बच्चे का आपसे लगाव बना रहे।

2. बच्चों को आत्मनिर्भर बनायें–

यदि आप अकेले अभिभावक हैं तो बच्चों के पालन–पोषण के लिए आपको कोई व्यवसाय या नौकरी भी करनी पड़ती है जिससे आप आर्थिक रूप से मजबूर बन सके। इसलिए जरूरी है कि यदि आप बच्चों को शुरू से ही आत्मनिर्भर बनायें। जैसे यदि घर का कोई सामान जहाँ से उठाया है वहीं रखें। कोई भी सामान को न फैलायें। घर को व्यवस्थित रखने में आपकी मदद करें।

3. अपने बच्चे के दोस्त बनें–

एकल अभिभावक को दोहरी भूमिका निभाने के साथ–साथ बहुत अधिक जिम्मेदारीयों का निर्वाह भी करना होता है इस कारण मानसिक और शारीरिक दोनों ही स्तरों पर अतिरिक्त दबाब बढ़ जाता है और आप न तो उन्हें ज्यादा समय दे पाते हैं और न ही उनकी बात सुनते है उनके साथ सख्त और चिड़चिड़े हो जाते हैं, जिससे बच्चे पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए उनके साथ दोस्ताना व्यवहार रखें। उनके साथ बैठक उसकी दिनचर्या सुनें खासकर जब बच्चा किषोरावस्था में है उसके मन की सारी बातें जाने बिना किसी डांट के। जब तब की आप एक अच्छे अभिभावक के साथ उसके अच्छे दोस्त न बन जाएँ।

4. बातों पर विष्वास करें–

कई बार बच्चों को ऐसा लगता है कि आप उनके अच्छे दोस्त हैं पर आप उन पर भरोसा नहीं रखते है तो वे आपसे अपनी सारी बातें साझा नहीं करेगें इसलिए कोषिष करें उन्हें उनके दोस्तों के सामने किसी बात की सच्चाई जानने की कोषिष न करें। लेकिन आप उन पर विष्वास करे लेकिन अंधा विष्वास न करें।

परिवार के विखराव ;डपहतंजपवद वि ध्ंउपसपमेद्ध.

जब परिवारिक अन्तक्रिया का विघटन होता हैं, तब उसे परिवारिक बिखराव कहते हैं। कोई परिवार जब अपने सभी सदस्यों पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण रखने तथा उनके व्यवहारों को सामाजिक मूल्यों के अनुसार निर्देषित करने में लगातार असफल होता रहता है तब इस दषा को परिवारिक **विखराव** कहते है आज के युग में जब सभी लोग मौकापरस्त तथा स्वार्थी होते जा रहे हैं तब ऐसे समय में संयुक्त परिवारों में विखराव की स्थिति बन रही है परिवार के लोगों में साथ न रहने की एवं सहन–शीलता की कमी आ रही है जिसके कारण संयुक्त परिवारों में बिखराब की स्थिति बन रही है। संयुक्त परिवारों में बच्चों का पालन पोषण अच्छे से हो जाता है और बच्चों का विकास अच्छी तरह से हो पाता है लेकिन एकल परिवारों में इन सब चीजों का अभाव पाया जाता है, और बच्चों का विकास भी प्रभावित हो रहा है।

<u>परिवारों के बिखराव का बच्चों पर प्रभाव</u>

1. सामंजस्य की कमी– जब बच्चे संयुक्त परिवारों में रहते है तो उन्हें सभी के साथ सामंजस्य रखने की बातें सिखाई जाती है लेकिन जब एकल परिवार होते है और वहाँ बच्चों की संख्या कम होने के कारण उनमें सामंजस्य की कमी पाई जाती है और बच्चे हर चीज पर अपना ही अधिकार समझता है।

2. साझा न करने की आदत– एकल परिवारों में बच्चों में कोई भी वस्तु साझा न करने की आदत होती है क्योंकि जब परिवार संयुक्त है तो कोई भी वस्तु आने पर सभी भाई–बहनों को वो आपस में

साझा करना सिखाया जाता है या बाँटकर खाना सिखाया जाता है इसकी कमी एकल परिवारों में पाई जाती है।

3. संस्कृति और सभ्यता की कमी– जैसे–जैसे परिवार एकल होते जा रहे हैं बच्चे संस्कृति से दूर हो रहे हैं। संयुक्त परिवार में रहने से बच्चे अपनी सभ्यता से जुड़ते हैं। हर त्यौहार मिलकर बनाना, जन्मदिन में पूरा परिवार का एक साथ होकर जष्न मनाना, साथ में बैठकर खाना खाना जैसी अच्छी बातें बच्चे सीखते हैं, जो एकल परिवारों में समय के अभाव या और किसी कारण से नहीं सीख पाते हैं और एकल परिवार के बच्चे ज्यादातर संस्कृति और सभ्यता से दूर हो जाते हैं।

4. गलत संगत– एकल परिवारों में यदि माता–पिता दोनों नौकरी पर जाते हैं तो बच्चों पर ध्यान नहीं दे पाते और संयुक्त परिवारों में सदस्य ज्यादा होने के कारण किसी न किसी सदस्य का बच्चों पर ध्यान रहता है जो उनकी हर एक गतिविधियों पर नजर रख पाता है जिसके कारण बच्चे गलत संगत में नहीं जा पाते हैं पर एकल परिवार में समय के अभाव में और माता–पिता का बच्चों को समय न दे पाने के कारण बच्चा गलता संगत और लत का षिकार हो जाता है।

5. एकांकीपन– एकल परिवार के चलन में बढ़ने के कारण बच्चों में एकांकीपन पाया जा रहा है क्योंकि माता–पिता के पास समय का अभाव है और बच्चा अकेला घर पर होने के कारण उसका न तो विकास ठीक प्रकार से हो पाता है और बच्चा अवसाद से ग्रसित हो जाता है।

सारांष

बालयावस्था वास्तव में मानव जीवन का वह स्वर्णिम समय है जिसमें उसका सर्वांगीण विकास होता है। शैषवावस्था के बाद बाल्यावस्था का आरम्भ होता है यह अवस्था बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की होती है। उसकी संवेदना और प्रत्यक्षीकरण की शक्तियों में वृद्धि होती है। बालक की जिज्ञासा भी इस अवस्था में प्रबल रहती है साथ ही बालक शैषवावस्था के काल्पनिक जगत का परित्याग करके वास्तविक जगत में प्रवेष करता है।

वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप गर्भाधान के समय से प्रारंभ होकर मृत्यु तक चलती है तथा समय विषेष पर व्यक्ति विषेष में कुछ विषिष्ट परिवर्तन होते हैं इन परिवर्तनों के आधार पर वृद्धि और विकास के कुछ विभिन्न नामों जैसे– षिषु, बालक, किषोर, प्रौढ़ तथा वृद्ध से पुकारा जाता है। ये सभी नाम वृद्धि और विकास की इन अवस्थाओं के है एवं इनका एक निषिचत कार्यकाल होता है और व्यक्तित्व के जिन पक्षों या आयामों में हमें वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अन्तर दिखाई देते हैं जैसे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक आदि।

वर्तमान सामाजिक समस्याओं में गरीबी एक महत्वपूर्ण समस्या है, गरीबी या धन के अभा में बच्चों पर माता–पिता द्वारा ज्यादा ध्यान नहीं दे पाने के कारण तथा पोषण अहार की कमी भी बने रहने के कारण बच्चों का विकास बाधित होता है। गरीबी के साथ–साथ बाल–श्रम भी एक सामाजिक बुराई है। कहा जाता है, कि बच्चे भविष्य का आधार है उनका स्कूल जाना कितना आवष्यक है लेकिन गरीबी के कारण उनका बाल मजदूरी करना मजबूरी है।

आज हमारे समाज में सबसे ज्यादा विकराल रूप में बाल शोषण है क्योंकि बच्चों के साथ सबसे ज्यादा दुर्व्यवहार किया जा रहा है तथा उनका शारीरिक, मानसिक, भावात्मक शोषण हो रहा है जिसके कारण बाल्यावस्था में उनका विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पा रहा है। बाल्यावस्था में बच्चों का मन बहुत नाजुक होता है। छोटी सी बात से आहत हो जाता है, इसलिए बाल्यावस्था में माता–पिता को बच्चों के पालन–पोषण पर ज्यादा ध्यान रखना पड़ता है ऐसे में माता–पिता का तलाक होना बच्चे के कोमल मन में गहरी ठेस पहुँचाता है। माता–पिता दोनों के दुलार से ही बच्चों को सही विकास होता है और ऐसे में तलाक का होना बच्चों को अकेला और तनावग्रस्त बना देता है। आज के दौर में एकल परिवारों का चलन बढ़ रहा है। वो भी कहीं न कहीं बच्चों के विकास को

प्रभावित करता है क्योंकि जब बच्चा संयुक्त परिवार में रहता है तो उसे अकेलापन नहीं झेलना पड़ता है साथ ही परिवार के सदस्य बच्चों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा देने में मदद करते हैं। बाल्यावस्था को प्रभावित करने में एकल अभिभावक परिवार भी है क्योंकि बच्चों का उचित विकास माता–पिता के साथ ही होता है लेकिन किसी दुर्घटनावष माता–पिता में से किसी एक की मृत्यु के बाद दूसरे के अकेले रह जाने का भी बालक के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और उसका व्यक्तित्व कहीं न कहीं तो प्रभावित होता है।

अपनी प्रगति की जांच करें।

1. बाल्यावस्था को समझाइयें।
2. वृद्धि एवं विकास से आप क्या समझते हैं साथ ही वृद्धि एवं विकास के सिद्धांत को भी समझाइये।
3. सामाजिक–सांस्कृतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक लिखिए।
4. बाल्यावस्था और गरीबी, बाल–श्रम एवं बालषोषण एवं बाल्य सुरक्षा को समझाइये।
5. बाल्यावस्था के पालन–पोषण के परिप्रेक्ष्य में तलाक का, एकल अभिभावक परिवार एवं परिवारों के विस्थापन का विस्तार से समझाइये।

गतिविधियाँ–

1. बालकों का वृद्धि एवं विकास किस तरह होता है? अलग–अलग अवस्थाओं में उनका वर्णन करते हुए समझाइये।
2. अभिवृद्धि एवं विकास शब्दों से क्या अभिप्राय है? एक षिक्षक के रूप में समझाइए कि मानव विकास तथा अभिवृद्धि का अध्ययन क्यों आवष्यक है?
3. बच्चों की सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा का विष्लेषण करें।
4. अपने आस–पास के समाज या समुदाय में रहने वाले बच्चे जो कि गरीबी, बालश्रम, बालषोषण जैसे सामाजिक बुराई झेल रहे बच्चों का अध्ययन करें और उनके माता–पिता को इनकी सुरक्षा के प्रति जागरूक करने के लिए आप क्या करेंगे।
5. बाल्यावस्था में बच्चों के विकास पर तलाक का प्रभाव, परिवारों का बिखराव एवं एकल अभिभावक परिवारों का क्या प्रभाव पड़ रहा है उदाहरण सहित उसकी रिपोर्ट तैयार करें।

संदर्भ ;त्मदबमेद्ध

- गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता, अलका (2009), **उच्चतर षिक्षा मनोविज्ञान,** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद–2 : युनिवर्सिटी रोड़।
- पाठक, पी.डी. (2013), **षिक्षा मनोविज्ञान,** आगरा–2 : श्री विनोद पुस्तक मन्दिर।

- भटनागर, सुरेष (2010), **षिक्षा मनोविज्ञान,** मेरठ : आर. लाल बुक डिपा, निकट गर्वनमेंट इन्टर कॉलेज, मेरठ।
- मंगल, एस. के. एवं मंगल, उमा (2014), **विद्यार्थी अधिगम एवं संज्ञान,** लुधियाना : टंडन पब्लिकेषन।
- मंगल, एस. के. (2010), **षिक्षा मनोविज्ञान,** नई दिल्ली : पी. एच. आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।
- यादव, सियाराम (2010), **अधिगमकर्ता का विकास** एवं षिक्षण अधिगम प्रक्रिया शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद–2 : युनिवर्सिटी रोड़।
- यादव डी. एस. (2009), **षिक्षा मनोविज्ञान,** दिल्ली : प्रेरणा प्रकाषन, सी–13 रोज अर्पाटमेंट, सेक्टर – 14 एक्सेंटषन, रोहिणी।

खण्ड – 1
इकाई – 2
बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

प्रस्तावना– षिषु जन्म के समय सामाजिक प्राणी नही होता है । जैसे –जैसे उसका षारीरिक और मानसिक विकास होता है वैसे ही उसका सामाजिक विकास भी होता है अपने परिवार के सदस्यों अपने समूह के साथियों अपने समाज की संस्थाओ ओर परम्पराओं एवं अपनी स्वयं की रूचियों ओर इच्छाओ से प्रभावित होकर वे अपने सामजिक व्यवहार का निर्माण और अपना सामाजिक विकास करता है । सामाजिक व्यवहार में स्थिरता न होकर परिवर्तनषीलता होती है अतः समय और परिस्थिति के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है । और सामाजिक विकास एक निष्चित दिषा की ओर वढता जाता है इस प्रकार समाजीकरण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। सामाजिक विकास के फलस्वरूप बच्चा समाज का एक मान्य, सहयोगी,उपयोगी तथा कुषल नागरिक बन जाता है। समाज में रहकर ही व्यक्ति अपनी आवष्यकताओं की पूर्ति करता है। समाजीकरण की प्रक्रिया बालक के सामाजिक विकास को गति प्रदान करती है। घर, परिवार, पडोस, मित्र, मंडली, विद्यालय समुदाय, जनसंचार साधन तथा राजनीतिक व सामाजिक संस्थाएं बालके के समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। बालक के सामाजिक विकास को शैक्षिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। अतः षिक्षा के द्वारा बालकों के न केवल शारीरिक व मानसिक विकास को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जाता है। षिक्षा बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। समाज में रहकर ही बालक जब दूसरों से सम्पर्क करता है तब वह समाज के मूल्यों विष्वासों तथा आदर्षो में आस्था रखने लगता है तथा समाज की जीवन–षैली को अपनाता है। उसमें अस्तित्व की भावना आ जाती है वह सामाजिक हित में तथा लोक कल्याण की भावना से अपने निहित स्वार्थो का त्याग करना सीख जाता है तथा सामाजिक गुणों को विकसित करके समाज में अनुकूलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

उद्देष्यः–

1. इस अध्याय में बालकों का सामाजिक विकास कैस होता है उसका संप्रत्यय जान सकेंगे।
2. सामाजिक विकास की विषेषताओं को अच्छी तरह समझ सकेगें।

3. सामाजिक विकास में परिवार, सहयोगियों, स्कूल और समाज की क्या भूमिका है को अच्छी तरह से जान सकेगें।
4. बाल्यावस्था में सामाजिक विकास के दौरान परिवार के क्या कार्य हैं उन्हें समझ सकेगें।
5. सामाजिक विकास में स्कूल का क्या महत्व है जान सकेगें।
6. बच्चों के सामाजिक विकास में अभिप्रेरणा क्या है और उसका क्या महत्व है समझ सकेगें।
7. सामाजिक विकास में पुर्नबलन की क्या भूमिका है जान सकेगें।
8. सामाजिक विकास के दौरान बालकों में प्रतियोगिता का क्या स्तर होना चाहिये समझ सकेगें।
9. बच्चों के सामाजिक विकास में अनुषासन की भूमिका को अच्छी तरह से जान सकेगें।

सारांषः—षिषु जन्म के समय सामाजिक प्राणी नही होता है जैसे—जैसे बालक बड़ा होता जाता है वैसे ही उसका सामाजिक,मानसिक,संवेगात्मक विकास भी होता जाता है। अपने परिवार के सदस्यों, अपने समूह के साथियों, अपने समाज की संस्थाओं और परम्पराओं एवं अपनी स्वयं की रूचियों और इच्छाओं से प्रभावित होकर वह अपने सामाजिक व्यवहार का निर्माण और अपना सामाजिक विकास करता है। सामाजिक व्यवहार स्थिर न होकर परिवर्तनषीलता होता है। समाज में बालक की सामाजिक अर्न्तःक्रियाओं का स्तर जितना अधिक होता है उसी अनुपात में उसके सामाजिक विकास का स्तर होता है। जैसे—वातावरण से अनुकूलन, व्यवहार में परिवर्तन, सामाजिक विकास की अवस्था,विकास में परिवर्तन समाजस्य सामाजिक समायोजन तथा सामाजिक सहभागिता आदि है।

सामाजिक विकास में परिवार की बहुत अहम् भूमिका होती है। घर का वातावरण और आपसी पारिवारिक संबंध बच्चे के सामाजिक विकास पर गहरा प्रभाव डालते हैं। बच्चा अपने माता—पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों से ही सामाजिकता का प्रारंभिक पाठ पढ़ता है। सामाजिकता की दृष्टि विकसित करने के दृष्टिकोण से बच्चों के अपने सह—समूह का भी बहुत महत्व है क्योंकि विभिन्न प्रकार के सामाजिक गुण और अवगुणों को अर्जित करने में मित्र समूह बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विद्यालय में अध्यापकगण और विद्यार्थियों के पारस्परिक संबंध उनके द्वारा संचालित क्रियाएं और विभिन्न कार्यक्रम उनके आदर्ष सिद्धांत तथा मान्यताएं अध्यापक और साथ में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का सामाजिक व्यवहार और गुण—दोष आदि सभी बाते बच्चे के सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं। सामाजिक विकास में समाज भी एक अहम् भूमिका निभाता है। समाज बालक की कर्म भूमि है यही पर वह अन्य लोगों के सम्पर्क में आकर

क्रिया–प्रतिक्रिया करता है इससे उसका व्यवहार स्वरूप धारण करता है और उसके चरित्र का निर्माण होता है।

ैवबपंस कमअमसवचउमदज वि बीपसकीववक.

ब्वदबमचज वि वबपंस कमअमसवचउमदज.षिषु जन्म के बाद होता हैं । जैसे–जैसे बालक बढता जाता हे वैसे ही वैसे उसके षारीरिक,मानसिक ,संवेगाात्मक विकास ही नहीं उसका सामाजिक विकास भी होता जाता हैं। अपने परिवार के सदस्यो, अपने समूह के साथियों से प्रभावित होकर वह अपने सामाजिक व्यवहार का निर्माण ओर अपनी सामाजिक विकास करता हे। लेकिन बच्चों के सामाजिक व्यवहार में स्थिरता न होकर परिवर्तनषीता होती हैं। अतः समय और परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है ओर सामाजिक विकास एक निष्चित दिषा में आगे बढता रहता है। सामाजिक आदर्षो ,परम्पराओं एवं कठिनाईयों के अनुसार समाज के अन्य लोगों के सहयेाग से व्यवहार किया जाता हे उसे सामाजिक विकास के अंतर्गत रखा जाता हैं विद्वानों ने सामाजिक विकास की परिभाषाऍ इस प्रकार की है–

1.हरलॉक–''सामाजिक विकास का अर्थ सामाजिक समबन्धों में परिपक्वता प्राप्त करना हैं''।

2. सोरेनसन– ''सामाजिक अभिवृद्धि और विकास का अर्थ है अपनी और दूसरो की उन्नति के लिए योग्यता की वृद्धि है।''

एक बालक अपनी सामाजिक स्थितियों का जितनी अधिक सफलता से समझने और सुलझाने में प्रयास करता है उसकी उतनी अधिक समायेाजन की षक्ति होती है और उसके सामाजिक विकास का स्तर भी प्रायः उतना ही अधिक होता हें समाज में बालक की सामाजिक अन्तः क्रियाओं का स्तर जितना अधिक जटिल होता है उसी अनुपात में उसके सामाजिक विकास का स्तर होता है।

समाजिक विकास की विषेषताऍ –बालावस्था में सामाजिक विकास की विषेषताऍ निम्नलिखित है।

1 वातावरण अनुकूलन– जैसे–जैसे बालक ष्षैषवावस्था से बाल्यावस्था में प्रवेष करता हे उसके और वातावरण के बीच बहुत सारे परिवतैन होने लगते है। जैसे–जब 6 वर्ष की आयु में बालक प्राथमिक विद्यालय में प्रवेष करता है वहॉ उसे एक नये वातावरण से अनुकूलन करना होता है इस ही तरह बालक धीरे–धीरे वातावरण समायोजन करना सीख लेता हैं और सामाजिक कार्यो में भाग लेना नए–नए मित्र बनाना, सीखता है।

2 व्यवहार में परिवर्तन– बालक जैसे ही वातावरण से अनुकूलन करता है बालक के व्यवहार और उन्नति में परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। फलस्वरूप उसमें स्वतंत्रता ,सहायता और उत्तरदायित्व के गुणों का विकास ाहेन लगता है।

3 सामाजिक विकास की अवस्था –सामाजिक विकास की सबसे महत्वपूर्ण विषेषता यह है कि इसके फलस्वरूप सरल सामाजिक अवस्था जटिल सामाजिक अवस्था में परिवर्तित हो जाती है अर्थात जैसे–जैसे बच्चे बडे होते जाते है उन्हें जटिल समस्याओं से सामना करना पडता है।

4 सामाजिक गतिषीलता में वृद्धि –सामाजिक विकास की विषेषताओं में सामाजिक गतिषील में वृद्धि भी एक विषेषता हैं जो गतिषील समाज में कैसे सांमजस्य बैठाना हे यह सिखाती हैं।

5 विकास में परिवर्तन–सामाजिक विासि में परिवर्तन प्रगति के अनुरूप होता रहता है इसके अंतर्गत सामाजिक सम्बन्धों का प्रसार होता हैं।

6 विषय –क्षेत्र – सामाजिक विकास का विषय क्षेत्र बहुत व्यापक है क्योंकि जब बच्चा जब समाज में बडा होता है तो उसका चहुमुखी विकास होता है क्योंकि समाज में रहकर बच्चा भविष्य में आने वाली चुनौतियों के बारे मे सीखता हैं

7. सामंजस्य – सामाजिक विकास के लिए समाज के विभिन्न भागों के साथ बालकों का सामंजस्य होना अति आवष्यक है। यदि समाज मे विभिन्न भागों में सामंजस्य नहीं है तो सामाजिक विकास की गति धीमी पड जायेगी।

8 सीखना – दूसरों के साथ सामाजिक व्यवहार दिखलाना बालक धीरे – धीर सीखते हैं यह सीखना विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व के सम्पर्क में ओन पर निर्भर करता है । इस सम्पर्क का ज्यों–ज्यों उसे अवसर मिलेगा, उसका सामाजिक विकास होता जायेगा। बालक के वांछित सामाजिक विकास के लिए एक निष्चित योजना और निर्देषन की आवष्यकता हैं यह बालक बुरे समूह के प्रभाव में आ गया तो उसका सामाजिक विकास दूषित हो जायेगा।

9. सामाजिक अनुयपता – एक बालक जजितनी षीध्रता व कुषलता से अपने समाज की परम्पराओं , नैतिक मूल्यों व आदर्षो के अनुरूप करना सीख लेता है उसके सामाजिक विकास का स्तर भी प्रायः उतना ही अधिक उच्च होता है इसलिए बालकों में सामाजिक अनुयपता व सामाजिक विकास में एक प्रकार का ध्नात्मक सह सम्बंध है।

10. सामाजिक समायोजन – एक बालक अपनी सामाजिक स्थितियों को जितनी अधिक सफलता व कुषलता से समझने व सुलझााने में संपन्न होता है उतनी अधिक उसमें समायोजन की षक्ति होती हे उसके सामाजिक विकास का स्तर भी प्रायः उतना ही अधिक होता है।

11. सामाजिक सहभागिता–एक बालक जितने अधिक सहज भाव और जितने अधिक आत्मविष्वास क साथ सामाजिक गतिविधियों मे भाग लेता जाता है, वह भी प्रायः उसके उच्च सामाजिक विकास का ही सूचक होता है।

समाजिक विकास में परिवार, समान व्यक्तियों का समूह, स्कुल और समाज की भूमिका–

परिवार–परिवार वह संस्था है जिसमें बालक का जन्म होता है, विकास होता है ओर उसी में उसका अंत होता है। बच्चे के समाजीकरण में परिवार सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं धर का वातावरण और आपसी पारिवारिक सम्बन्ध बच्चे के सामाजिक विकास पर गहरा प्रभाव डालते हैं बच्चा अपने माता–पिता तथा परिवार के अनय सदस्यों`स सामाजिक ता का प्रारम्भिक पाठ पढता है।उनके व्यवहार का अनुकरण करता हे और इस तरह अच्छे या बुरे सामाजिक गुणों और आदतों को ग्रहण करता हे जा उसके साथ कभी–कभी जीवन–र्पयन्त चलती रहती हैं ऐसे परिवार में जहॉ बच्चे का स्वस्थ सामाजिक वातावरण मिलवा है और जहॉ बच्चे की मूलभूत अवष्यकताओं की पूर्ति होती रहती है वहॉ सामाजिक रूप से स्वस्थ एवं संतुलित बच्चों का जन्म होता हैं जहॉ धरों में पारिवारिक सम्बन्धों में करता और खिंचवा पाया जाता है वहॉ बच्चों का सामाजिक विकास प्रभावित होता हे इसलिए उचित सामाजिक विकास के आवष्यक हे कि बच्चों को सुन्दर पारिवारिक वातावरण प्रदान करने के लिए उन्हे परिवार का अधिक सहयेाग प्राप्त हों।

परिवार के कार्य– सामाजीकरण की प्रक्रिया में परिवार महत्वपूर्ण प्रक्रिया है परिवार क सामाजिक कार्य इस प्राकर है।

1.विद्यालय – धर, बालक के लिए प्रथम विद्यालय है परिवार ही बच्चों को अच्छा –बुरे में फर्क करना सीखाता है, विद्यालय जाने से पहले का सारा ज्ञान परिवार ही बच्चे को देता है।

2.सामाजिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक षिक्षा –परिवार समन का प्रारम्भिक यप हे तो समाज में जीवन वयतीत करने वाले उन सभी गुणों की तैयारी भी करता हे जा नैतिकता, आदर्ष तथा आध्यात्मिक गुणों पर आश्रित होते है। इस प्रकार हर समाज परिवार में सामाजिक, नैतिक ,आध्यात्मिक गुणों का विकास है।

3 समायोजन की षिक्षा – बालक परिवार में समायोजन करना सीखता है।समायोजन की यह प्रक्रिया वह उत्पन्न होते ही करने लगता हैं अपने स्वभाव वयवहार का उसी के अनुसार डाल लेता है।

4. आदत एवं चरित्र की षिक्षा – बालकों के चरित्र एवं आदत का निर्माण परिवार की परम्पराओं पर निर्भर करता है। परिवार में प्रेम, सद्भव, सहयोग से बालक में अच्दी गुणों, आदत तथा चरित्र का निर्माण होाता हें जिन परिवारों में कलह या लडाई–झगडा होता हे वहॉ मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा और बच्चों में अपराधजन्य भावनाओं ाक विकास होगा। अतः परिवार ही चरित्र – निर्माण का आधार है ।

5.मानसिक एवं भावात्मक विकास– परिवार के सदस्य वाले ही आज एक साथ न हो दूर–दूर ाहे क्योंकि नौकरी के कारण पूरा परिवार एक साथ नहीं रह पाता हे लेकिन फिर भी परिवार के सदस्य आपस में मानसिक एवं भावात्मक रूप से जुडे रहते हैं परिवार में रहकर बालक भी उनसे यही सीखता हैं परिवार के लोग आपस में एकता से रहते है और बच्चों में भी एकता के इस गुण का विकास परिवार में होता है

6. स्थायी मूल्यों का विकास – प्रम, दया, घृणा ,द्वेष, सहयोग, ममता,सहनषीला, सहायता आदि स्थायी मुल्यों का विकास परिवार में ही होता है। परिवार के सदस्यों के आपसी व्यवहार भी इन स्थायी मूल्यों पर आधारित होते है ये स्थायी मूल्य ही व्यक्तित्व को विकसित करते है इसलिए परिवार के स्थायी मूल्यों के विकास से बच्चो में भी अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

7. सहयोग की षिक्षा – परिवार में सहयोग का जा आदर्ष देखने मिलता है वह कही और नहीं मिलता हैं। भाई – बहन, माता–पिता सभी का आपस में किसी न किसी प्रकार से सहयोग चलता रहता है। जब बच्चा अपने परिवार से सहयोग की षिक्षा लेता है ता वह आगे भी दूसरों के सहयोग के लिए तत्पर रहता है।

8. आज्ञा पालन एवं अनुषासन – परिवार का स्थायी, परिवार का सबसे बुजुर्ग आदमी होता है। उसी के आज्ञा एवं निर्देष के अनुसार परिवार के सभीा कार्य होते हें परिवार के सभी सदस्य उसका मान करते है। यही बात बालक भी सीखता है। कम्टे के अनुसार–'आज्ञा पालन और अनुषासन दोनो यपों में, परिवारकि जीवन, सामाजिक जीवन

सामाजिक विकास में परिवार, समान व्यक्तियों का समूह, स्कूल और समाज की भूमिकाः–

परिवार–परिवार वह संस्था है जिसमें बालक का जन्म होता है, विकास होता है और उसी में उसका अंत होता है। बच्चे के समाजीकरण में परिवार सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। घर का वातावरण और आपसी पारिवारिक संबंध बच्चे के सामाजिक विकास पर गहरा प्रभाव डालते हैं। बच्चा अपने माता–पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों से सामाजिकता का प्रारंभिक पाठ पढ़ता है। उनके व्यवहार का अनुकरण करता है और इस तरह अच्छे या बुरे सामाजिक गुणों और आदतों को ग्रहण करता है जो उसके साथ कभी–कभी जीवन–पर्यन्त चलती रहती है। ऐसे परिवार में जहाँ बच्चे का स्वस्थ सामाजिक वातावरण मिलता है और जहाँ बच्चे की मूलभूत आवष्यकताओं की पूर्ति होती रहती है वहाँ सामाजिक रूप से स्वस्थ एवं संतुलित बच्चे का जन्म होता है। जहाँ घरों में पारिवारिक संबंधों में कटुता और खिंचवा पाया जाता है। वहाँ बच्चों का सामाजिक विकास प्रभावित होता है इसलिए उचित सामाजिक विकास में आवष्यक है कि बच्चों को सुन्दर पारिवारिक वातावरण प्रदान करने के लिए उन्हें परिवार का अधिक सहयोग प्राप्त हो।

परिवार के कार्यः–सामाजिक की प्रक्रिया में परिवार महत्वपूर्ण प्रक्रिया है परिवार के सामाजिक कार्य इस प्रकार हैं।

1. विद्यालय– घर, बालक के लिए प्रथम विद्यालय है परिवार ही बच्चों को अच्छा–बुरा में फर्क करना सीखाता है, विद्यालय जाने से पहले का सारा ज्ञान परिवार ही बच्चे को देता है।
2. सामाजिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक षिक्षा– परिवार समाज का प्रारंभिक रूप है जो समाज में जीवन व्यतीत करने वाले उन सभी गुणों की तैयारी भी करता है जो नैतिकता आदर्ष तथा आध्यात्मिक गुणों पर आश्रित होते हैं । इस प्रकार हर समाज परिवार में सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक गुणों का होता है।

3. समायोजन की षिक्षा–बालक परिवार में समायोजन करना सीखता है। समायोजन की यह प्रक्रिया वह उत्पन्न होते ही करने लगता है। अपने स्वभाव व्यवहार को उसी के अनुसार ढाल लेता है।
4. आदत व चरित्र की षिक्षा–बालकों के चरित्र एवं आदत का निर्माण परिवार की परम्पराओं पर निर्भर करता है। परिवार में प्रेम, सदभाव,सहयोग से बालक में अच्छी गुणों, आदत तथा चरित्र का निर्माण होता है। जिन परिवारों में कलह या लड़ाई–झगड़ा होता है वहाँ मानसिक स्वास्थ्य ठीक नही होगा। और बच्चों में अपराध अन्य भावनाओं का विकास होगा। अतः परिवार ही चरित्र–निर्माण का आधार है।
5. मानसिक एवं भावनात्मक विकास–परिवार के सदस्य भले ही आज एक साथ न हो दूर–दूर हो क्योंकि नौकरी के कारण पूरा परिवार एक साथ नही रह पाता है लेकिन फिर भी परिवार के सभी सदस्य आपस में मानसिक एवं भावनात्मक रूप से जुड़े रहते हैं। परिवार में रहकर बालक भी उनसे यही सीखता है। परिवार के लोग आपस में एकता में रहते हैं। और बच्चों में भी एकता के इस गुण का विकास परिवार में होता है।
6. स्थायी मूल्यों का विकास–प्रेम, दया, घृणा, द्वेष, सहयोग, ममता, सहनषीलता, सहायता आदि स्थायी मूल्यों का विकास परिवार में ही होता है। परिवार के सदस्यों के आपसी व्यवहार भी इन स्थायी मूल्यों पर आधारित होते हैं ये स्थायी मूल्य की व्यक्तित्व को विकसित करते हैं। इसलिए परिवार के स्थायी मूल्यों के विकास से बच्चे में भी अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण होता है।
7. सहयोग की षिक्षा– परिवार में सहयोग का जो आदर्ष देखने को मिलता है वह कही और नहीं मिलता है। भाई–बहन, माता–पिता सभी का आपस में किसी न किसी प्रकार से सहयोग चलता रहता है। जब बच्चा अपने परिवार

से सहयोग की षिक्षा लेता है तो वह आगे भी दूसरों के सहयोग के लिए तत्पर रहता है।

8. आज्ञा पालन एवं अनुषासन–परिवार का स्वामी, परिवार का सबसे बुजुर्ग आदमी होता है। उसी के आज्ञा एवं निर्देष के अनुसार परिवार के सभी कार्य होते हैं। परिवार के सभी सदस्य उसका मान करते हैं। यही बात बालक भी सीखता है। काप्टे के अनुसार "आज्ञा पालन और अनुषासन दोनों रूपों में" पारिवारिक जीवन सामाजिक जीवन का अनन्त विद्यालय बना रहेगा। जब बच्चा घर में ही सबको अपने से बड़े की आज्ञा पालन करते देखता है तो वो भी आज्ञा पालन एवं अनुषासन सीख लेता है।

   च्ममते (सह–समूह)–सामाजिकता की दृष्टि विकसित करने के दृष्टिकोण से बच्चों के अपने सह–समूह या मित्र मंडली का भी बहुत महत्व है। संगति का असर पड़े बिना नही रहता। जैसे जिसके साथी होते हैं वह वैसा ही बन जाता है। वय–समूह या मित्र मंडली के जो आदर्ष होते हैं और समूह के सदस्यों का जैसा व्यवहार है वैसे ही गुण और आदर्ष बच्चा अपनाने के लिए बाध्य हो जाता है। विभिन्न प्रकार के सामाजिक गुण और अवगुणों को अर्जित करने में मित्र समूह बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सहयोग, त्याग, सद्भावना, सहानुभूति समूह, भक्ति, सामूहिक हित का ध्यान रखने, नेतृव्य करने और किसी को नेता मान कर उसके पीछे चलने तथा कर्त्तव्य और अधिकार का पारस्परिक संबंध समझने आदि बहुमूल्य समान गुणों को विकसित करने में वय–समूह बहुत सहायता करती है।

विद्यालय–बच्चों का सामाजिक विकास विद्यालय किस प्रकार करता है और बच्चे को किस प्रकार का सामाजिक परिवेष वहाँ मिल रहा है, इस बात पर भी उनका सामाजिक विकास पर निर्भर करता है। विद्यालय में अध्यापकगण और विद्यार्थियों के

पारस्परिक संबंध उनके द्वारा संचालित क्रियाएँ और साथ में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का सामाजिक व्यवहार और गुण–दोष आदि सभी बातें बच्चे के सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं। स्वस्थ्य सामाजिक और प्रजातांत्रिक वातावरण से युक्त विद्यालय विद्यार्थियों में स्वस्थ एवं उपयोगी सामाजिक गुणों का विकास करता है। विद्यालय बालक के सामाजीकरण के विकास का प्रमुख स्थल है। इसे समाज का ही लघु रूप कहा गया है। इसके महत्व के बारे में कहा गया है कि राष्ट्र के निर्माता विद्यालयों की बैचों पर बैठते है और विद्यालय राष्ट्र निर्माता है। विद्यालय का महत्व हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं।

1. **समाज की जटिलता को हल करने का साधन**–वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रभाव के कारण समाज के जीवन में समयाभाव हो गया है। माता–पिता अपने बच्चों के विकास में सहायता नही दे सकते। विद्यालय उसकी सहायता करता है।
2. **विकास उन्मुख वातावरण**–विद्यालय का उद्देष्य रहता है बालक का सर्वागीण विकास करना । विद्यालय स्वयं में एक वातावरण है। बालक की रूचि का ध्यान रखते हुए विद्यालय ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है जिससे वातावरण और भी विकासोन्मुख हो जाये। ऐसा वातावरण विद्यालय ही दे सकता है।
3. **घर तथा समाज की कड़ी**–विद्यालय बाह्य जीवन के मध्य अर्थ–पारिवारिक कड़ी है। जो बालक की उस समय प्रतीक्षा करता है जब यह अपने घर की छत्रछाया छोड़ता है। विद्यालय बच्चों के साथ घर तथा समाज की महत्वपूर्ण कड़ी की भूमिका निभाता है।
4. **सर्वांगीण विकास का दायित्व**–विद्यालय का लक्ष्य साफ होता है। एक ही उद्देष्य बालक की सभी शक्तियों का समान व संतुलित रूप से विकास

करना है। घर, समाज और समुदाय भले ही परोक्ष रूप से बालक के सर्वांगीण विकास में योग देते हो, परन्तु विद्यालय ही केवल इसी कार्य के लिए बनाया गया है और वह वैयक्तित्व तथा सामूहिक रूप से गुण के विकास की ओर ध्यान देता है।

5. **समाज का लघु रूप** –विद्यालय समाज का लघु रूप है। समाज में जो भी घटता है, विद्यालय में भी वही किसी न किसी रूप में घटता ही है। माध्यमिक षिक्षा आयोग ने भी विद्यालय को छोटा समुदाय स्वीकार किया है। विद्यालय बच्चों को सामाजिक बनाता है।
6. **उत्तम नागरिकता का निर्माण**– विद्यालय बालकों को अच्छे नागरिक बनाने का कार्य करता है। किसी ने कहा भी है "आज के बालक कल के नागरिक है।" आज के बालकों में विद्यालय अधिकार तथा कर्त्तव्यों का ज्ञान करता है और उन्हें सद् नागरिक बनाने का प्रयत्न करता है।
7. **उदार दृष्टिकोण का जनक**–विद्यालय कभी भी संकीर्णता उत्पन्न नहीं करता है। वह जन्मजात शक्तियों का विकास करता है। के. जी. सैयदेन के शब्दों में "नवीन विद्यालय अपनी पाठ्यवस्तु, षिक्षण विधियों और कार्यो को सामाजिक दृष्टिकोण से ध्यान में रखकर नियोजित करता है। विद्यालय की छोटी दुनिया और बाहर की बड़ी दुनिया में चेतन और सतत् संबंध होता है। बालक समान सेवा, नागरिक कार्य, स्वास्थ्य संबंधी आन्दोलनों आदि सामाजिक कार्यो में भाग लेकर वास्तविक जीवन के सम्पर्क में आता है।"

समाज–समाज बालक की कर्मभूमि है। इस कर्मभूमि में बालक समाज के अन्य लोगों के सम्पर्क में आता है क्रिया प्रतिक्रिया करता है, इससे उसका व्यवहार एक स्वरूप धारण करता है। यह उसके चरित्र का निर्माण होता है। घर पर प्रारंभिक जीवन

व्यतीत करने वाले बालक पर अपने साथियों का प्रभाव कम पड़ता है। जैसे ही वह बड़ा होता है उसके संगी साथी बनते हैं वहाँ उसके चरित्र का विकास होने लगता है। समाज में बालक को धार्मिक तथा आध्यात्मिक षिक्षा मिलती है। ईमानदारी, दया, सहयोग आदि के गुण विकसित होते हैं। रेडियों, दूरदर्षन, समाचार पत्र, मनोरंजन के साधन कहानियाँ तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम बालक के आन्तरिक गुणों का उद्घाटन कर चरित्र निर्माण में योग देते हैं।

बालक के विकास पर प्रभाव–समाज बालक के विकास पर इस प्रकार प्रभाव डालते हैं।

1. **सामाजिक प्रभाव**–समाज का प्रत्यक्ष प्रभाव बालक के सामाजिक विकास पर पड़ता है। यहाँ उसका सामाजीकरण होता है। अधिकार तथा कर्त्तव्यों के ज्ञान साथ–साथ स्वतंत्रता के अनुषासन की जानकारी भी होती है।
2. **राजनीतिक प्रभाव**–समाज, बालक पर राजनीतिक प्रभाव भी डालता है। विद्यालय में छात्र संघों के माध्यम से राजनीतिक संरचना का अनुभव मिलता है तथा समाज के राजनीतिक वातावरण के लिए तैयार हो जाते हैं।
3. **आर्थिक प्रभाव**–समाज की आर्थिक स्थिति का प्रत्यक्ष पड़ता है। सम्पन्न समाज में विद्यालय आकर्षक होते हैं और उनमें पढ़ने वाले छात्रों को सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है। अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का स्तर, जिला परिषदों के विद्यालयों से इसी कारण भिन्न होता है।
4. **सांस्कृतिक प्रभाव**–प्रत्येक समुदाय की अपी अपनी संस्कृति होती है उसका प्रभाव समाज पर विद्यालयों तथा छात्रों पर पड़ना स्वाभाविक है। बालक समाज में रहकर विभिन्न संस्कृतियों को सीखता है और समाज में रहकर रीति–रिवाजों का पालन करना सीखता है।

त्वसम वि डवजपअंजपवद त्मपदवितबमउमदज बवउचमजपजपवद ंदक कपेबपचसपदम पद ेवबपंस कमअमसवचउमदज वि बीपसकतमद

बच्चों के सामाजिक विकास में अभिप्रेरणा पुर्नबलन प्रतियोगिता और अनुषासन की भूमिका

1. **अभिप्रेरणा** ;डवजपअंजपवदद्ध बच्चों के सामाजिक विकास की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा के प्रत्यय का महत्वपूर्ण स्थान है। अभिप्रेरणा का उचित प्रयोग करके बच्चों में सामाजिकता की भावना का उचित विकास किया जा सकता है। अभिप्रेरित बालक ज्ञानार्जन के लिए भी तत्पर रहते हैं तथा वे शीघ्रता सरलता सहजता तथा सुगमता से सीख सकते हैं। इसके विपरीत जो बालक अभिप्रेरित नही होते हैं उन्हें प्रायःनई बातों को सीखने में रूचि नही होती है तथा वे सीखने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। जैसे बालकों को षिक्षा की महत्ता बताकर उनके भावी जीवन में षिक्षा की आवष्यकता स्पष्ट की जा सकती है जिससे वे अपने लिए षिक्षा की आवष्यकता को महसूस कर सकें तथा षिक्षा प्राप्ति की ओर अधिकाधिक अभिप्रेरित हो सकें। उसी तरह बालक को सामाजिक विकास की षिक्षा देने के लिए उसे समाज की आवष्यकता और उपयोगिता को समझाकर उसे सामाजिक प्राणी बनाया जा सकता है उसे यह समझाया जा सकता है जैसे बालक का मानसिक आर्थिक और संवेगात्मक विकास है उसी प्रकार उसका सामाजिक विकास भी जरूरी है जब तक वह समाज के साथ अर्न्तक्रिया करना नही सीख लेता है वह समाज के लाभ को नहीं समझ सकता है। सामाजिक विकास से ही बालक समझ सकता है कि कैसे समाज में रहकर उसमें सामाजिकता के गुण का विकास होता है समाज में रहकर ही वह सामाजिक वातावरण के साथ अनुकूलन कर सकता है कैसे सामाजिक व्यवहार,मान्यताओं और परम्पराओं को अर्जित कर सकता है। सामाजिक

अर्न्तक्रिया के फलस्वरूप व्यक्ति समाज के आदर्ष मूल्यों तथा विष्वासों में आस्था रखना सीखता है एवं समाज हित में अपने निहित स्वार्थो को त्याग करने के लिए तत्पर रहता है।

2. **पुनबर्लन** ;त्मपदवितबमउमदजद्ध पुनबर्लन से तात्पर्य किसी अपेक्षित अनुक्रिया के लिए व्यक्ति को प्रेरित करना। यदि किसी काम को करना है तो यदि हम उस काम के बदले उसे कुछ दें तो वह व्यक्ति काम करने में उत्सुक रहता है तो काम के बदले में मिलने वाली वस्तु को हम पुनबर्लन कहते हैं। पुनबर्लन के द्वारा हम बच्चों को सामाजिक गुणों को समझा सकते हैं। जैसे–यदि हम बच्चों को किसी के आने पर हाथ जोड़कर नमस्कार कराना सीखाते है लेकिन वह कई बार भूल जाते हैं अब यदि हम उसे यह बताये कि वह सबके आने पर यदि वह हाथ जोड़े तो उसे चॉकलेट दें तो वह कभी भी नही भूलेगा और बड़ों का सम्मान करना सीखेगा। पुनबर्लन द्वारा बच्चों के व्यवहार में परिवर्तन लाकर उसे सामाजिक प्राणी बनाया जा सकता है। समाज में रहने व सामाजिक नियमों को बच्चों को सीखाने में पुनबर्लन की बहुत ही अहम् भूमिका है क्योंकि षिक्षक बच्चों को पुनबर्लन का लालच देकर उसे समाज के नियम और संस्कृति को समझा सकता है जो बच्चों को भविष्य में काम आयेगा।

3. **स्पर्धा** ;बवउचमजपजपवदद्ध प्रतिस्पर्धा हमारे सामाजिक जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह समाज में लोगों से कई तरह के कार्य करवाती है। प्रत्येक समाज में बच्चों की भूमिका और स्थिति प्रतिस्पर्धा से निर्धारित होती है। समाज में सामाजिक स्थिति और प्रतिस्पर्धा हमेषा एक दूसरे से जुड़ी हुई है बच्चों को समाज में सामाजिक स्थिति बनाये रखने के लिए प्रतिस्पर्धा से हमेषा जुड़ा रहना पड़ता है लेकिन ये प्रतिस्पर्धा हमेषा अच्छी भावना से होनी चाहिये क्योंकि कभी–कभी माता–पिता अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाये रखने या

बढ़ाने के लिए बच्चों में प्रतिस्पर्धा की भावना को ज्यादा बढ़ावा देते हैं जो कि गलत है। प्रतियोगिता व्यक्तियों या बच्चों के लिए एक प्रेरणा का स्त्रोत होना चाहिये यह बच्चों को मान्यता प्राप्त करने या समाज में किसी पुरस्कार को जीतने के लिए प्रेरित करता है। कई बार बच्चे लक्ष्य को पाने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं जिससे उनकी व्यक्तिगत दक्षता बढ़ती है। लेकिन इस समय माता–पिता को ध्यान देना चाहिये कि बच्चे इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रष्न ना बना लें क्योंकि इससे उनमें एक दूसरे बच्चों के प्रति नकारात्मकता की भावना आ जाती है और बच्चों के बीच का वातावरण सामाजिक नही रह जाता है बल्कि द्वेषपूर्ण हो जाता है। स्वस्थ और निष्पक्ष प्रतियोगिता मानव कल्याण के लिए आवष्यक मानी जाती है यह सामाजिक और आर्थिक प्रगति का प्रतीक है। प्रतियोगिता वैज्ञानिक खोजों और अविष्कारों की ओर ले जाती है। प्रतियोगिता बच्चों में अच्छे एवं नये अनुभव और बेहतर पहचान तथा अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए बेहतर अवसर प्रदान करती है।

4. **अनुशासन** ;क्पेबपचसपदमद्ध बच्चों के सामाजिक विकास में अनुषासन का बहुत महत्व है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और अनुषासन के बिना एक सभ्य समाज की कल्पना करना कठिन है अनुषासन की पहली सीढ़ी विद्यालय होता है क्योंकि विद्यालयय ही अच्छी षिक्षा देकर बच्चों को बेहतर नागरिक बनाता है जो स्वस्थ समाज के निर्माण में भागीदार बन सके। बच्चों को अनुषासन का महत्व समझाते रहना चाहिये क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुषासन का महत्व है। अनुषासन से ही बच्चों में धैर्य ओर समझदारी का विकास होता है समय पर सही निर्णय लेने की क्षमता बढ़ती है ओर कार्य क्षमता का विकास होता है। बच्चों में अनुषासन और अभ्यास से ही आत्मविष्वास पैदा होता है। ये बच्चों के चरित्र और व्यक्तित्व के निर्माण में सबसे अहम् भूमिका

निभाता है। अनुषासन ही सफलता की कुंजी है। घर, परिवार, समाज, गांव, शहर, राज्य और राष्ट्र में हर जगह सभी कार्यो में अनुषासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बच्चों को अनुषासन के जरिए अनुषासित होना सीखाना चाहिये। क्योंकि देषहित में प्रत्येक नागरिक का अनुषासित होना सबसे आवष्यक और पहला कर्त्तव्य है यदि बच्चा अनुषासित रहेगा तो वह चाहे षिक्षा से संबंधित कार्य हो या समाज और राष्ट्र से संबंधित कार्य हो अच्छी तरह से ही कर सकेगा । समाज के प्रति अपने दायित्व को समझ सकेगा क्योकि समाज परिवार विद्यालय पास पडौस मिलकर बनता है और इन सबके बीच समाजस्य तभी बैठ सकता है । जब बच्चे में अनुषासन की भावना है वरना उसका जीवन और भविष्य सभी प्रभावित होगे तब वह न तो समाज और ना ही राष्ट्र के उत्थान में वह न तो समाज और ना ही राष्ट्र के उत्थान में अपना दायित्व निभा पायेगा और ना ही अपने लक्ष्य को पा पायेगा ।

खण्ड – 1

इकाई–3

बालक का समाजीकरण और बाल्यावस्था

संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देष्य

1.3 समाजीकरण
- 1.3.1 समाजीकरण का प्रत्यय
- 1.3.2 समाजीकरण की प्रक्रिया
- 1.3.3 विभिन्न संस्कृतियों मे सामाजीकरण

1.4 मारगरेट मीड का सामाजीकरण का अध्ययन 'सामोअन' किषोरावस्था बालिका पर

1.5 समाजीकरण की संस्थाएँ
- 1.5.1 परिवार की भूमिका
- 1.5.2 साथियों का समूह
- 1.5.3 विद्यालय या षिक्षण संस्थाएँ
- 1.5.4 षिक्षक
- 1.5.5 समाज

1.6 बाल्यावस्था के दौरान बालक के व्यवहार
- 1.6.1 आक्रमकता
- 1.6.2 हिंसा
- 1.6.3 चिढ़ाना

1.7 इकाई सारांष

1.8 अपनी प्रगति की जाँच करें

1.9 नियतकार्य

1.10 चर्चा / स्पष्टीकरण के बिन्दु

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1.1 प्रस्तावना (प्दजतवकनबजपवदद्ध – जन्म के समय बालक न तो सामाजिक होता है और न असामाजिक वह मनोषारीरिक प्राणी (च्लबीव चीलेपबंस ंदपउंस) होता है। बालक को उसके अस्तित्व का बोध व व्यक्ति कराते है जिनसे वह घिरा होता है। इसी प्रकार बालक समाज के सदस्यो के संपर्क में आता है और वह सामाजिक प्राणी बनता है। बालक आरंभ मे अनुकरण से सीखता है। अनुकरण से ही वह अनेक समाजिक गुणो को प्राप्त करता है। परिवार मे रहकर वह एक सामाजिक प्राणी बनता है। परिवार ही उसमे अनेक समाजिक गुण उत्पन्न्न करता है। जिस प्रक्रिया के द्वारा बालक जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी बनता है सामाजीकरण की प्रक्रिया कहते है।

1.2 उद्देष्य (वइरमबजपअमेद्ध :– इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य होंगे कि आप निम्न बातों को गहराई से समझ सकेंगे व इनके बारे मे आपका व्यापक परिप्रेक्ष होगा।

- बालक का समाजीकरण और बाल्यावस्था
- समाजीकरण का प्रत्यय व प्रक्रिया
- विभिन्न संस्कृतियों का सामाजीकरण
- मागरेट मीड़ का सामाजीकरण का अध्ययन
- सामोअन बालिकाओं पर
- सामाजीकरण मे परिवार, मित्रों, विद्यालय व समाज की भूमिका
- बाल्यवस्था मे विभिन्न क्रियाएँ जैसे आक्रमकता, बदमाषी व चिढ़ाना

1.3 सामाजीकरण (वबपंसप्रंजपवदद्ध
सामाजीकरण की परिभाषाएँ :–

1. **बोगार्डस–** "एक साथ मिलकर कार्य करने, सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने, अन्य व्यक्तियों की कल्याण संबंधी आवष्यकताओं को समक्ष रखकर कार्य करने की प्रक्रिया को समाजीकरण की प्रक्रिया कहते है।"
2. **ग्रीन–** सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक सांस्कृतिक विषेषताँए, आत्म तथा व्यक्तित्व को प्राप्त करता है।
3. **फीटचर–** समाजीकरण एक व्यक्ति एवं उसके साथ कार्य करने वाले व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक प्रभावित करने की प्रक्रिया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप सामाजिक व्यवहार के तरीके स्वीकार किये जाते है तथा उसके साथ अनुकूल किया जाता है।
4. **जॉनसन–** समाजीकरण वह सीखना है जो सीखने वाले को सामाजिक कार्य करने योग्य बनाता है।
5. **रॉस–रॉस–** के अनुसार समाजीकरण में व्यक्तियों में साथीपन की भावना तथा क्षमता का विकास और सामूहिक रूप से कार्य करने की इच्छा निहित है।
6. **कुक–कुक** के अनुसार, समाजीकरण की प्रकिया का परिणाम यह होता है कि बालक सामाजिक दायित्व को स्वयं ग्रहण करता है और समाज के विकास में येाग देता हैं।
7. **ऑगबर्न तथा निमंकाक –** समाजीकरणष्षब्द कुछ समाजषासत्रियों के दवारा उस प्रकिया के लिए प्रयोग किया जाता है जिसमें व्यक्ति मानव के रूप में परिवर्तित हो जाता है।
8. **चार्ल्स एडवड–** समाजीकरण एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों, अपने समूहों और दूसरे समूहें के साथ सच्चा और हितकार एकाकार है।

9. गिलिन तथा गिलिन – समाजीकरण से हमारा अभिप्राय उस प्रक्रिया से लगाया जाता है, जिसके द्वारा व्यक्ति समूह के मापदण्ड के अनुसार समूह का एक सक्रिय सदस्य बन जाता है, समूह की कार्य विधियों से सहमति प्रकट करता है, इसकी परम्पराओं का ध्यान रखता है और सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन करते हुए यदि अपने साथियों की प्रषंसा नहीं तो यथेष्ट सीमा तक धैर्य की भावना अवष्य विकसति करता है।

समाजषास्त्रियों ने समाजीकरण की परिभाषा अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत की है। समाजीकरण की उक्त परिभाषाएँ निम्नलिखित तथ्यों की ओर संकेत करती है–

1. समाजीकरण की प्रक्रिया तीन महत्वपूर्ण पक्षों पर आधारित हें ये पक्ष निमनलिखित हे–(1) जीव–रचना, (2) व्यक्ति तथा (3.) समाज
2. समाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया हैं।
3. समाजीकरण के द्वारा जैविकीय व्यक्ति सामाजिक व्यक्ति में परिवर्तित हो जाता है।
4. समाजीकरण अनुकूलन करना सिखाता है।
5. समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बन जाता हैं
6. समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के आत्म के विकास करने में सहायक होती है।
7. समाजीकरण की सीख की प्रक्रिया सांस्कृतिक विषेषताओं से संबंधित होती है।
8. समाजीकरण की प्रक्रिया अत्यंत व्यापक होती है ।
9. समाजीकरण करने वाली संस्थाएँ अनेक होती है।
10. समाजीकरण की प्रक्रिया ही संस्कृति को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करती रहती है।

समाजीकरण किस प्रकार होता है?

समाजीकरण सामाजिक अन्तः किया से होता है। इसमें बालक एक दूसरे के संपर्क में आते है यह सामाजिक अन्तः किया दो स्तरों पर होती है। प्रारंभिक अन्तः किया व्यक्तियों के मध्य होती है

सामाजिक अन्तः किया कई रूपों में प्रकट होती है

1. प्रतिद्वन्दिता –अविभाज्य लक्ष्य को दो या दो से अधिक व्यक्ति प्राप्त करना चाहते है और उसके लिए संघर्ष करते है।

2 सहयेाग –इसमें सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयत्न होता है । व्यक्तिगत उपलब्धियों के लिए प्रतिद्वन्दिता एवं सामूहिक उपलब्धि के लिए सहयेाग अत्यावष्यक सामाजिक अन्तः क्रिया है।

3.संघर्ष –संघर्ष में पारस्परिक विरोध होता है।

4. समंजन –समंजन में पारस्परिक अनुकूलन निहित है।

5.तादात्मय–सामाजिक अन्तः क्रिया का परिणाम हम दूसरेां की रूचियों के साथ तादात्म्य के रूप में देखते है। संकेत एंव अनुकरण भी प्रभावषाली अन्त क्रियाएँ हैं इन अन्तः क्रियाओं से बालक का समाजीकरण होता है।

समाजीकरण का महत्व

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। बालक एक स्वार्थी तथा एक उपद्रवी के रूप में जीवन आरंभ करता है। समाजीकरण के द्वारा धीर–धीरे उसकी सामाजिक चेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना में वृद्धि हेाती है। समाजीकरण की प्रक्रिया बालकों को उनके संबंधों को नियंत्रण में रखना सिखाती है। समाजीकरण की प्रक्रिया बालको को उनके संवेगों को नियंत्रण में रखना सिखाती है। समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति अपने साथी मनुष्यों को प्रभावित करता है। समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के अन्दर सदैव चलती

रहती है और इसी प्रकार वह अपने चारों ओर के व्यक्तियों के साथ सांमजस्य स्थापित करता है। इसी प्रकिया के द्वारा व्यक्ति उस समाज की आदतों को ग्रहण कर लेता हे जिसमें वह रहता है।षैष्वाववस्था से ही वह धीरे–धीरे समाज के नियमों के अनुसार चलने लगता है। व्यक्ति जीवन के जो मूल्य सीखता है, वे समाजीकरण के ही परिणाम होते हैं। इसी प्रकिया के द्वारा व्यक्ति नयी समस्याओं का समाना करता है तथा वर्तमान घटनाओं का पिछले अनुभवों की सहायता से समझने का प्रयत्न करता है।समाजीकरण की प्रकिया के महत्व का सार यह है कि बालक समाज के साथ संबंध करके ही सीखता है।

एक अर्थ में समाजीकरण की प्रकिया सामाजिक कियाओं में भाग लेना भी है। यह बिना किसी पुरस्कार की आषा के तादाम्यीकरण(पकमदजपपिबंजपवद) है। जिस व्यक्ति का समाजीकरण हो जाता है वह समाज के अनुचित कार्यो में भाग नहीं लेता। एक नागरिक सामुदायिक कल्याण, राष्ट्रीय कल्याण और यहॉ तक कि विष्व कल्याण को भी व्यक्तिगत लाभ से ऊपर रखता है। जिस व्यक्ति का समाजीकरण हो चुका है, वह व्यक्ति जीवन मूल्यों को सब वस्तुओ से ऊपर रखता हैं । समाजीकरण व्यक्तियों के मध्य निकटता लाता है।

1.3.1 समाजीकरण का प्रत्यय (ब्वदबमचज वि वबपंसप्रंजपवदद्ध :– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जब सामाजषास्त्री यह कहते है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तो इससे यह आषय नही है कि ऐसा व्यक्ति सुन्दर है या सुसंस्कृत है या गुणी व्यक्ति है। एक व्यक्ति इस अर्थ में समाजिक होता है कि उसे मनुष्य के संपर्क की आवष्यकता होती है। बालक एक स्वार्थी, एक उपद्रवी के रूप मे जीवन आरंभ करता है। परंतु धीरे–धीरे उसमे सामाजिक चेतनता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होना आरंभ हो जाती है। बालक के जीवन के प्रारंभिक दिनो मे संकुचित तथा स्वर्थी इच्छाऍ प्रधान रहती है। परंतु बालक धीर–धीरे अन्य व्यक्तियों के संपर्क मे आने के फलस्वरूप सामाजिक प्राणी बन जाता है।

1.3.2 सामाजीकरण की प्रक्रिया (च्तवबमे वि वबपसप्रंजपवदद्ध– समाजीकरण एक प्रक्रिया है। इसकी व्याख्या दो दृष्टिकोणो से की जा

सकती है।

1) वैषयिक या वस्तुनिष्ठ दृष्टि से और

2) व्यक्तिगत या प्रातीतिक दृष्टि से।

1) वैषयिक (व्इरमबजपअम) – वैषयिक दृष्टि से सामाजिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज अपनी संस्कृतिको एक पीढ़ी से दूसरी दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है। इस प्रक्रिया मे समाजीकरण का कार्य उन गुणो, कुषलताओ तथा अनुषासन का विकास करना है जिनकी हमे आवष्यकता होती है। इस दृष्टि से समाजीकरण की प्रक्रिया समाज के सदस्यो को उन समाजिक कार्यो की षिक्षा देती है जिनको समाज के को करना चाहिए। समाजीकरण की यह प्रक्रिया बालक को निरंतर बाहर से प्रभावित करती रहती है। यह प्रक्रिया समाज के प्रत्येक सदस्य को प्रभावित करती रहती है। समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति को उन व्यवहारो का प्रषिक्षण देती है जिनसे व्यक्ति अपनी संस्कृति बनाए रखने मे समर्थ होता है।

2) व्यक्तिगत (नइरमबजपअम) –व्यक्तिगत दृष्टि से समाजिकरण वह क्रिया है जो समाज के सदस्यो मे आन्तरिक रूप से उस समय तक चलती रहती है जबकि वे अपने पर्यावरण से अनुकूलन करने मे प्रयत्नषील होते है। समाज का सदस्य उस समाज की आदतों को अपना लेता है जिसमे वह रहता है ।

बालक आरंभ से ही समाज के नियमो का पालन करने लगता है। यदि कोई सदस्य बाहर से आकर किसी समाज के नियमों का पालन करने लगता है। यदि कोई सदस्य बाहर से आकर किसी समाज का सदस्य बन जाता है ंतो वह भी समाज के उन्ही नियमों का पालन करने लगता है। समाजीकरण की वह प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। फिटचर (थ्पबीजमत) कहते है कि जीवन के वे व्यवहार जो व्यक्ति सीखता है, अपनी विचारधारा जिसका वह निर्माण करता है, जीवन के वे मूल्य जिनका वह संग्रह करता है, व्यक्ति को बाहर से प्राप्त होते है। परंतु ये सब समाजीकरण के ही परिणाम होते है। समाजीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप ही व्यक्ति नवीन समस्याओं का सामना अतीत के अनुभव के आधार पर करता है। समाजीकरण की प्रक्रिया का सार यह है कि व्यक्ति समाज के साथ संबंध स्थापित करके ही सीखता है। इस प्रकार व्यक्ति उस ज्ञान को प्राप्त करता है जो समाज मे सभी सदस्यो के पास होता है। इस ज्ञान का विषेष सामाजिक महत्व होता है।

1.3 विभिन्न संस्कृतियो का सामाजीकरण ै(वबपंसप्रंजपवद व िकपमिमितमदज बनसजनतमेद्ध–

संस्कृति ही सहायता से मनुष्य अपना विकास करता है। जन्मता तो वह पषुवत् ही होता है। पाषविक षक्तियों पर नियंत्रण एवं समाजोपयोगी तत्वो का विकास संस्कृति की सहायता से ही होता है। मनुष्य के आस–पास का भौगोलिक वातावरण उस पर बड़ा प्रभाव डालता है। इस वातावरण मे अपने को व्यवस्थित करने मे व्यक्ति को संस्कृति से सहायता मिलती है।

भौगोलिक वातारण ही नही, समाजिक वातावरण से भी सामंजस्य प्राप्त करने का साधन संस्कृति है। संस्कृति से व्यक्ति के व्यक्तित्व मे निखार आता है। संस्कृति के सार्वभौमिक रूप मे व्यक्ति कभी–कभी भाग लेता है जिससे एक वर्ग भाग लेता है। कुछ व्यक्ति इस विषिष्ट संस्कृति मे भाग लेकर अपना उन्नयन करते है। संस्कृति के विषिष्ट तत्वो का प्रभाव व्यक्ति के विकास मे सार्वभौमिक तत्वो से अधिक पडता है। जो व्यक्ति वैकल्पिक रूप से संस्कृति के विषिष्ट तत्वो को जितना ही अधिक अपनाता है उसका व्यक्तित्व उतना ही अधिक सुविकसित एवं उन्नत समझा जाता है।

मारगेट मीड और लिण्टन जैसे मानव – विज्ञानियो के अनुसार किसी समूह की संस्कृति को ग्रहण करने की प्रक्रिया को समाजीकरण कहा जाता है। संस्कृति के अंतर्गत किसी समूह की परंपराएँ, अभिवृत्तियाँ, आदतें, ज्ञानराषि, कला एवं लोककथाएँ आदि आती है।

संस्कृति का स्वरूप – किसी भी समाज को ठीक से समझने के लिए उस समाज की संस्कृति का अध्ययन आवष्यक होता है। संस्कृति समाजिक जीवन की संपूर्ण पद्धति को कहते है। इसलिए कहा जाता है।कि समाजिक जीवन की षैली का नाम ही संस्कृति है। क्यूबर ने अपनी पुस्तक "समाजषास्त्र" में संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार की है – "मानव विज्ञान के षब्दो मे संस्कृति सीखे हुए व्यवहारो के और सीखे हुए व्यवहारें के परिणामों के सतत् परिवर्तनषील रूपो को कहते है। इन सीखे हुए व्यवहारो मे अभिवृत्तियाँ,

आदर्ष, ज्ञान एवं भौतिक पदार्थ सम्मिलित है जिन्हे समाज के सदस्य आपस मे एक–दूसरे को प्रदान कर देते है।

कुछ विद्वानो के अनुसार संस्कृति मे प्राचीन जातियों और परंपराओं का ज्ञान मुख्य रहता है। कुछ के अनुसार केवल रहन–सहन , खान–पान या पहनावे के ढंग को प्रमुखता मिलनी चाहिए। कुछ व्यक्ति संस्कृति को जीवन के सार्वभौमिक दृष्टिकोण के रूप मे देखते है। किसी संस्कृति को किसी एक पक्ष मे सीमित करना ठीक नही है। यह एक जटिल पूर्णता है और इसमे नैतिकता, कला, विष्वास, धर्म, परंपराएँ, रहन–सहन सभी बातें षामिल है। टायलर ने कहा है कि 'संस्कृति' वह जटिल पूर्णता है जिसमें ज्ञान विष्वास कला नैतिकता, नियम, प्रथा और समाज के सदस्य के नाते मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यताँए व आदतें षामिल रहती है।

संस्कृति का निर्माण – व्यक्ति की अनेक प्रकार की आवष्यकताएँ होती है। इन आवष्यकताओं की पूर्ति का एक ढंग होता है। यह ढंग ही संस्कृति का निर्माण करता है। व्यक्ति की आवष्यकताओं को मुख्य रूप से हम दो भागो मे बाँट सकते है।

1. जीव–वैजिक (ठपवसवहपबंस)
2. मनोवैज्ञानिक (च्लबीवसवहपबंस)

जीव वैज्ञानिक आवष्यकताएँ बहुत कुछ षरीर से संबंधित होती है। जीवन की रक्षा के लिए इनकी पूर्ति आवष्यक है। इनमे मुख्य आवयष्कताएँ निम्नलिखित है–

;पद्ध वायु ;पपद्ध जल ;पपपद्ध भोजन ;पअद्ध निद्रा ;अद्ध बच्चो का लालन पालन ;अपद्ध दुखो से निवृत्ति

मनोवैज्ञानिक आवष्यकताएँ मन से संबंधित है और इनकी पूर्ति स्वस्थ मन के विकास के लिए आवष्यक है। ये मनोवैज्ञानिक आवष्यकताएँ मुख्य रूप से दो प्रकार की है। –

;पद्ध सुरक्षा ;पपद्ध अनुभव की नवीनता

उपर्युक्त षारीरिक एवं मानसिक आवष्यकताओ की तुष्टि विभिन्न विधियो से की जाती है। इसीलिए संस्कृतियों मे हम भिन्नता देखते है। भारतीय समाज मे इन आवष्यकताओं की पूर्ति की षैली अमरीकी समाज की षैली से भिन्न हैं। वह षैली ही किसी समाज की संस्कृति बनती है।

उप संस्कृति –

कभी–कभी एक देष के अंदर ही एक समुदाय की संस्कृति दूसरे समुदाय की संस्कति से भिन्न हो जाती है, अर्थात एक ही समाज मे भिन्न संस्कृतियाँ रहती है। इन संस्कृति को हम उप–संस्कृतियाँ कह सकते है। उप–संस्कृति को जानने के लिए हम किसी समाज के व्यक्तियों की निम्नलिखित बातो को प्रायः देखते है–

;पद्ध आय ;पपद्ध व्यवसाय ;पपपद्ध षिक्षा ;पअद्ध भाषा ;अद्ध निवास स्थान ;अपद्ध व्यय की आदत

इनके अतिरिक्त हम किसी समाज की संस्कृति को समझने के लिए निम्नलिखित तत्वो की ओर ध्यान देते है। हम उस समाज के सदस्यो की रहन–सहन की आदतो को देखते है। रहन–सहन की आदतों मे निम्नलिखित बाते आती है–

;पद्ध वेष–भूषण ;पपद्ध भोजन ;पपपद्ध षारीरिक आदते ;पअद्ध विवाह एवं काम प्रवृत्ति के प्रति अभिवृत्ति ;अद्ध मजाक ;अपद्ध पारिवारिक जीवन का स्वरूप।

रहन सहन की आदतों के अतिरिक्त यह भी देखना आवष्यक होता है कि किसी समाज के सदस्य अवकाष के क्षणों का किस प्रकार उपयोग करते है। अवकाष के कार्यो को देखने के लिए निम्नलिखित बातो को देखना चाहिए –

;पद्ध अध्ययन ;पपद्ध खेल–कूद ;पपपद्ध मनोरंजन के अन्य साधन ;पअद्ध छूट्टी बिताने के ढंग ;अद्ध कलात्मक अभिव्यक्ति के साधन

किसी भी समाज की संस्कृति को जानने के लिए व्यक्तियों के विष्वासो की भी जानकारी होनी चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए।

;पद्ध नैतिक अभिवृत्तियाँ ;पपद्ध मान्य स्तर ;पपपद्ध धार्मिक विष्वास ;पअद्ध राजनितिक विचारधारा ;अद्ध सामाजिक महत्वकांक्षा ;अपद्ध जीवन के उद्देष्य

1.4 मारगरेट मीड का समाजीकरण का अध्ययन 'सामोअन' किषोरावस्था बालिकाओं पर (डंतहतमज उमंकष ेजनकल वि वबपंसप्रंजपवद वद ष्ेउवंदष ।कवसमेबमदज हपतसेद्ध–1925

में, मागरेट मीड में अमेरिकी सीमाओं के दक्षिण प्रषांत क्षेत्र की यात्रा की। उसने यह पता लगााने की कोषिष की क्या जैविक कारकों के कारण किषोरावस्था एक सार्वभौमिक रूप से दर्दनाक और तनावपूर्ण समय था या क्या किषोरावस्था का अनुभव किसी की सांस्कृतिक परवरिष पर निर्भर था। लगभग नौ महीने बिताने और समोआ का साक्षात्कार करने के साथ–साथ मनावैज्ञानिक परीक्षण करने के बाद ,मीड ने निष्कर्ष निकाला कि किषोरावस्था समोआ में लडकियों के लिए तनावपूर्ण समय नही था क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका में समोआ के सांस्कृतिक पैटर्न उन लोगों से बहुत अलग थे। उनके निष्कर्ष कमिंग ऑफ एज एन समोआ (1928) में प्रकाषित हुए थे, जो सामोन किषोर जीवन का एक ज्वलंत, वर्णनात्मक खाता था, जो काफी लोकप्रिय हुआ।मीड ने पुस्तक में तर्क दिया कि यह जैविकष्षक्तियों के बजाय सांस्कृतिक कारक थे जिससे किषोरो को भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक तनाव का अनुभव होता था।यह एक दर्जन से अधिक संस्करणों में विभिन्न भाषाओं में प्रकाषित हुआ और मीड को प्रसिद्ध बनाया। पुस्तक की लोकिप्रयता के कारणों मे से एक यह था कि मीड ने अपनी मूल पांडुलिपि के परिचय और निष्कर्ष को संषोधित किया था, जिसमें दो अध्याय जोडे गए थे जो संयुक्त राज्य अमेरिका में बच्चे के पालन के लिए उसके निष्कर्षो के निहितार्थ से सीधे निपटते थे।

1.5 समाजीकरण के साधन (।हमदबपमे वि वबपंसप्रंजपवद) –

सामान्य रूप से यह कहा जाता है कि संपूर्ण समाज ही समाजीकरण का साधन है। जो भी व्यक्ति किसी के संपर्क मे आता है किसी न किसी रूप मे उसका समाजीकरण करता है। समाजषासत्रियों ने समाजीकरण के कुछ साधन बतलाये है। ये साधन निम्नलिखित है :–

1.5.1 परिवार (थ्ंउपसलद्ध :– समाजीकरण एक जटिल प्रक्रिया है। इसमे अनेक संस्थाएँ अपना योगदान करती है। परिवार समाजीकरण की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। यही से बालक का समाजीकरण आरंभ होता है। किम्बाल यंग का कथन है– "समाज के अंदर समाजीकरण के विभिन्न साधनो मे परिवार सबसे महत्वपूर्ण साधन है।"

बालक के समाजीकरण मे परिवार एक स्थायी साधन है। व्यक्ति आजीवन परिवार मे रहता है। उसका संबंध परिवार के सभी सदस्यो से रहता है। व्यक्ति के जो परिवारिक संबंध होते है, वे उसके समाजीकरण को प्रभावित करते है। परंतु बालक के समाजीकरण मे उसके माता–पिता का सबसे अधिक योगदान रहता है। बालक के समाजीकरण पर उसके माता–पिता के स्नेह तथा सहानुभूति का विषेष प्रभाव पड़ता है।

बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया मे केवल माता–पिता का ही योगदान नही रहता, वरन् परिवार के अन्य सदस्य भी समाजीकरण के लिए सक्रिय रहते है। परिवार मे सभी सदस्यो का समान उत्तरदायित्व होता है। बड़ा भाई छोटे भाई के प्रति और छोटा बड़े भाई के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाता है। परिवार के सभी सदस्य बालक को समाज के नियमो का ज्ञान कराते है। परिवार के सदस्य ही उसे इस बात का ज्ञान कराते है कि क्या उचित है और क्या अनुचित अतः बालक के समाजीकरण मे परिवार एक प्रमुख संस्था है।

1.5.2 – साथियों का समूह (च्ममत हतवनच): – समाजीकरण के एक प्रमुख साधन के रूप में परिवार के बाद साथियों का समूह (च्ममत हतवनच) का स्थान आता हैं। बालक जब थोडा बडा होकर चलने फिरने लगता है, तो वह समान उम्र के अन्य बालकों के संपर्क में आता है और वह एक ग्रुप का निर्माण करता हैं।इस ग्रुप की विषेषता यह होती है कि इसमे सभी बालक करीब –करीब एक ही उम्र के होते है परंतु भिन्न–भिन्न परिवार के होते है यह ग्रुप दो उम्र स्तरों पर अधिक देखने को मिलते है। स्कूल में प्रथम बार प्रवेष करने के पहले की उम्र की बालकों का ग्रुप तथा स्कूल के साथियों का ग्रुप। प्राक्स्कूल ग्रुप (च्तम `बीववस हतवनच) के बालक जिनकी उम्र 3 से 5 साल के बीच होती है, आपस में मिलकर भिन्न– भिन्न तरह के खेल खेलते है जिनमें कल्पनात्मक खेल का महत्व बालको के समाजीकरण में काफी होता है।

हेथरिंगटन तथा पार्क (1979) के अनुसार बालकों में कल्पनात्मक खेल द्वारा उनका समाजीकरण तीव्रता से होता है क्योंकि इस खेल में बालक कल्पनात्मक रूप से भिन्न –भिन्न तरह की भूमिका करते है जिससे उन्हें भूमिका से संबंधित नया –नया अनुभव होता है।जो उन्हें सामाजिक व्यवहार को सीखने में मदद करता

है। चार्ल्सवर्थ तथा हार्टअप (1967) के अनुसार इस उम्र के बालकों के ग्रुप में प्रायः एक बालक दूसरे बालक पर अधिक ध्यान देता है तथा दूसरे का अनुमोदन एवं स्वीकृति प्राप्त करने की कोषिष करता है। इसका परिणाम यह होता है कि इन बालकों में सामाजिक सहयोग की भावना जगती है । जब बालक बडे होकर स्कूल में प्रवेष करते है और वहां जो अपना ग्रुप बनाते है उसका सामाजिकरण पर प्रभाव प्राक्स्कूल ग्रुप की अपेक्षा अधिक पडता है। स्कूल का ग्रुप बालकों को लोकतांत्रिक होना सिखाती है,स्वार्थीपन तथा समाजविरोधी विचारों से ऊपर उठकर एक –दूसरे के साथ मिलकर कार्य करना सिखाती है तथा साथ ही साथ उनमें प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करके अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं को बढाने का मौका देती है। हेविगहर्स्ट,(1972) ने एक अध्ययन किया जिसके आधार पर उन्होने निम्नांकित चार तरीकों का वर्णन किया है जिनके सहारे साथियों का समूह बालकों को सामाजीकृत करता है

1 साथियों का समूह भिन्न –भिन्न परिवार के बालकों को एक –दूसरे के नजदीक आने का मौका देता है तथा उन्हें एक सामाजिक रूप से अनुमोदित व्यवहार करने की प्रेरणा देता है।

2 साथियों का समूह बालकों में विवेकी अन्तः करण विकसित करने में मदद करता है । विवेकी अन्तः करण से तात्पर्य सामाजिक मूल्यों को समझने तथा उनके अनुसार व्यवहार करना सीखने से होता है।

3 साथियों द्वारा प्राप्त अनुभवों से बालकों में उचित सामाजिक मनोवृत्ति विकसित होती है । बालक यह सीख लेते है कि अन्य व्यक्तियों के साथ उनका सम्बन्ध कैसा रहना चाहिए तथा सामाजिक जिन्दगी एवं समूह की क्रियाओं के साथ किस तरह से आनंद प्राप्त किया जा सकता है।

4 साथियों का समूह सदस्यों को सांवेगिक सन्तुष्टि देता है जिससे उनमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न होती है। बाद में चलकर ऐसे बालकों का समाजीकरण अधिक तेजी से होता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि साथियों का समूह बच्चों को समाजीकृत करने में कई ढंग से मदद करता है।

1.5.3 – षिक्षण संस्थाएँ (बीववस) :– बालक के समाजीकरण मे षिक्षण संस्थाएँ भी प्रमुख भूमिका निभाती है। विद्यालय ही वह स्थान है जहाँ बालक की मानसिक षक्तियों का विकास होता है। षिक्षण संस्थाएँ ही बालक की मानसिक समाजिक और संवेगात्मक विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। विद्यालय को लघु समाज माना जाता है। विद्यालय से परिवार का क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है। यहाँ बालक अनेक साथियों के संपर्क मे आता है। इस प्रकार षीघ्रता से उसका समाजीकरण होता है। प्रतियोगिता बालक के समाजीकरण मे सहायता करती है। विद्यालय मे लगभग सभी स्थानो पर प्रतियोगिता होती है। बालक एक–दूसरे से आगे निकलना चाहते है। विद्यालय अनेक प्रकार से बालक के व्यक्तित्व का विकास करता है। विद्यालय मे षिक्षक तथा विद्यालय का अनुषासन बालक के समाजीकरण मे सहायता करते हैं। विद्यालय विद्यार्थी को सामाजिक संस्कृति से परिचय कराता है और सामाजिक प्रथाओं का मूल्यांकन करके नये समाज की रचना की प्रेरणा देता है। विद्यालय भी एक प्रकार का समाज ही है। यहाँ पर छात्रों के

बीच में, छात्रों एवं अध्यापकों के बीच में, अध्यापकों के ही बीच में, छात्रों एवं प्रधानाचार्य के मध्य तथा षिक्षकों एवं प्रधानाचार्य के मध्य सामाजिक अन्तःक्रिया होती रहती है।

बालक के समाजीकरण करने में विद्यालय में निम्नलिखित बातों की ओर विषेष ध्यान दिया जा सकता हैः–

1. विद्यालय में सामूहिक कार्यो की व्यवस्था करना, नाटक ,वाद–विवाद, सामूहिक षिक्षण आदि का आयोजन करना।
2. सामूहिक अन्तः क्रिया के अन्य विभिन्न अवसर प्रदान करना, यथा–विद्यालय एंव समाज के मध्य सम्पर्क बढ़ाना।
3. सामाजिक कौषलों एंव सामाजिक अनुभवों की षिक्षा प्रदान करना पत्र–लेखन, सहभोज आदि ऐसे ही कौषल हैं।
4. सामाजिक अनुषासन की भावना पैदा करना। नैतिक एंव सामाजिक मूल्यों के द्वारा सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्था करना।
5. दण्ड एंव पुरस्कार के रूप में सामाजिक सम्मान एंव तिरस्कार की स्वस्थ भावना उत्पन्न करना।
6. छात्रों को उनकी योग्यताओं के अनुरूप महत्वकांक्षी बनाना जिससे वे अच्छे पिता , वयवसायी या अधिकारी बनने का प्रयतन करें।

1.5.4 षिक्षक(ज्मंबीमतद्ध –परिवार में बालक का समाजीकरण करने में माता–'पिता ,भाई –बहन , अन्य रिष्तेदार आदि का हाथ रहता है। माता–पिता का हाथ विषेष रूप से रहता है। बालक जब विद्यालय आता है तो वहॉ पर भी वह अपने माता–पिता के आदर्षों को अपने साथ लाता है। माता पिता के पष्चात् अध्यापक का ही सबसे अधिक हाथ बालक के समाजीकरण में रहता है।

अध्यापक को बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया में अग्रलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिएः–

1. कक्षा में अधिकार पूर्ण वातावरण नहीं होना चाहिए।
2. जहाँ तक हो सके, छात्रों को वार्तालाप के अवसर प्रदान किये जाए। अध्यापक को यथासाध्य कम बोलना चाहिए।
3. अध्यापकों में आपस में आदर्षों पर मतभेद नहीं होना चाहिए। इससे छात्रों के मन में संस्कृति के प्रति संदेह नहीं उत्पन्न होगा।
4. कभी–कभी छात्रों के माता–पिता के आदर्ष अध्यापकों के आदर्षों से बिलकुल मेल नहीं खाते हैं। इस प्रकार की स्थिति का विष्लेषण करके अध्यापकों को अपने एवं छात्रों के माता–पिता के आदर्षों में समन्वय स्थापित करना चाहिए।
5. विद्यालय में मानवीय संबंध उचित हों। छात्रों को षिक्षकों से एवं षिक्षकों का प्राधानाचार्य से स्वस्थ संबंध होना चाहिए।
6. अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान की भावना के साथ–साथ समालोचनात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न होना चाहिए। छात्रों में सामाजिक मूल्यो के प्रति सृजनात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहिए। जिससे संस्कृति का विकास हो सके।
7. सामूहिक कार्यों को प्रोत्साहन देना चाहिए। विद्यालय में स्वस्थ परम्पराओं का विकास करना चाहिए जिससे सामाजिक परम्परा से प्रेरित होकर छात्र अनुषासित जीवन बिताये। छात्रों में स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करनी चाहिए।
8. अन्तर सामूहिक षिक्षा की ओर विषेष ध्यान देना चाहिए जिससे एक समूह के छात्र अन्य समूहों की संस्कृति का आदर कर सकें। विद्यालय को सामूदायिक केन्द्र के रूप मे परिवर्तन करना चाहिए जिससे स्थानीय समुदाय की मान्याताओं का छात्र दर्षन कर सके।
9. छात्रों में यह भावना भरना कि वह माता–पिता एवं परिवार के विरूद्ध न चले। यदि कहीं पर उन्हें त्रुटि दिखाई पड़े तो उनमें संषोधन करके उसे स्वीकार करें।

10. षिक्षक के द्वारा अपनी कथनी तथा करनी मे अंतर नहीं आने देना चाहिए। जब अध्यापक के आदर्ष से छात्र के माता–पिता के आदर्ष मेल नहीं खाते तो कभी–कभी छात्र अपने अध्यापक के विरूद्ध हो जाता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने का अवसर ही नहीं देना चाहिए।
11. अध्यापक को सामाजिक आचरण का मानदण्ड स्थिर करना चाहिए उसे भी उसी के अनुसार चलना चाहिए ताकि छात्र कक्षा में या कक्षा से बाहर अध्यापक के आचरण का अनुकरण कर सकें।
12. बालक के चरित्र तथा व्यक्तित्व के विकास मे सहायक होना चाहिए। छोटी–छोटी बातो पर बालको को षारीरिक दंड नहीं देना चाहिए।
13. बालको के समक्ष कोई अनुचित व्यवहार न करे व उनके साथ सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए । इस प्रकार बालक के समाजीकरण में षिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है।

1.5.5 समाजः–(वबपमजलद्ध समाज का संगठन षिक्षा को सदैव प्रभावित करता रहा है। समाज विज्ञान के दृष्टिकोण से षिक्षा एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है। षिक्षा से आषय केवल विद्यालय–षिक्षण से नही है। षिक्षा की प्रक्रिया का प्रारंभ बालक के जन्म से ही हो जाता है। षिक्षा की प्रक्रिया भी विषेष रूप से एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप बालक के व्यवहार मे परिवर्तन लाया जाता है। बालक की मूलप्रवृत्तियों को सामाजिक वातावरण के द्वारा प्रेरणा मिलती है और वह सीखने लगता है। उसके व्यवहार मे परिवर्तन आ जाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः उसके अस्तित्व के लिए समाज अनिवार्य है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक है। षिक्षा एक समाजिक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया समाज के द्वारा समाज के लिए चलाई जाती है। समाज अपने उद्देष्यों को प्राप्त करने के लिए षिक्षा का सहारा लेता है। प्रत्येक समाज अपनी मान्यताओ तथा आवष्यकताओं के अनुकुल ही षिक्षा की व्यवस्था करता है। प्रत्येक समाज अपने सदस्यो के लिए षिक्षा की व्यवस्था करता है। प्रत्येक समाज अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अपने सदस्यो के लिए षिक्षा की व्यवस्था करता है। किसी समाज मे एक धर्म विषेष को मान्यता दी जाती है। कुछ समाजो मे सभी धर्मो का आदर किया जाता है। इन सभी समाजो की षिक्षा व्यवस्था में भिन्नता होती है।समाज की राजनैतिक स्थिति का भी षिक्षा व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। जिन देषो मे एकतंत्र षासन प्रणाली होती है, वहाँ षिक्षा के द्वारा राज्य के सेवक तैयार किए जाते है। परंतु जिन देषो मे जनतंत्र प्रणाली है वहा प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का आदर किया जाता है ऐसे देष मे बालक की षिक्षा का प्रबंध उसकी रूचि तथा क्षमता के अनुसार किया जाता हैं।

1.6 बाल्यवस्था के दौरान बालक के व्यवहार (ठमींअपवनत वि बीपसक कनतपदह बीपसकीववकद्ध

1.6.1 आक्रमकता–(।हहतमेपवदद्ध

किसी दूसरे व्यक्ति के खिलाफ जानबूझकर प्रयोग किए गए षारीरिक बल या ताकत या ऐसा करने की धमकी देला या वास्तव मे ऐसा करने से है जिसके फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक क्षति पहुचती है, चोट लगती है या कुछ मामलो मे मृत्यु हो जाती है। इसमे उकसाकर या अकारण किए जाने वाले कार्य षामिल

हो सकते है और यह कोई एकमात्र घटना हो सकती है, या कोई आकस्मिक कृत्य हो सकता है। या फिर यह समय के साथ–साथ घटित हो सकता है।

1.6.2 डराना धमकाना–(ठनससलपदहद्ध

डराने धमकाने के प्रकार – डराने–धमकाने का वर्णन आम तौर पर इसमे षामिल व्यवहारों के प्रकारो के द्वारा किया जाता ह, इसलिए हम मुँह – जवानी, सामाजिक और षारीरिक रूप से डराने–धमकाने के बारे मे बात करते है।

डराने–धमकाने को कभी–कभी इस हिसाब से भी वर्गीकृत किया जाता है कि यह कहा घटित हुआ है अथवा नुकसान किस प्रकार का हुआ है। इन षब्दो का प्रयोग अकेले या संयोजन में किया जा सकता है। यह पेचीदा हो सकता है। डराने–धमकाने का वर्णन करने के सबसे सामान्य तरीके नीचे दर्षाये गए है।

व्यवहार के प्रकार

जवानी, सामाजिक और षारीरिक – डराने धमकाने का व्यवहार तीन प्रकार का होता है।

1) **मुँह–जवानी डराना–धमकाना –** जिसमें गाली गलोच करना या किसी के भार या कद जैसे षारीरिक विषिष्टता या जाति लैगिंकता संस्कृति या धर्म जैसी अन्य विषेषताओ के कारण उनका अपमान करना षामिल है।

2) **षारीरिक रूप से डराना–धमकाना –** जिसमें किसी से मारपीट करनी या अन्यथा उन्हे नुकसान पहुँचाना, किसी व्यक्ति को धक्का देना या भयभीत करना, या उनकी संपत्ति को नुकसान पहुँचाना या उसे चोरी करना षामिल है

3) **सामाजिक रूप से डराना–धमकाना –** जिसमें किसी व्यक्ति का लगातार बहिष्कार करना या ऐसी जानकारी या तस्वीर सांझी करना षामिल है जिनसे दूसरे व्यक्ति पर नुकसानदायक प्रभाव पड़ता हो।

यदि इनमें से कोई व्यवहार केवल एक बार होता है या बराबरी के दो लोगो मे एक विवाद के तौर पर होता है, (चाहे वह कितना भी अनुचित क्यो न हो), इसे डराने–धमकाने वाले व्यवहार के तौर पर नही माना जाता है।

मुँह–जवानी, षारीरिक और सामाजिक रूप से डराते–धमकाने वालो व्यवहार आमने–सामने या ऑनलाइन, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे हो सकता है।

परिसर– आमने–सामने और ऑनलाइन – डराने–धमकाने वाला व्यवहार आमने सामने या ऑनलाइन परिसर मे हो सकता है। ऑनलाइन बुलिंग (इंटरनेट पर डराने–धमकाने) को कभी–कभी साइबर बुलिंग कहते है। मुँह–जबानी, षारीरिक और सामाजिक रूप से डराने धमकाने वाला व्यवहार ऑनलाइन हो सकता है। साथ ही षारीरिक रूप से डराने–धमकाने की धमकियाँ भी ऑनलाइन दी जा सकती है।

ऑनलाइन परिसर के विषिष्ट लक्षण विद्यार्थियो, माता–पिता एवं देखरेखकर्ता और अध्यपको के लिए अतिरिक्त चिंता पेष करते है। उदाहरणतः किसी को ऑनलाइन रूप से डराने धमकाने के व्यवहार को संभवित रूप से कई लोग देखते है। अनुसंधान दर्षाता है कि जो बच्चे ऑनलाइन रूप से डराने धमकाने के षिकार होते है, वे अकसर आमने–सामने डराए–धमकाए जाने के भी षिकार होते है। इसका अर्थ यह है कि ऑनलाइन बुलिंग से प्रभावी रूप से निपटने मे दूसरी परिस्थितियों पर भी ध्यान देना पड़ता है।

तरीके – प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष

प्रत्यक्ष रूप से डराना–धमकाना – इसमे षामिल लोगो मे उस परिस्थिति मे घटित होता है, जहाँ अप्रत्यक्ष कार्यकलापों मे दूसरे षामिल हो, उदाहरणतः अपमान करना या अफवाहे फैलाना।

अप्रत्यक्ष रूप से डराना–धमकाना – अधिकांष रूप से दूसरे व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा, सहकर्मी संबंध और आत्म सम्मान को क्षति पहुँचाकर किया गया नुकसान पहुचाता है।

प्रत्यक्षता – डराने धमकाने वाला व्यवहार आसानी से दिखाई देने वाला अर्थात प्रत्यक्ष हो सकता है या फिर इसमे षामिल लोगो से छिपा हुआ अर्थात गुप्त रूप से हो सकता है।

प्रत्यक्ष डराने धमकाने – इसमे षारीरिक रूप से उठाए गए कदम जैसे कि मुक्का या लात मारनी अथवा मुँह–जुबानी उठाए गए सुस्पष्ट कदम जैसे कि गाली–गलौच और अपमान करना षामिल है। प्रत्यक्ष, षारीरिक रूप से डराना–धमकाना बुलिंग करने के सामान्य प्रकार है। (इसे कभी–कभी परंपरागत रूप से डराना–धमकाना भी कहते है।) परंतु हो सकता है प्रत्यक्ष षारीरिक तौर पर डराना–धमकाना बूलिंग का सबसे सामान्य प्रकार न हो।

गुप्त रूप से डराना–धमकाना – इसकी पहचान करना पारम्परिक संपर्क के बाहर के लोगो के लिए करीब–करीब असंभव हो सकता है। गुप्त रूप से डराने धमकाने मे बार–बार हाथों से इषारा करना और अजीब या भयभीत करने वाली षक्ल बनाना, किसी व्यक्ति के बारे मे कानाफूसी करना, उसका बहिष्कार करना या उसे देखकर मुँह मोड़ लेना, इस पर सीमा लगानी कि वह व्यक्ति कहा बैठ सकता है और किससे बात कर सकता है, षामिल है। गुप्त रूप मे सामाजिक या मुँह–जबानी तौर पर डराने–धमकाने वाला व्यवहार तीक्षण हो सकता है और यहाँ तक की कभी–कभी इसे करने वाला व्यक्ति यह दावा करके इससे इंकार कर सकता है कि वह मजाक कर रहा था या बस मजे ले रहा था। डराने धमकाने का कुछ व्यवहार गुप्त और अप्रत्यक्ष होता है, आम तौर पर इसे जानबुझकर छिपा कर किया जाता है। और इसे देखना दूसरो के लिए बहुत कठिन होता है। इस प्रकार के डराने धमकाने के व्यवहार मे अफवाहे फैलाना, धमकियाँ देना, ब्लैकमेल करना, ऐसे राज चुराना जिससे दूसरे व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा, सहकर्मी संबंधो और आत्म–सम्मान को नुकसान पहुँचता है और ऐसे षारीरिक नुकसान की बजाए मनोवैज्ञानिक नुकसान पहुँचने के कारण होता है।

नुकसान षारीरिक या मनोवैज्ञानिक – डराने धमकाने से नुकसान पहुँचने की संभावना होती है (हालॉकि यह जरूरी नही है कि हर तरह से अनचाहे कार्य से नुकसान पहुँचे) डराने धमकाने के कुछ प्रकारो से होने वाले षारीरिक नुकसान की अच्छे से पहचान की गई है।

अधिक हाल ही मे अनुसंधान ने यह पुष्टि की है कि डराने–धमकाने से अल्पवाधि और दीर्घवाधि का मनोवैज्ञानिक नुकसान पहुँच सकता है। इसमे व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा को होने वाला नुकसान या डराए–धमकाए जाने के कारण (विषेषकर गुप्त रूप से सामाजिक तौर पर डराए–धमकाए जाने के कारण) सामाजिक तौर पर मिलने जुलने की व्यक्ति की इच्छा मे कमी का होना षामिल है।

असल मे डराए–धमकाए जाने का भय ही तनाव और क्षति पैदा कर सकता है। डराए–धमकाए जाने की निरंतर प्रवृत्ति से पीड़ित व्यक्ति षक्तिहीन और इसे रोक पाने मे असक्षम महसूस कर सकता है। डराए–धमकाए जाने के प्रभाव, विषेषकर इसमे षामिल व्यक्तियों के मानसिक स्वास्थ एवं कल्याण पर, स्थिति का समाधान होने के पश्चात् भी जारी रह सकती है।

कभी–कभी मनोवैज्ञानिक रूप से डराए धमकाए जाने षब्द का प्रयोग धमकियाँ देने और लगातार भय बनाए रखने का वर्णन करने के लिए किया जाता है, परंतु इस प्रकार के व्यवहार को मुँह–जवानी या सामाजिक रूप से डराना धमकाना और पीडित व्यक्ति पर पडने वाले प्रभाव को मनोवैज्ञानिक नुकसान के तौर पर बताया जाना अधिक उचित होगा।

संदर्भ–घर, कार्य, स्कूल – डराए धमकाए जाने वाला व्यवहार कही भी घटित हो सकता है। यह घर, काम या स्कूल पर हो सकता है। यह किसी के साथ भी हो सकता है।

1.6.3 चिढ़ाना ;ज्मेंपदहद्ध– चिढ़ाने से तात्पर्य है किसी की हँसी उडाना, मित्रता की भावना से या उसे परेषान करने के लिए छेड़ना अभद्र टिप्पणी अथवा असभ्य उक्ति लड़कियों के साथ छेड़खानी का एक तरीका है। यह षारीरिक प्रहार एवं उत्पीड़न की सीमा तक जाता है। इसका एक कारण पष्चिमी सभ्यता का प्रभाव भी है।

षिक्षा, साहित्य एवं सिनेमा ने युवाओ को इस तरह का जीवन जीने का प्रलोभन दिया है। चूकिं भारतीय सभ्यता इतनी अधिक स्वतंत्रता प्रदान नही करती इसलिये निरूद्ध भावनाएँ छेड़खानी का रूप धारण कर लेती है। लड़कियों के साथ छेड़छाड करना समान की विकृति का कारण एवं परिणाम है।

नैतिकता का उलंघन करने का प्रलोभन बहुत षक्तिषाली होता है। लड़को द्वारा लड़कियों के साथ बदतमीजी लड़कियों के जीवन को दुखद बना देती है। उन्हें यह चुपचाप सहन करना पड़ता है क्योकि उनके विरोध करने पर षारीरिक उत्पीडन भी हो सकता है।

कोई भी व्यक्ति चाहे वह आदमी हो या औरत इतना असंवेदनषील नही हो सकता कि यह सब चुपचाप देख सके। दूसरी ओर राहगीर इन परिस्थितियों से उन्हे लज्जित देखकर आनंद उठाते हैं। यह एक अपराध है जिसे पुलिस अथवा अधिकारियों द्वारा गंभीरता से नही लिया जाता।

एक प्रजातन्त्रीय राष्ट्र मे कमजोर वर्ग को अगर सुरक्षा प्रदान नही की जाती है तो वह निर्भय नागरिक नहीं बन पायेंगे। अगर इस तरह अनैतिक अपराध होगे और अन्तः विवेक की पुकार की अवहेलना होगी तो समाज पतित होता जायेगा।

स्त्रियां पुलिस को भी षिकायत नही करती क्योकि वह चिढ़ाने वाले युवको के साथ सख्ती से पेष नही आती। किन्तु कानून जारी करने वाले अथवा कानून मनवाने वाले अधिकारी अकेले कुछ नही कर सकते। लोगो के विवेक को जगाना होना एवं इस समस्या का हल जड़ो से ही ढूढ़ना होगा। स्त्रियों का सम्मान करना चाहिए यही भारतीय सभ्यता की मांग है।

1.7 इकाई सारांष (नउउंतलद्धः– याद रखने योग्य बातें–

समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक सांस्कृतिक विषेषताएँ, आत्म तथा व्यक्तित्व को प्राप्त किया करता है। बालक धीरे–धीरे सामाजिक चेतनता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करता है व अन्य व्यक्तियों के संपर्क में आने के फलस्वरूप सामाजिक प्राणी बन जाता है। संस्कृति का निर्माण वैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक होता है। समाजीकरण के साधन परिवार, क्रीड़ा समूह षिक्षण संस्थाएँ, षिक्षक व समाज होते हैं।

1.8 अपनी प्रगति की जाँच कीजिए –

–सामाजीकरण से आप क्या समझते है?

–सामाजीकरण की प्रक्रिया को संक्षिप्त में समझाइए?

–किन्ही चार षिक्षा संस्थाओं या कारको का वर्णन कीजिए जो सामाजिकता को प्रभावित करती है?

–आक्रामकता व चिढ़ाना जैसी बाल्यावस्था की क्रियाओ पर नोट लिखें।

1.9 नियत कार्य :–

–आपके आस–पास अध्ययन कीजिए और ऐसी षिक्षा संस्थाओं की सूची बनाए जो समाजीकरण को प्रभावित करते है ?

–अपने आस–पास के बालको का अध्ययन करे और ऐसे बालक जो आक्रमकता का कारण पता लगाए

1.10 चर्चा/स्पष्टीकरण के बिन्दु :–

इस इकाई का अध्ययन करने के पष्चात् आपको कुछ बिन्दुओ पर और अधिक चर्चा तथा कुछ पर स्पष्टीकरण की आवष्यकता हो सकती है। कृपया उन बिन्दुओ को नियत स्थान पर लिखें।

नियत स्थान पर लिखे :–

1.10.1 – चर्चा के बिन्दु

.....

.....

.....

1.10.2– स्पष्टीकरण के बिन्दु

.....

.....

.....

संदर्भ ग्रंथ–

ष(1) षर्मा, पूजा (2015). षैक्षिक समाज मनोविज्ञान, ए.के एन्टरप्राइजेज, जयपुर

(2) सिंह, रतन (2012) सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेषन्स नईदिल्ली

(3) मिश्रा, महेन्द्र कुमार (2007) समाज मनोविज्ञान और षिक्षक अवधारणा क्लासिक कलैक्षन, जयपुर

(4) विर्क, जसवन्त कौर (2011) अधिगमकर्ता, अधिगम एवं संज्ञान, ट्विन्टी फस्ट सेन्चुरी पब्लिकेषन्स, पटियाला।

(5) षुक्ला, ओ.पी, षिक्षा मनोविज्ञान, प्रकाषक भारत बुक सेन्टर लखनऊ

(6) भटनागर, सुरेष (2010) षिक्षा मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ

(7) यादव, सियाराम (2010) अधिगमकर्ता का विकास एवं षिक्षण अधिगम प्रक्रिया, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

(8) मंगल, एस.के, मंगल, उमा (2014) विद्यार्थी, अधिगम एवं संज्ञान, टंडन पब्लिकेषन्स, लूधियाना

(9) सिंह, अरूण कुमार (2009) षिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिकेषन, पटना

खण्ड – 1
इकाई – 4
बालको को जानना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देष्य
4.3 बालकों को जानना
4.3.1 अवलोकन विधि
4.3.2 साक्षात्कार
4.3.3 गाथा–वर्णन विधि
4.3.4 मनोवैज्ञानिक परीक्षण
4.3.5 विवरण
4.3.6 व्यक्तिगत अध्ययन
4.3.7 अनुदैर्ध्य (लंबवत्) उपागम
4.3.8 अनुप्रस्थ उपागम
4.3.9 प्रतिबिंबात्मक जनरल
4.4 इकाई सारांष
4.5 अपनी प्रगति की जाँच करे
4.6 नियत कार्य
4.7 चर्चा/स्पष्टीकरण के बिन्दु
4.7.1 चर्चा के बिन्दु
4.7.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु
4.8 संदर्भ सूची

4ण्1 प्रस्तावना **(प्दजतवकनबजपवदद्ध** – पषुओं की तुलना में मनुष्य को कई ज्ञानात्मक योग्यताओं से सम्पन्न माना जाता है जो उसे विवेकषील प्राणी बनाती है । वह तर्क कर सकता है, भेद कर सकता है, समझ सकता है और नई स्थिति का सामना भी कर सकता है । निष्चित रूप से वह पषुओं से श्रेष्ठ है परंतु सभी मनुष्य एक जैसे नहीं होते । व्यापक रूप से व्यक्तिगत विभिन्नताऐं पाई जाती है एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों में आसानी से ये विभिन्नताऐं देख सकता हैं । प्रस्तुत अध्याय में विभिन्न परीक्षणों द्वारा बालकों को कैसे समझे इसकी जानकारी प्राप्त होगी ।

4ण्2 उद्देष्य (व्हरमबजपअमेद्ध–

इस इकई के अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य होंगे की आप निम्न बातों को गहराई से समझ सकेंगे व इनके बारे मे आपका व्यापक परिप्रेक्ष होगा–

- बालक के व्यवहार को अवलोकन द्वारा जानना।
- बालक को साक्षातकार द्वारा जानना।

- बालको को विद्यालय आधारित गतिविधियो के रिकार्ड द्वारा जानना।
- बालक को उसके अतीत या इतिहास के द्वारा जानना।
- बालक को मनोवैज्ञानिक परीक्षण, आख्यान, केस स्टडी प्रतिबिंबात्मक जनरल, लंबबत्

4ण्3ण्4 मनोवैज्ञानिक परीक्षण (च्लबीवसवहपबंस ज्मेजद्ध :– कांट के इस कथन में कोई अतिषयोक्ति नहीं कि "सिद्धांत के बिना" प्रयोग अंधा होता है और प्रयोग के बिना सिद्धांत लंगड़ा होता हैं। ;ग्चमतपउमदज ूपजीवनज जीमवतल पे इसपदक ंदक जीमवतल ूपजीवनज संउम मगचमतपउमदज पे संउमद्ध सिद्धांत और प्रयोग, विचार और क्रिया का प्रतिनिधित्व करते है। अपने संरक्षण एवं मानवता की सेवा के लिए दोनो एक दूसरे के लिए आवष्यक है, अतः अध्ययन की किसी भी प्रणाली मे सिद्धांत तथा प्रयोग का समन्वय होना चाहिए। मनोविज्ञान इसका अपवाद नही है। इस मे भी सिद्धांतो के साथ–साथ प्रयोग–कार्य अत्यंत आवष्यक है। मनोविज्ञान के विधार्थी होने के नाते आपको भी मनोविज्ञान की विषय वस्तु तथा सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ इसे व्यवहार के रूप मे लाने मे भी सिद्ध हस्त होना भी चाहिए। आपको कई बार स्वयं भी यह जिज्ञासा हो सकती है कि आप की बुद्धि का स्तर क्या है, आपकी रूचियाँ तथा अभिरूचियाँ किस प्रकार की है, व्यक्तित्व की दृष्टि से आप कैसे है, आप अपने और अपने वातावरण से कितने समायोजित है। यह सब जानने के लिये इनका मापन करना होता है और इस मापन हेतु ऐसे मनोवैज्ञानिक परीक्षणो (चेलबीवसवहपबंस जमेज) का प्रयोग किया जाता है। जिन्हे बड़ी मेहनत से वैज्ञानिको तथा अनुसंधानकर्ताओ द्वारा मानकीकृत (जंदकंतकप्रमक) करके इन्हे प्रयोग मे लाने संबंधी सामग्री तथा रूप रेखा की रचना की है। जिन बातो के मापन की हमने चर्चा की है, उनसे संबंधित विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भलीभॉति उपलब्ध है।

बुद्धि का मापन :– बुद्धि क्या हैघ् इस विषय पर विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढंग से विचार प्रस्तुत किये है। किसी ने उसे सीखने के लिये आवष्यक योग्यता बताया है तो किसी ने उसका संबंध व्यक्ति के अपने और अपने वातावरण के प्रति संपन्न समायोजन से जोड़ा है। कुछ ने उसे सोचने, विचारने कल्पना करने तथा समस्या समाधान योग्यता के रूप मे देखने की चेष्टा की है। इन सब विचारों तथा बुद्धि के लिये बनाई गई विभिन्न परिभाषाओ के आधार पर एक बात जो स्पष्ट रूप से सामने आती है वह यह है कि बुद्धि व्यक्ति की उन सभी मानसिक योग्यताओ तथा क्षमताओ का एक ऐसा रूप है जो उसे उन सभी कार्यो को करने मे पर्याप्त रूप से सहायता प्रदान कर सकता है जिनमे किसी भी तरह इस प्रकार की योग्यताओ तथा क्षमताओ की आवष्यकता पड़ती है। इस प्रकार की ये मानसिक योग्यताएँ कितनी है। इस बारे मे निष्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता। बुद्धि संबंधी सिद्धांतो (जीमवतपमे) ने अपने–अपने ढंग से इस प्रष्न का उत्तर ढूंढने का प्रयास कर बुद्धि मे षामिल तत्वो या कारको की तलाष की है। इन तत्वो या कारको की उपस्थिति किसी बालक या व्यक्ति मे किस रूप मे है उसका निदान ही बुद्धि परीक्षणों के माध्यम से करने का प्रयत्न किया जाता है।

बुद्धि परीक्षण इस तरह किसी की बुद्धि मे निहित विभिन्न तत्वों या कारको के स्वरूप का पता लगाकर उसकी बुद्धि परीक्षण या तो षाब्दिक (टमतइंस) होते है अथवा अषाब्दिक (छवद. अमतइंस) और इन्हे इनकी प्रकृति के अनुसार व्यक्तिगत तथा सामूहिक तौर पर बालको या व्यक्तियों की परीक्षा हेतु काम मे लाया जाता है। षाब्दिक परीक्षणो मे जहां भाषा को अनिवार्य तौर पर प्रयोग किया जाता है। वहाँ अषाब्दिकों मे भाषा के स्थान पर चित्रों, संकेतो तथा क्रियाओ आदि को काम मे लाया जाता है।

बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

अल्फ्रेड बिने (1905) द्वारा प्रथम बुद्धि परीक्षण के निर्माण के पष्चात् अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी अनेक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया । किन्तु उद्देष्य कि समानता होने पर भी इन परीक्षणों में विभिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता के प्रमुख कारण उनमें प्रयुक्त भाषा, प्रष्नों की संख्या, प्रयोग किये जाने का ढंग आदि हैं। इसीलिए इन परीक्षणों का वर्गीकरण मुख्यता : प्रषासन, भाषा, परीक्षण संख्या एवं मानसिक योग्यता पर किया जाता है ।

(क) प्रषासन के आधार पर (वद जीम इंपे वि कउपेजतंजपवद) :– प्रषासन के आधार पर बुद्धि परीक्षणों को दो वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता हैं। इस दृष्टि से बुद्धि परीक्षण दो प्रकार के होते है– व्यक्तिगत एवं सामूहिक ।

1. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (प्दकपअपकनंस प्दजमससपहमदबम जमेज) :– ऐसे बुद्धि परीक्षण जिन्हें एक समय में केवल एक ही व्यक्ति पर प्रषासित किया जाता है व्यक्तिगत परीक्षण कहलाते हैं। ये परीक्षण शाब्दिक अथवा अषाब्दिक रूप में होते हैं। इस प्रकार के परीक्षण से एक समय में केवल एक ही व्यकित का मापन हो सकने के कारण अधिक लोगों के परीक्षण में बहुत अधिक समय लगता है ऐसे परीक्षणों का प्रयोग व्यक्तिगत निर्देषन एवं परामर्ष हेतु किया जाता है। इस प्रकार के प्रकार के परीक्षणों के निर्माण , प्रषासन एवं मानकिकरण में कठिनाई होती है तथा धन एवं समय भी अधिक लगता हैं। बिने–साइमन बुद्धि मापनीय, स्टैनफॉर्ड बिने बुद्धि परीक्षण, अलेक्जेन्डर पास अलांग परीक्षण, धनाकृति निर्माण परीक्षण (बनइम बवदेजतनबजपवद जमेज) आदि व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण के कुछ प्रमुख उदाहरण है।

2. सामूहिक बुद्धि परीक्षण (हतवनच प्दजमससपहमदबम जमेज) ऐसे बुद्धि परीक्षण जिनके द्वारा एक ही समय एक से अधिक व्यक्तियों का बुद्धि मापन किया जा सकता है, उन्हें सामूहिक बुद्धि परीक्षण कहते है। प्रथम विष्व युद्ध के समय सेना में भर्ती के लिए योग्य व्यक्तियों के चयन की समस्या के निराकरण हेतु अल्फा परीक्षण एवं आर्मी बीटा परीक्षण निर्मित किये गये। सामूहिक बुद्धि परीक्षणों की मुख्य विषेषता यह होती है कि इनके द्वारा कम समय में अधिक लोगों की जॉच की जा सकती हैं। इससे धन एवं समय दोनों की बचत होती है आर्मी अल्फा एवं आर्मी बीटा परीक्षणों के अतिरिक्त जलोटा सामूहिक बुद्धि परीक्षण, मोहसिन सामान्य बुद्धि परीक्षण, टण्डन सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण, प्रयाग मेहता सामूहिक बुद्धि परीक्षण, जोषी सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण आदि सामूहिक बुद्धि परीक्षण के कुछ प्रमुख उदाहरण है । ये परीक्षण व्यवहारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी होते है।

(ख) भाषा प्रयोग एवं कार्य निष्पादन के आधार पर (वद जीम इंपे वि संदहनंहम चचसपबंजपवद दक ूवता चमतवितउंदबम)

भाषा प्रयोग एवं कार्य निष्पादन के आधार पर भी बुद्धि परीक्षणों को दो भागों में रखा जा सकता है । अतः इस आधार पर बुद्धि परीक्षण के दो प्रकार होते है– शाब्दिक एवं अषाब्दि

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (टमतइंस प्दजमससपहमदबम जमेज):– जिन बुद्धि परीक्षणों में भाषा का प्रयोग किया जाता है अर्थात् परीक्षण हेतु सम्मलित की गई समस्याऐ भाषा के माध्यम से प्रस्तुत कि जाती है तथा परीक्षार्थी को भाषा का प्रयोग करके (पढकर एवं लिखकर) ही उत्तर देना होता है, उन्हें शाब्दिक या वाचिक बुद्धि कहा जाता है। शाब्दिक बुद्धि परीक्षण व्यक्तिगत भी होते है और सामूहिक भी । शाब्दिक परीक्षणों में कागज कलम के प्रयोग होने के कारण इन्हें पेपर पेंन्सिल परीक्षण भी कहा जाता है,

यधपि कभी –कभी इनको मौखिक रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। बिने –साइमन परीक्षण , जलोटा बुद्धि परीक्षण, प्रयाग मेहता सामूहिक बुद्धि परीक्षण आदि शाब्दिक बुद्धि परीक्षण के कुछ प्रमुख उदाहरण है। सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है, क्योकि इनका प्रषासन सरल एवं सुगम होता है।

2. अषाब्दिक बुद्धि परीक्षण (छवद.टमतइंस प्दजमससपहमदबम जमेज):– कुछ बुद्धि परीक्षण ऐसे होते हैं जिनमें समस्याओं का प्रस्तुतीकरण शब्दों के द्वारा न करके, चित्रों या अन्य स्थूल सामग्री के माध्यम से किय जाता है। ऐसे परीक्षणों मेष्प्रष्नों की रचना चित्रों, अंकों, डिजाइनों अथवा स्थूल सामग्री का उपयोग करके की जाती है तथा प्रयोज्य (परीक्षार्थी) को सही चित्र या वस्तु छांटकर अथवा कुछ कार्य निष्पादित करके उत्तर देना होता है। भाषायी शब्दों का प्रयोग न किये जाने अथवा लिखित कार्य बहुत कम होने के कारण ऐसे परीक्षणों को अषाब्दिक या अवाचिक बुद्धि परीक्षण कहा जाता है। ये परीक्षण पूरी तरह से भाषा या शब्द मुक्त नहीं होते हैं, क्योंकि कार्य निष्पादन हेतु निर्देष तो भाषा के माध्यम से ही दिये जाते है

अषाब्दिक बुद्धि परीक्षण के दो प्रमुख रूप होते है–(1) कागज पेंसिल परीक्षण तथा (2) निष्पादन परीक्षण ।

कागज पेंसिल परीक्षणों में समस्याओं को आकृतियों या संख्याओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तथा प्रयोज्य को कागज पर कुछ करके अथवा चिन्हांकित करके उत्तर देना होता हैं। निष्पादन परीक्षणों में स्थूल सामग्री जैसे लकड़ी के गुटके, प्लास्टिक की आकृतियॉ आदि की सहायता से समस्याएँ प्रस्तुत की जाती है तथा निर्देषानुसार प्रयोज्य को उन्हें व्यस्थित करना होता है । निष्पादन परीक्षण प्रायः वैयक्तिक ही होते है। रेविन प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज (त्ंअमदष् चतवहतमेपअम उंजतपबमे) एक पेपर पेंसिल प्रकार का अषाब्दिक बुद्धि परीक्षण है, जबकि भाटिया बैटरी परफारमेन्स परीक्षण निष्पादन प्रकार का अषाब्दिक बुद्धि परीक्षण है। अषाब्दिक निष्पादन बुद्वि परीक्षण का प्रयोग बच्चो, अषिक्षितो एवं दूसरे भाषायी लोगो के लिये उपयोगी होता है । किन्तु इसका प्रषासन प्रषिक्षित व्यक्तियो के द्वारा ही किया जा सकता है।

चूकि, शाब्दिक एवं अषाब्दिक परीक्षण वैयक्तिक एवं सामूहिक दोनो प्रकार के हो सकते है, अतः उपयुक्त बुद्वि परीक्षणो के चार प्रकार होते है।

1 वैयक्तिक शाब्दिक बुद्वि परीक्षण
2 वैयक्तिक अषाब्दिक बुद्वि परीक्षण
3 सामूहिक शाब्दिक बुद्वि परीक्षण
4 सामूहिक अशाब्दिक बुद्वि परीक्षण

(ग) प्रष्न प्रारूप के आधार पर बुद्वि परीक्षणो का वर्गीकरण यघपि, बुद्वि परीक्षणो का वर्गीकरण मुख्यतः अपरिवर्णित दो आधारो –प्रषासन एवं भाषा प्रयोग के आधार पर ही किया जाता है, किन्तु विषेष00 ने कुछ अन्य आधारो पर भी इनके वर्गीकरण किये हैं। ये आधार है–प्रष्न प्रारूप एवं मानसिक योग्यताएँ।

प्रष्न प्रारूप के आधार पर भी बुद्वि परीक्षणो को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है–

1 गति परीक्षण (चममक जमेजद्ध तथा

2 शक्ति परीक्षण (च्वूमत जमेजद्ध

गति बुद्वि परीक्षण में परीक्षार्थी को एक निष्चित समय में कुछ निर्धारित प्रष्नो का उत्तर देना होता है, जबकि शक्ति बुद्वि परीक्षण मे प्रष्नो को बढते हुये कठिनाई स्तर क्रम मे रखा जाता है तथा परीक्षार्थी को अपनी मानसिक शक्ति के आधार पर अधिकतम प्रष्नो के उत्तर देने को कहा जाता है।

(घ) मानसिक योग्यताओ के आधार पर बुद्वि परीक्षणो का वर्गीकरण –

मानसिक योग्यता के आधार पर बुद्वि परीक्षणों को दो वर्गों में रखा जा सकता है–1

1 सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण तथा

2 विषिष्ठ मानसिक योग्यता परीक्षण

सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षणो के द्वारा सामान्य बुद्वि का मापान किया जाता है, जबकि विषिष्ट मानसिक योग्यता परीक्षणों द्वारा विषिष्ट कार्यों हेतु आवष्यक मानसिक योग्यताओ का मापन किया जाता है।

उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त कुछ बुद्वि परीक्षण ऐसे होते है जिनमे एक से अधिक प्रकार के बुद्वि परीक्षणों की विषेषतायें पाई जाती है। इस प्रकार के परीक्षणों को द्वि–आयामी, बहु–आयामी अथवा मिश्रित बुद्वि परीक्षण कहा जाता है, जैसे व्यक्तिगत/सामूहिक बुद्वि परीक्षण, षाब्दिक/अषाब्दिक बुद्वि परीक्षण आदि। कुछ बुद्वि परीक्षण इस प्रकार निर्मित किये जाते है जिनमे एक से अधिक परीक्षण सम्मिलित होते है। ऐसे परीक्षणों को परीक्षण माला (मतपमे वि जमेज वत ठंजजमतल वि जमेजद्ध कहा जाता है। सी.एम. भाटिया निर्मित भाटिया बुद्वि परीक्षण इसी श्रेणी के अंतर्गत आता है।

व्यक्तिगत अध्ययन के दोष तथा सीमाएं – अपने गुण तथा विषेषताओं के साथ–साथ व्यक्तिगत अध्ययन कुछ दोषो तथा प्रयोग संबंधी कठिनाइयों से भी ग्रस्त पाया जाता है। जो निम्न है–

1) व्यक्तिगत–अध्ययन कार्य एक तकनीकी कार्य है। इसे ठीक प्रकार संपादित करने के लिए अच्छी प्रकार प्रषिक्षण लेने की आवष्यकता रहती है।
2) व्यक्तिगत अध्ययन मे सूचना स्त्रोत काफी ज्यादा क्षेत्र मे फैले हुए होते है, इतनी सारी सूचनाएं इकट्ठी करना सहज नही।
3) जिन स्त्रोतो तथा साधनो का उपयोग इसमे सूचना इकट्ठी करने के लिये किया जाता है, उनकी विष्वसनीयता तथा वस्तुगतता के बारे मे किसी भी प्रकार की गारंटी नही दी जा सकती। बहुधा इसमे त्रुटि की ही अधिक आषंका रहती है।
4) इस का प्रयोग क्षेत्र भी सीमित है। प्रायः समस्यात्मक बालको या व्यक्तियों के व्यवहार अध्ययन क्षेत्र मे ही इसका प्रयोग किया जाता है।
5) इसमें नियन्त्रित या व्यवस्थित परिस्थितियों मे अध्ययन होना संभव नही होता। अतः वैज्ञानिकता या प्रमाणिकता का इस प्रकार के अध्ययन मे लगभग अभाव सा ही पाया जाता है।
6) प्राप्त सूचनाओं तथा सामग्री के आधार पर व्यवहार के कारणो की उचित व्यवस्था और फिर सर्वमान्य नियम स्थापित नियम स्थापित करने के कार्य मे अध्ययनकर्ता को काफी कठिनाई आती है और बहुधा गलत विष्लेषण की भी सम्भावना अधिक रहती है।

अपने इन अपरोक्त दोषों और कमियों के बावजूद व्यक्तिगत अध्ययन की महत्ता से मुँह नही मोड़ा जा सकता। व्यक्तियों को उनके संपूर्ण रूप में जानने तथा समझने और उनके व्यवहार संबंधी मूल कारणों का पता लगाने में इस तकनीक का कोई मुकाबला नहीं। अतः बालक के व्यवहार के अध्ययन में इस तकनीक को सदैव ही उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिए।

4ण्3ण्7 अनुदैर्ध्य अध्ययन या सर्वेक्षण – **एक अनुदैर्ध्य अध्ययन क्या है?** – एक अनुध्दैर्य अध्ययन एक षोध अध्ययन है। जिसमें षोध दीर्घ अवधि के लिए जारी है और प्रत्येक चरण मे एक ही नमूना का उपयोग करता है। आबादी मे विकसित सुविधाओं या विषेषताओं का विष्लेषण करने के लिए इन प्रकार के अध्ययन आयोजित किए जाते है। अनुदैर्ध्य अध्ययन सामाजिक विज्ञान मे काफी सामान्य है। ये षोधकर्ता निष्कर्ष के साथ आने के लिए पूरे वर्ष या महीनों मे एक नमूना का अध्ययन करने की अनुमति देते है।

उदाहरण – कल्पना कीजिए एक षोधकर्ता षरणार्थी बच्चो की मेजबानी के लिए विषेष षोध का आयोजन करता है। यदि षोधकर्ता अनुदैर्ध्य अध्ययन करने की इच्छा करता है, तो वह सबसे पहले षरणार्थी बच्चो का एक नमूना चुनता है। फिर वह बच्चो पर आकस्मिकताओं के तत्काल प्रभाव का अध्ययन करता है। चूंकि यह षोध लंबे समय तक चलता रहता है, इसलिए षोधकर्ता अंतराल के साथ अध्ययन करना जारी रखता है। यह मासिक, सालाना आदि हो सकता है। हांलाकि, एक अनुदैर्ध्य अध्ययन करना आसान नही है। कई बाधाँए है जो षोधकर्ता झेलते है। मुख्य चिंताओं कुछ मामलो मे, कुछ प्रतिभागियों को मृत या अन्य क्षेत्र मे स्थानांतरित किया जा सकता है।

अनुदैर्ध्य अध्ययन एक षोध अध्ययन है जिसमे षोध लंबे समय तक जारी रहता है। और प्रत्येक चरण मे एक ही नमूना का उपयोग करता है।

क्राँस–अनुभागीय अध्ययन एक षोध है जहां षोधकर्ता किसी विषेष संदर्भ लोगो के समूह या किसी नमूने के माध्यम से एक सामाजिक घटना का विष्लेषण करता है।

छोनो अध्ययनो के बीच मुख्य अंतर यह तथ्य से तना हुआ है कि एक क्राँस–आंषिक अध्ययन षोधकर्ता को अनुसंधान के क्राँस आंषिक विष्लेषण के साथ प्रस्तुत करता है, एक अनुदैर्ध्य अध्ययन अनुसंधान के प्रत्येक चरण मे विष्लेषण की एक श्रृंखला प्रस्तुत करता है।

अनुदैर्ध्य सर्वेक्षण तुलना करने के लिए समयावधि के दौरान खास जनसमुदाया पर आँकडे एकत्रित करता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार नगर मे बिजली एकत्रित करती है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार नगर मे बिजली बिल तैयार करने, बिल वितरण करने और संग्रह करने के लिए नई नीति लागू कर रही है तो नई नीति लागू करने और बाद मे उसके लोगो की राय सर्वेक्षण कर सकती है।

अनुदैर्ध्य सर्वेक्षण को आगे प्रवृत्ति अध्ययनों, को हॉर्ट अध्ययनों और पैनल अध्ययनो मे विभाजित किया जा सकता है।

प्रवृत्ति अध्ययन (ज्तमदक`जनकपमे)

प्रवृत्ति अध्ययनों का उद्देष्य बार–बार सर्वेक्षणों, जैसे– बेरोजगारी, गरीबी, उपभोक्ता कीमतों आदि पर नियमित अंतरालो पर ऑकड़े संग्रह करना है। जबकि नमूने उसी जनसमुदाय के होते है, वे प्रतिरूपी दृष्टि से वही लोग नही होते है। प्रवृत्ति सर्वेक्षण लंबे समय तक संचालित किया जा सकता है। अनुसंधानकर्ता प्रवृत्ति (प्रवृत्तियाँ) दर्षाने के लिए उस जनसमुदाय के कई अध्ययनो से मिल सकता है।

कोहॉर्ट (सदृगण) अध्ययन (ब्वीवतज ैजनकपमे):– कोहॉर्ट अध्ययन भी समुदाय के उपसमूह या खास समुदाय पर ध्यान केन्द्रित करता है। उनके नमूने लिए जाते है और एक बार अध्ययन किया जाता है। परंतु इन अध्ययनो का फोकस भिन्न–भिन्न होता है। वे उस समय का अध्ययन करते है जिसे घटना या कार्यक्रम या योजना का अनुभव हो। उदाहरण के लिए, उन विद्यार्थियों का नमूना, जिन्होने 2006 मे लोक नीति मे स्नाकोत्तर की उपाधि पूरी की है, कोहॉर्ट अध्ययन बन सकते है और उनसे अपने–अपने व्यवसायों मे कार्यक्रम की उपयोगिता संबंधी प्रष्न पूछे जा सकते है। पाँच वर्ष बाद उन छात्रो से जिन्होने 2006 मे लोकनीति मे स्नाकोत्तर उपाधि पूरी की है भिन्न नमूनो का अध्ययन यह देखने के लिए लिया जा सकता है कि क्या उनकी विचारधारा में कोई परिवर्तन आया है। इसलिए भिन्न–भिन्न समय पर उसी जनसमुदाय का कोहॉर्ट अध्ययन का नमूना हो सकता है। यदि आप उन विद्यार्थियों का अध्ययन करते हो, जिन्होने 2008 मे उनकी स्नाकोत्तर उपाधि पूरी की है तब यह प्रवृत्ति अध्ययन होता है न कि कोहॉर्ट अध्ययन कई कारणो से हमारे लिए संपूर्ण जनसंख्या से अपेक्षित सूचना प्रकाष मे लाना संभव नही हो सकता है। ऐसे मामलो में, हम नमूने का प्रयोग कर सकते है जो लक्ष्य समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है। समग्र रूप से जन समुदाय के बारे मे सूचना उत्पन्न करने के लिए, चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों या दलों पर जनता की राय निधार्रित करने के लिए पहले ही संभवित मतदाताओं को नमूना प्रष्न पूछे
जाते है। इसी प्रकार सरकार वर्तमान और प्रस्तावित कानून का मूल्यांकन करने के लिए नमूना सर्वेक्षण के माध्यम से लोगो की राय माँग सकती है।

पैनल अध्ययन ;चंदमस ेजनकपमेद्ध :– पैनल अध्ययन कोहॉर्ट अध्ययन जैसे ही होते है, सिवाय इसके कि प्रत्येक अवधि में उन्ही व्यक्तियों का साक्षातकार किया जाता है, जबकि कोहॉर्ट अध्ययन में उसी समूह (वर्ष, आयु, आय, आदि) के केवल यादृच्छिक (त्ंदकवउ) नमूने का अध्ययन किया जाता हैं। पैनल अध्ययन में आयु, षिक्षा, जेंडर आदि द्वारा कोहॉर्ट की समरूपता सुनिषचित करते हुए व्यक्तियों का वही समूह कुछ अवधि बाद नियंत्रण प्रकार के रूप में कार्य करता है। उदाहरण के लिए, मतदाताओं का नमूना चुनिए और राजनीतिक दलों से उनकी सम्बद्धता के बारे में पूछिए । इसके बाद प्रत्येक वर्ष उन्हें उनकी वरीयताओं (रूचियों) में किसी भी परिवर्तन के बारे में पूछिए।

कोहॉर्ट अध्ययन कालान्तर में निष्चित परिवर्तनों का आकलन करता है, जबकि पैनल अध्ययन कालान्तर में सकल परिवर्तनों का आकलन करता हैं । उदाहरण के लिए बहुत से मतदाता निष्चित समयवधि में अपनी पार्टी की पहचान बदल देते है और यह निष्चित प्रभाव का आकलन करने के लिए नए मतदाताओं को ध्यान में नहीं रखता है पैनल अध्ययन निष्चित सुचना ओर अत्यंत उपयोगी सूचना दे सकता हैं। परंतु इन्हें संचालित करना कठिन है। ये

काफी खर्चील हो सकते है, वे बहुत समय लेते है और ह्यसदर से ग्रस्त होते है (ह्यस तब होता है जब लोग पैनल अध्ययन से बाहर हो जाते है।)

सर्वेक्षण अनुसंधान :– सर्वेक्षण अनुसंधान उत्तरदाताओ अर्थात लक्ष्य समुदाय के प्रतिनिधियों के नमूने से ऑकडा संग्रह करने की विधि है, यह परिमात्रात्मक ऑकडा संग्रह करने के लिए सामाजिक अनुसंधान का सबसे अधिक आम प्रकारों में से एक है। सर्वेक्षण का अभिप्राय लक्ष्य समुदाय की विषेषताएँ या प्रत्यक्ष ज्ञान का प्रतिनिधित्व व्यक्त करता हैं। इसमें सभी वस्तु व्यक्ति या सामाजिक इकाईयॉ होती हैं। उदाहरण के लिए किसी विषेष इलाके में उद्योग का परियोजना प्रभाव ज्ञात करने के लिए लक्ष्य समुदाय में उस औद्योगिक क्षेत्र में और उसके इर्द – गिर्द रहने वाले सभी व्यक्ति शामिल हो सकते है। इसी प्रकार सिंचाई सम्बन्धित लाभ भोगी और वे शामिल हो सकते है जो अपनी भूमि खो सकते है और विस्थापित हो सकते हैं। इसलिए लक्ष्य समुदाय (ज्तहमज चवचनसंजपवद) स्पष्ट रूप से परिभाषित होनी चाहिए ।
कई कारणों से हमारे लिए सम्पूर्ण जनसंख्या से अपेक्षित सूचना प्रकाष में लाना सम्भव नहीं हो सकता हैं। ऐसे मामलों में, हम नमूने का प्रयोग कर सकते है जो लक्ष्य समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है। समग्र रूप से जन समुदाय के बारे में सूचना उत्पन्न करने के लिए नमूना चुनिंदा जन समुदाय का अंष हो सकता है । उदाहरण के लिए, चुनाव लडने वाले उम्मीदवारों या दलों पर जनता की राय निर्धारित करने के लिए पहले ही सम्भावित मतदाताओं को नमूना प्रष्न पूछे जाते है। इसी प्रकार सरकार वर्तमान और प्रस्तावित कानून का मूल्यांकन करने के लिए नमूना सर्वेक्षण के माध्यम से लोगों की राय मांग सकती है।

<u>सर्वेक्षण के प्रकार</u> – समान्यता सर्वेक्षण करने से पहले यह निर्णय करना चाहिए कि परिणामो को कैसे प्रयुक्त किया जाएगा अर्थात क्या सर्वेक्षण एक ही समय मे या समयावधि मे आँकड़ा एकत्र किया जाएगा।
पहले प्रकार का सर्वेक्षण "कॉस सेक्षनल सर्वेक्षण" और दूसरा "अनुदैर्घ्य सर्वेक्षण" (स्वनहपजनकपदंस ैनतअमल)
(प) **<u>क्रॉस सेक्षनल सर्वेक्षण</u>**– अतः अनुभागीण सर्वेक्षण मे एक ही समय मे एक ही जनसमुदाय या कई समुदायों की विषेषताओं का परीक्षण कई कारणो के आधार पर हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि नगर परिषद सड़क सुरक्षा पर नया कानून ला रहा है तो वह नई नीति कार्यानवित करने से पहले लोगो की राय जानना चाहती है, इसलिए नगर के नागरिकों मे अंतः अनुभागीण सर्वेक्षण कर सकता है। इस सर्वेक्षण के लिए जनसमुदाय समूह मे भारी वाहन चालक, हल्के वाहन चालक, साइकिल और ऑटो चालक तथा पैदल चलने वाले हो सकते है। कारक गति सीमा, सड़क सुरक्षा उल्लंघनकर्ताओ के लिए दंड़ के प्रकार पर विचार हो सकता है और जुर्माने से अर्जित धन कैसे खर्च किया जाए। जनसमुदाय को उनकी आय, षैक्षिक योग्यता, आयु आदि के आधार पर भी विभाजित किया जा सकता है और उनकी राय का विष्लेषण कर सकते है।
षोधकर्ता किसी विषिष्ट संदर्भ लोगो के समूह का विष्लेषण करता है या फिर एक नमूना के माध्यम से एक सामाजिक घटना का विष्लेषण करता है यह एक षोध डिजाइन है जो व्यापक

रूप से षोधकर्ताओं द्वारा उपयोग किया जाता है क्योकि यह उन्हें किसी विषिष्ट सेटिंग को समझने और विष्लेषण करने की अनुमति देता है।

डदाहरण – अगर एक षोधकर्ता षरणार्थी बच्चो के मेजबान देष मे होने वाले अध्ययन के बारे मे दिलचस्पी लेता है तो वह पार–अनुभागीय अध्ययन कर सकता है। इस मामले मे षोधकर्ता को षरणार्थी बच्चों की वर्तमान स्थिति का स्पष्ट अनुमान प्राप्त होता है। वह मुद्दे,सुरक्षात्मक कारको और बच्चो के अनुभव का अध्ययन करते है। यह हांलाकि विभिन्न चरणो के बाद नही है।

अनुदैर्ध्य अध्ययन	क्रांस–आंषिक अध्ययन
परिभाषा– एक अनुदैर्ध्य अध्ययन एक षोध अध्ययन है जिसमे अनुसंधान लंबे समय तक जारी रहता है। और प्रत्येक चरण मे एक ही नमूना का उपयोग करता है।	**परिभाषा–** क्रॉंस–आंषिक अध्ययन एक षोर्ध है जहाँ षोधकर्ता किसी विषेष संदर्भ, लोगो के समूह का विष्लेषण करता है या किसी नमूने के माध्यम से एक सामाजिक घटना का विष्लेषण करता है।
समय अवधि– एक लंबे समय के लिए एक अनुदैर्ध्य अध्ययन चला जाता है।	**समय अवधि–** एक क्रॉंस–आंषिक अध्ययन केवल एक बार पूरा हो गया है।
अध्ययन की प्रकृति– एक अनुदैर्ध्य अध्ययन अनुसंधान विषय के विकास का एक विचार प्रस्तुत करता है।	**अध्ययन की प्रकृति–** ये अध्ययन एक क्रॉंस–आंषिक विष्लेषण प्रस्तुत करते है।
नमूनाकरण– अनुसंधान के लिए चुना गया नमूना एक अंतर या परिवर्तन को समझने के लिए कई अवसरो मे अध्ययन किया जाता है।	**नमूनाकरण–** नमूना का अध्ययन केवल एक बार किया जाता है।

संग्रह करने के लिए नई नीति लागू कर रही है तो नई नीति लागू करने और बाद मे उसके लोगो की राय सर्वेक्षण कर सकती है।

अनुदैर्ध्य अध्ययन मुख्य चर के रूप में समय का उपयोग करता है, और एक छोटा सा नमूना कैसे बदलता है और समय के साथ उतार चढाव होता है, इसका गहन अध्ययन करने की कोषिष करता है, दूसरी और एक क्रॉस सेक्षनल अध्ययन, एक निष्चित समय मे एक आबादी का एक स्नैपषॉट लेता है, जिससे एक विस्तृत आबादी में घटनाओ के बारे में निष्कर्ष निकाला जा सकता है। एक क्रॉस सेक्षनल अध्ययन प्रारंभिक प्रयोग करने का एक अपेक्षाकृत आसान तरीका है,जिससे शोधकर्ता को कुछ जनसंख्या समूहो पर ध्यान केन्द्र करने और व्यापक तस्वीर को समझने की अनुमति मिलती है। शोधकर्ता अकसर स्नैपषॉट लेने और ब्याज के संभावित क्षेत्रो को अलग करने के लिये एक क्रॉस सेक्षन का उपयोग करते हुये दोनो तरीको का उपयोग करते है, और प्रवृत्ति के पीछे का कारण खोजने के लिये एक अनुदैर्ध्य अध्ययन का संचालन करते है, इसे पैनल डेटा,या टाईम सीरीज क्रासॅ सेक्षनल डाटा कहा जाता है, लेकिन आमतौर पर यह एक जाटिल और महंगा प्रकार का शोध है, जिसका विष्लेषण करना बेहद मुष्किल है। इस तरह के कार्यक्रम दुर्लभ है, लेकिन उत्कृष्ट डेटा दे सकते है, जिससे घटना की दीर्धकालिक तस्वीर का पता लगाया जा सकता है।

चिकित्सा अनुसंधान और सामाजिक विज्ञान में एक क्रॉस सेक्षनल अध्ययन (जिसे क्रॉस सेक्षनल विष्लेषण के रूप में भी जाना जाता है, अनुप्रस्थ अध्ययन, प्रचलन अध्ययन) एक प्रकार का अवलोकन अध्ययन है जो किसी विषिष्ट बिन्दु पर एक जनसंख्या या एक प्रतिनिधि उपसमूह से डेटा का विष्लेषण करता है। समय में ,पार के अनुभागीय डेटा है।

क्रॉस सेक्षनल अध्ययन में ऐसे लोगो को देखना शामिल है जो समय में एक विषिष्ट बिन्दु पर एक प्रमुख विषेषता पर भिन्न होता है। डेटा एक ही समय मे उन लोगो से एकत्र किया जाता है जो अन्य विषेषताओ में समान है, लेकिन ब्याज के प्रमुख कारक जैसे आयु, आय स्तर या भौगोलिक स्थिति में भिन्न है। प्रतिभागियो को आमतौर पर समूहो में अलग किया जाता है जिन्हे कोहोर्ट्स कहा जाता है। उदाहरण के लिये शोधकर्ता उन प्रतिभागियो का समूह बना सकते है जो अपने 20,30 और 40 के दषक में है।

समाजीकरण की प्रक्रिया की अवस्थाएँ

(ज।ळमै व्व ज्भ च्त्बै ैब।र्स।ज्प्छ)

जॉनसन (श्रवीदेवद) ने समाजीकण की प्रक्रिया को चार अवस्थाओं में विभाजित किया है। ये अवस्थाएँ इस प्रकार है–

1. प्रारम्भिक अवस्था (जेम व्तंस ैजंहम) – बालक के जीवन की यह प्रारम्भिक अवस्था है। इस अवस्था में बालक की आवष्यकताएँ शारीरिक तथा मौखिक होती है। इसी कारण इस अवस्था को मौखिक अवस्था (जेम व्तंस ैजंहम) भी कहते है। बालक को केवल अपनी मौखिक आवष्यकताओं को पूरा करने की ही चिन्ता रहती है। इस समय बालक के जीवन में माता का प्रमुख स्थान होता है। बालक पूर्ण रूप से अन्य व्यक्तियों पर आश्रित रहता हैं। परंतु प्रत्येक दषा में वह अपनी माता के अधिक निकट रहता है। इसी कारण उसके और उसकी माता के कार्यो में तादाम्यता रहती है। बालक अपने को अपनी माता से भिन्न नही समझता। इसी कारण बालक को अपनी माता के शारीरिक संपर्क से अच्छा लगता है।

समाजीकरण का यह स्तर बालक की आयु के 18 माह तक रहता है।

2. शैषव अवस्था (जैम ।दंस ैजंहम) :– भिन्न –भिन्न समाजों में इस स्तर के आरंभ होने का समय अलग–अलग होता है। भारत के इस स्तर को बालक की आयु के 2 वर्ष से माना जाता है। इस अवस्था में बालक को अपना कार्य स्वयं करने के लिए प्रेरित किया जाता है। बालक अपने आप स्थान करता है। भोजन करता है। बालक अपनी मॉ पर उतना निर्भर नहीं रहता । बालक उचित और अनुचित कार्यों में अन्तर करना सीख लेता है। बालक की माता बालक के अच्छे कार्यों के लिए उसकी प्रषंसा करती है, परंतु अनुचित कार्यों के लिए उसे डॉट भी देती है। इस अवस्था में बालक परिवार की प्रथाओं तथा परंपराओं के अनुसार कार्य करना प्रारंभ कर देता है। बालक इस अवस्था में केवल अपनी माता का ही अनुकरण नहीं करता वरन् परिवार के अन्य सदस्यों के कार्यो का भी अनुकरण करता है।

इस अवस्था में यदि बालक को स्नेह दिया जाता है तो उसे विषेष प्रसन्नता होती है। परंतु इसके विपरीत व्यवहार मिलने पर उसमें मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। इस अवस्था में व्यक्तित्व में विविधता संबंधी गुण उत्पन्न हो जाते है।

3. तादात्मीयकरण की अवस्था (जंहम व िप्कमदजपतिबंजपवद) – प्रत्येक व्यक्ति में तादात्मय की प्रकृति होती है। जॉनसन (श्रवीदेवद) के अनुसार इस अवस्था का प्रारंभ सामान्यतः 3–4 वर्ष की आयु से होती है और यह अवस्था 12–13 वर्ष की आयु तक चलती रहती है। इस अवस्था में बालक परिवार के सभी कार्यो से परिचित हो जाता है। बालक में यौन– भावना का विकास आरंभ हो जाता है, परंतु बालक उससे पूर्ण रूप से परिचित नहीं हो पाता। परिवार के सदस्य उससे आषा करते है कि बालक, बालक की तरह और बालिका, बालिका की तरह व्यवहार करें। इसी कारण बालक समाजीकरण की क्रिया को सफल बनाने के लिए यह आवष्यक है कि बालक और बालिकाऍ अपने लिंग के अनुसार कार्य करें। बालक तथा बालिकाऍ अपने लिंग से परिचित हो जाते के कारण उनका विपरीत लिंग के अनुसार झुकाव आरम्भ हो जाता है।

तादाम्यीकरण (प्कमदजपपिबंजपवद) की अवस्था में सामाजीकरण की प्रक्रिया तादाम्य को दो रूपों में प्रकार करती है–

1. सामाजिक भूमिका से तादाम्य तथा
2. सामाजिक समूहों से तादाम्य

सामाजिक भूमिका के तादाम्यीकरण (प्कमदजपपिबंजपवद) से आषय है कि बालक अपने माता–पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों की आषाओं के अनुसार कार्य करता है।

सामाजिक समूहों के तादाम्यीकरण से आषय यह है कि बालक अपने लिंग के सदस्यों , जिनके सम्पर्क में वह विद्यालय तथा क्रीडा – समूहों में आता है, के अनुसार कार्य करें।

4. किषोरावस्था (।कवसमगमदबम) इस अवस्था में किषोर में महान शारीरिक परिवर्तन आते है। इसी कारण उसे अनेक समस्याओं तथा नवीन परिस्थितियों का सामना करना पडता है। बालक को अपने पर्यावरण से संघर्ष करना पडता है तथा इसीकारण उसमें मानसिक तनाव (ज्मदेपवद) रहता है। किषोरावस्था जीवन की सबसे कठिन अवस्था कही जाती है। समाजीकरण की प्रक्रिया में भी यह अवस्था सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। यह अवस्था लगभग 12 वर्ष से आरंभ होती है और 18 वर्ष तक चलती रहती है। यह अवस्था सामाजिक तथा मानसिक रूप से सबसे अधिक तनावपूर्ण होती है।

इस अवस्था में किषोर के समय अनेक समस्याएॅ आती है। बालक को फिर से नए संबंध बनाने पडते है। किषोर में आवेगों तथा संवेगों की प्रधानता रहती है। इसी कारण बालक, का व्यवहार विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्राकर का होता है। बालक इस अवस्था में वयस्कता की ओर बढ रहा होता है। और इसी कारण वह पूर्ण स्वतंत्रता चाहता है। परंतु फिर भी वह सामाजिक बंधनों से मुक्त नहीं हो सकता। अतः बालक से यह आषा की जाती है कि वह अपने समाज के सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार कार्य करें। किषोरावस्था में बालक को अनेक संस्थाओं, जैसे – विद्यालय , कॉलेज, राजनैतिक संस्थाओं आदि से अनुकूलन करना पडता है। इसे आत्म नियंत्रण (मसि ब्वदजतवस) की अवस्था भी कहते है। बालक स्वतंत्रता का एक विषेष मापदण्ड स्थापित करता है। इसी प्रक्रिया के द्वारा बालक सामाजिक प्राणी बन जाता है।

सामाजीकरण की यह प्रक्रिया यही समाज नही होती यह जीवन पर्यनत चलती रहती है। किषोरावस्था तक समाजीकरण की प्रक्रिया कठिन होती है। इसके पष्चात् यह क्रिया सरल हो जाती है। परंतु बालक के उत्तरदायित्व मे निरंतर वृद्धि होती जाती है। परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति उसका उत्तरदायित्व बढ जाता है। इसी कारण व्यक्ति के समक्ष जीवन भर समस्याएँ आती रहती है।

अतः समाजीकरण की प्रक्रिया बालक के जन्म से आरम्भ होती है और मृत्यु पर समाप्त होती है । (जॉनसन द्वारा किया गया समाजीकरण की प्रक्रिया का यही विभाजन है।

संस्कृति और षिक्षा

समाज की संस्कृति का षिक्षा – व्यवस्था पर बडा प्रभाव पड़ता है। यदि समाज की संस्कृति मूलतः भौतिक है तो वहाँ। की षिक्षा व्यवस्था में भौतिक उददे्ष्यों की प्राप्ति, लौकिक विषयों की पाठ्यक्रम में प्रधानता और लौकिक संबंधों पर आधारित गुरू षिष्य परंपरा मिलेगी। पष्चिम के कुछ देषों में षिक्षा की व्यवस्था इसी प्रकार की रही है।

इसके विपरीत यदि समाज में अभौतिक संस्कृति का बोलबाला है तो षिक्षा में अन्य बातें दृष्टिगोचर होगी। ऐसी षिक्षा में प्रतियोगिता का स्थान कम होगा। सहयोग, प्रेम, स्नेह, त्याग, सेवा, साधना, ब्रह्मचर्य, नियम पालन आदि पर अधिक बल होगा। ऐसे समाज में षिक्षा का उददे्ष्य आध्यात्मिक उन्नयन होता है। पाठ्यक्रम में लौकिक विषयों में अतिरिक्त नैतिक, धार्मिक दार्षनिक, कलात्मक तथा साहित्यिक विषयों की अधिक प्रधानता होती है। ऐसी षिक्षा व्यवस्था में गुरू –षिष्य सम्बन्धों का आधार आध्यात्मिक होता है।

खण्ड – 2
इकाई–1: शारीरिक एवं गत्यात्मक विकास
;चीलेपबंस ंदक डवजवत क्मअमसवचउमदजद्ध

इकाई संरचना

1.1 परिचय ;प्दजतवकनबजपवदद्ध

1.2 उद्देष्य ;व्इरमबजपअमेद्ध

1.3 शारीरिक विकास ;चीलेपबंस क्मअमसवचउमदजद्ध

1.3.1 शैषवावस्था में शारीरिक विकास की विषेषताएँ ;बिंतंबजमतपेजपबे व िचीलेपबंस ळतवूजी ंज म्ंतसल बेपसकीववकद्ध

1.3.2 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास की विषेषताएँ ;बिंतंबजमतपेजपबे व िचीलेपबंस ळतवूजी ंज स्ंजम बेपसकीववकद्ध

1.4 गत्यात्मक विकास ;डवजवत क्मअमसवचउमदजद्ध

1.4.1 सम्पूर्ण एवं सूक्ष्म गत्यात्मक कौषल का पष्च बाल्यावस्था तक विकास ;ळतवे ंदक थ्पदम डवजवत ैपससे क्मअमसवचउमदज नच जव स्ंजम बेपसकीववकद्ध

1.4.2 पष्च बाल्यावस्था तक विकासात्मक कार्य ;क्मअमसवचउमदजंस जै नच जव स्ंजम बेपसकीववकद्ध

1.5 विलम्बित विकास एवं इसका उपचार ;क्मअमसवचउमदजंस क्मसंल ंदक पजे त्मउमकपमेद्ध

1.6 खेल ;च्संलद्ध

1.6.1 खेल की विषेषताएँ ;बिंतंबजमतपेजपबे व िच्संलद्ध

1.6.2 खेल के प्रकार ;ज्लचमे व िच्संलद्ध

1.6.3 खेल का महत्व ;प्उचवतजंदबम व िच्संलद्ध

1.7 बच्चों के शारीरिक और गत्यात्मक विकास में अभिवावक और अध्यापक की भूमिका ;त्वसम व िच्ंतमदजे ंदक ज्मंबीमते पद चीलेपबंस ंदक डवजवत क्मअमसवचउमदज व िबेपसकतमदद्ध

1.7.1 षारीरिक विकास में अभिावावक और अध्यापक की भूमिका

1.7.2 गत्यात्मक विकास में अभिवावक और अध्यापक की भूमिका

1.8 ईकाई सांराष ;न्दपज ैनउउंतलद्ध

1.9 अपने प्रगति की जांच करें ;बेमबा लवनत च्तवहतमेद्ध

1.10 सत्रगत कार्य/गतिविधियाँ ;ेपहदउमदज ध्बजपअपजपमेद्ध

1.11 चर्चा के बिन्दु ;च्वपदजे जव इम क्पेबनेपवदद्ध

1.12 संदर्भ ;त्ममितमदबमेद्ध

1.1 परिचय

विकास बहुमुखी प्रक्रिया है, और समय की दृष्टि से व्यक्ति में परिवर्तन होता रहता है। गर्भाधान से लेकर जन्म तक व्यक्ति में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं जिन्हें भ्रूणावस्था का शारीरिक विकास माना जाता है। जन्म के बाद वह कुछ विषिष्ट परिवर्तनों की ओर संकेत

करता है, यथा–गति, भाषा, संवेग और सामाजिकता के लक्षण उसमें प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार हमारे शारीरिक ढांचे में जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहते हैं। परिवर्तनों की इस प्रक्रिया को ही शारीरिक वृद्धि और विकास का नाम दिया जाता है। विकास का यह क्रम वातावरण से प्रभावित होता है। अध्यापक के लिए वातावरण और बच्चा एक दूसरे के पर्याय बन कर चुनौती प्रस्तुत करते हैं।

अध्यापक के लिए आवष्यक है कि वह अध्यापन में सफलता प्राप्त करने के लिए बच्चे के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करें क्योंकि इन अवस्थाओं के कारण ही वह बच्चे में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार अपनी अध्यापन पद्धति को विकसित कर सकता है।

प्रस्तुत इकाई में बच्चे के शारीरिक एवं गत्यात्मक विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जायेगा जिससे अध्यापक विकास के इन पहलुओं से अवगत होकर बच्चों की मूलभूत आवष्यकतओं की समय–समय पर आवष्यक पूर्ति कर सकें।

1.2 उद्देष्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पष्चात् आप :

- बच्चों के शारीरिक विकास एवं उनकी विषेषताओं के बारे में समझ सकेंगे।
- शारीरिक विकास के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे।
- गत्यात्मक विकास की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- शैषवावस्था एवं बाल्यावस्था में गत्यात्मक विकास की अवधारणा समझ सकेंगे।
- शारीरिक एवं गत्यात्मक विकास के बाधक तत्वों को समझ सकेंगे।
- सम्पूर्ण एवं सूक्ष्म गत्यात्मक कौषल का पष्च बाल्यावस्था तक विकास समझ सकेंगे।
- विलम्बित विकास एवं इसका उपचार जान सकेंगे।

1.3 शारीरिक विकास ;चेलेपबंस क्मअमसवचउमदजद्ध

हमारे शारीरिक ढांचे और आंतरिक तथा बाह्य अवयवों में जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ परिवर्तन आते रहते हैं। परिवर्तनों की इस प्रक्रिया को ही शारीरिक वृद्धि और विकास का नाम दिया जाता है। सामान्यतया इस प्रकार के परिवर्तन निम्नलिखित दिषाओं में देखने को मिलते हैं–

1. डील–डौल एवं बाह्य ढांचे से सम्बन्धित परिवर्तन– इस प्रकार के परिवर्तनों में ऊंचाई, भार, शारीरिक अनुपात आदि ऊपरी दिखाई देने वाले सभी प्रकार के परिवर्तन शामिल किए जा सकते हैं।

2. आंतरिक अवयवों में होने वाले परिवर्तन– इसके अन्तर्गत शरीर के सभी महत्त्वपूर्ण संस्थानों जैसे स्नायु संस्थान, श्वसन संस्थान, पाचन संस्थान, रक्त संस्थान, उत्सर्जन और उत्पादक आदि महत्त्वपूर्ण संस्थानों तथा विभिन्न ग्रन्थियों की कार्य प्रणाली और क्षमता से सम्बन्धित सभी प्रकार के परिवर्तन शामिल किए जा सकते हैं।

शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया व्यक्तित्व के उचित समायोजन और विकास के मार्ग में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रारम्भ में षिषु सब तरह से दूसरे की कृपा पर निर्भर रहता है। उसे अपनी सभी प्रकार की शारीरिक आवष्यकताओं की पूर्ति के लिए मां–बाप तथा परिवार के सदस्यों पर आश्रित रहना पड़ता है। शारीरिक वृद्धि और विकास

की प्रक्रिया के फलस्वरूप आये हुए परिवर्तनों के माध्यम से धीरे–धीरे वह अपनी शारीरिक आवष्यकताओं को पूरा करने में समर्थ बनता जाता है। इस क्षेत्र में आई हुई आत्म–निर्भरता उसे अपने व्यक्तित्व के अन्य पक्षों में भी पर्याप्त स्वावलम्बी बनने में सहायता करती है और इस तरह वह धीरे–धीरे पूर्ण परिपक्वता की ओर अग्रसर होता चला जाता है।

1.3.1 शैषवावस्था में शारीरिक विकास की विषेषताएँ

शैषवावस्था में शारीरिक विकास निम्नवत होता है–

- **भार–** जन्म के समय और पूरी शैषवावस्था में बालक का भार बालिका से अधिक होता है। जन्म के समय बालक का भार लगभग 7.15 पौंड और बालिका का भार लगभग 7. 13 पोंड होता है। पहले 6 माह में षिषु का भार दुगुना और एक वर्ष में तिगुना हो जाता है। दूसरे वर्ष में षिषु का भार 1/2 पौंड प्रति मास के हिसाब से बढ़ता है और पाँचवे वर्ष के अन्त में 38 एवं 43 पौंड के बीच में होता है।
- **लम्बाई–** जन्म के समय और सम्पूर्ण शैषवावस्था में बालक की लम्बाई बालिका से अधिक होती है। जन्म के समय बालक की लम्बाई लगभग 20.5 इंच और बालिका की लम्बाई 20.3 इंच होती है। अगले 3 या 4 वर्षों में बालिकाओं की लम्बाई, बालकों से अधिक हो जाती है। उसके बाद बालकों की लम्बाई बालिकाओं से आगे निकलने लगती है। पहले वर्ष में षिषु की लम्बाई लगभग 10 इंच और दूसरे वर्ष में 4 या 5 इंच बढ़ती हैं तीसरे, चौथे, और पाँचवे वर्ष में उसकी लम्बाई कम बढ़ती है।
- **सिर व मस्तिष्क–** नवजात षिषु के सिर की लम्बाई उसके शरीर की कुल लम्बाई की 1/4 होती है। पहले दो वर्षों में सिर बहुत तीव्र गति से बढ़ता है, पर उसके बाद गति धीमी हो जाती है। जन्म के समय षिषु के मस्तिष्क का भार 350 ग्राम होता है और शरीर के भार के अनुपात में अधिक होता है। यह भार दो वर्ष मे दुगुना और 5 वर्ष शरीर के कुल भार का लगभग 80% हो जाता है।
- **हड्डियाँ–** नवजात षिषु की हड्डियाँ छोटी और संख्या में 270 होती हैं। सम्पूर्ण शैषवावस्था में ये छोटी, कोमल, लचीली और भली प्रकार जुड़ी हुई नहीं होती हैं। ये कैलषियम फास्फेट और अन्य खनिज पदार्थों की सहायता से दिन–प्रति–दिन कड़ी होती चली जाती हैं। इस प्रक्रिया को 'अस्थीकरण' या 'अस्थी निमार्ण' कहते हैं। बालकों की तुलना में बालिकाओं में 'अस्थीकरण' की गति तीव्र होती है।
- **दाँत–** छठे माह में षिषु के अस्थायी या दूध के दाँत निकलने आरम्भ हो जाते हैं। सबसे पहले नीचे के अगले दाँत निकलते हैं और एक वर्ष की आयु तक उनकी संख्या 8 हो जाती है। लगभग 4 वर्ष की आयु तक षिषु के दूध के सब दाँत निकल जाते हैं।
- **अन्य अंग–** नवजात षिषु की माँसपेषियों का भार उसके शरीर के कुल भार का 23% होता है। यह भार धीरे–धीरे बढ़ता चला जाता है। जन्म के समय हृदय की धड़कन कभी तेज और कभी धीमी होती है। जैसे–जैसे हृदय बड़ा होता जाता है। वैस–वैसे धड़कन मे स्थिरता आती जाती है। पहले माह में षिषु के हृदय की धड़कन 1 मिनिट में लगभग 140 बार होती है। लगभग 6 वर्ष की आयु में इनकी संख्या घटकर 100 हो जाती है। षिषु के शरीर के ऊपरी भाग का लगभग पूर्ण विकास 6 वर्ष की

आयु तक हो जाता है। टाँगों और भुजाओं का विकास अति तीव्र गति से होता है। पहले दो वर्षों में टाँगे डेढ़ गुना और भुजायें दुगुनी हो जाती है। षिषु के यौन–सम्बन्धी अंगों का विकास अति मन्द गति से होता है।

इस प्रकार तीन वर्ष की आयु में षिषु के शरीर और मस्तिष्क में सन्तुलन आरम्भ हो जाता है, उसके शरीर के लगभग सब अंग कार्य करने लगते हैं और उसके हाथ एवं पैर मजबूत हो जाते हैं। "षिषु अपने नैतिक गृह–कार्यो में लगभग आत्म–निर्भर हो जाते हैं। पाँच वर्ष के अन्त तक अनेक षिषु पर्याप्त स्वतन्त्रता और कुषलता प्राप्त कर लेते हैं। "

1.3.2 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास की विषेषताएँ

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास निम्नलिखित प्रकार से होता है–

- **भार–** बाल्यावस्था में बालक के भार में पर्याप्त वृद्धि होती है। 12 वर्ष के अन्त में उसका भार 80 और 95 पौंड के बीच में होता है। 9 या 10 वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं से अधिक होता है। इसके बाद बालिकाओं का भार अधिक होना आरम्भ हो जाता है।
- **लम्बाई–** बाल्यावस्था में 6 या 12 वर्ष तक शरीर की लम्बाई कम बढ़ती है। इन सब वर्षों में लम्बाई लगभग 2 या 3 इंच ही बढ़ती है।
- **सिर व मस्तिष्क–** बाल्यावस्था में सिर के आकार में क्रमषः परिवर्तन होता रहता है। 5 वर्ष की आयु में सिर–प्रौढ़ आकार का 90% और 10 वर्ष की आयु में 95% होता है। बालक के मस्तिष्क के भार में भी परिवर्तन होता रहता है। 9 वर्ष की आयु में बालक के मस्तिष्क का भार उसके कुल शरीर के भार का 90% होता है।
- **हड्डियाँ–** बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या और अस्थीकरण अर्थात् दृढ़ता में वृद्धि होती रहती है। इस अवस्था में हड्डियों की संख्या 270 से बढ़कर 350 हो जाती है।
- **दाँत–** लगभग 6 वर्ष की आयु में बालक दूध के दाँत गिरने और उनके बजाय स्थायी दाँत निकलने आरम्भ हो जाते हैं। 12 या 13 वर्ष तक उसके सब स्थायी दाँत निकल आते हैं। जिनकी संख्या लगभग 32 होती है। बालिकाओं के स्थायी दाँत बालकों से जल्दी निकलते हैं।
- **अन्य अंग–** इस अवस्था में माँसपेषियों का विकास धीरे–धीरे होता है। 9 वर्ष की आयु में बालक की माँसपेषियों का भार उसके शरीर के कुल भार का 27% होता है। हृदय की धड़कन की गति में निरंतर कमी होती जाती है। 12 वर्ष की आयु में धड़कन 1 मिनिट में 85 बार होती है। बालक के कन्धे पतले, कूल्हे चौड़े और पैर कुछ अन्दर को झुके हुए होते हैं। 11 या 12 वर्ष की आयु में बालक और बालिकाओं के जननांगों का विकास तीव्र गति से होता है।

- **विकास का महत्व–** बाल्यावस्था में बालक के लगभग सभी अंगों का विकास हो जाता है। फलस्वरूप, वह अपनी शारीरिक गति पर नियंत्रण करना जान जाता है, अपने सभी कार्य स्वयं करने लगता है और दूसरों पर निर्भर नहीं रह जाता है।

इस प्रकार बाल्यावस्था में शारीरिक विकास 6 वर्ष से 12 वर्ष की आयु तक होती है। यह मन्द शारीरिक विकास की अवस्था है लेकिन इस अवस्था में बालक के भिन्न–भिन्न अंगों का विकास एक–सा रहता है। जैसे ही महावारी (11 वर्ष या 12 वर्ष से 13 वर्ष) का प्रारम्भ होता है, तब लड़कियों का शरीर छरहरा होने लगता है। उनका शरीर, चेहरा तथा भुजाएँ–टाँगें पतली हो जाती हैं। 12 वर्ष की आयु तक बालक का सामान्य भार 85 पौंड तथा कद लगभग 53 इंच हो जाता है। इस आयु में लड़कियाँ लड़कों से लगभग 1/2 इंच लम्बी तथा भार में तीन पौंड अधिक होती हैं। बालकों की शारीरिक संरचना तथा विभिन्न अंगो के अनुपातिक विकास में भी अन्तर दृष्टिगोचर होते हैं। 12 वर्ष के बालक की शारीरिक संरचना लगभग एक वयस्क व्यक्ति जैसी होने लगती है।

•शारीरिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शारीरिक वृद्धि और विकास के मार्ग में वंषानुक्रम एवं वातावरण दोनों ही संयुक्त रूप से पर्याप्त सहायक सिद्ध होते हैं। ऐसे वंषानुक्रम तथा वातावरण सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण तत्वों या कारकों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है–

1. गर्भाधान के समय वंषानुक्रम द्वारा ग्रहण की गई पैतृक विषेषताएं और गुण।
2. अकेले एक बच्चे का अथवा एक साथ कई बच्चों का जन्म।
3. गर्भ काल में माता की शारीरिक और मानसिक अवस्था।
4. गर्भास्था में माता के माध्यम से बच्चे को प्राप्त होने वाली पोषक सामग्री।
5. माता के द्वारा बच्चों को सामान्य अथवा असामान्य रूप से जन्म देना।
6. जन्म देने के समय माता का स्वास्थ्य और उसकी देखभाल।
7. जन्म के बाद षिषु और माता की देखभाल।
8. जन्म के पष्चात् वर्षों में षिषु का पोषण।
9. शारीरिक दोषों में न्यूनता की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति।
10. शारीरिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां तथा वातावरण।
11. आत्मअभिव्यक्ति और खेल–कूद, व्यायाम तथा मनोरंजन के अवसर।
12. बच्चे का संवेगात्मक और सामाजिक समायोजन।
13. पर्याप्त अथवा अपर्याप्त निद्रा एवं विश्राम।
14. पर्याप्त अथवा अपर्याप्त चिकित्सा सुविधायें।

1.4 गत्यात्मक विकास ;डवजवत क्मअमसवचउमदजद्ध

बच्चा जन्म लेते ही हाथ–पैर चलाता है, सिर उठाता है, गर्दन घुमाता है; इसी प्रकार वह अपनी माँसपेषियों पर नियंत्रण पाने लगता है। यह क्रियात्मक विकास ही गत्यात्मक विकास, गतिक विकास या गामक विकास **;डवजवत क्मअमसवचउमदजद्ध** कहलाता है।

हरलॉक के अनुसार– "माँसपेषियों, तंत्रिकाओं तथा तंत्रिका केन्द्रों की समन्वित क्रियाओं द्वारा शारीरिक गति पर नियंत्रण प्राप्त करना गामक या गत्यात्मक विकास कहलाता है।"

गत्यात्मक विकास, शारीरिक वृद्धि से सम्बन्धित होता है। व्यक्ति के कुछ विकास के पीछे उसका शारीरिक तथा गत्यात्मक विकास निहित होता है। शरीर जैसे–जैसे विकसित होता है, बच्चे को उसी के अनुपात में अनेक क्रियाएँ सीखनी पड़ती हैं। भार तथा कद के सन्तुलन पर बच्चे के गत्यात्मक कौषल का अधिगम निर्भर करता है। गत्यात्मक विकास से अभिप्राय माँसपेषियों पर नियंत्रण। शारीरिक परिपक्वता के साथ–साथ बच्चा अपनी मांसपेषियों पर नियंत्रण करता है।

गत्यात्मक विकास की विषेषताएँ निम्नवत् हैं–

1. बालक का निम्न मस्तिष्क जो कि नियन्त्रण केन्द्र होता है, परिपक्व हो जाता है।
2. ऊपरी मस्तिष्क में भी विकास होने लगता है।
3. मांसपेषियों पर जैसे–जैसे नियन्त्रण की क्षमता बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे सीखने की क्रिया भी परिपक्व होती जाती है।
4. बच्चे के गत्यात्मक विकास पर परिपक्वता तथा षिक्षण दोनों का प्रभाव पड़ता है।
5. गत्यात्मक विकास सामान्य से विषिष्ट की ओर होता है।
6. गत्यात्मक विकास का अस्त–व्यस्त रूप से नहीं अपितु व्यवस्थित रूप से होता है।
7. बच्चों के गत्यात्मक विकास में व्यक्तिगत विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। इसके अनुसार भिन्न–भिन्न बच्चे भिन्न–भिन्न उम्र में गत्यात्मक विकास के एक ही स्तर पर नहीं पहुँचते।

- **शैषवावस्था में गत्यात्मक विकास–** जन्म के समय षिषु में इतनी क्षमता नहीं होती कि वह अपने शरीर का संचालन कर सके। वह न तो चल सकता है और न ही बैठ सकता है। 4 या 5 मास की आयु में बच्चा अपना सिर उठाने योग्य हो जाता है। 7 मास का बच्चा बैठने योग्य हो जाता है। खड़े होने की क्षमता प्राप्त करने में बच्चे को सहारा लेकर खड़े होने, और बाद में स्वतन्त्र रूप से खड़े होने की अवस्था पार करनी पड़ती है। लगभग 14 मास का बच्चा चलना आरम्भ कर देता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है, लड़कियां, लड़कों की अपेक्षा चलना शीघ्र सीख लेती है। वास्तविकता यह है कि बच्चे से चलने तथा अन्य गतिवाहिनी क्रियाओं के सीखने पर गर्भावस्था के समये के पोषण, षिषु के अंग दोष आदि का प्रभाव पड़ता है। 2 वर्ष की आयु में बच्चा हाथ तथा पैरों का संचालन अच्छी प्रकार करने लगता है। 3 वर्ष की आयु में वह पैंसिल आदि से रेखायें खींचने में समर्थ हो जाता है।

सारणी–1.1.. विभिन्न महीनों में गति विकास

आयु मास	गति विकास
1.	ठोड़ी ऊपर करना
2.	छाती को उठाना
3.	वस्तु पकड़ना तथा छोड़ना
4.	सहायता से बैठाना
5.	गोद में बैठना और वस्तु पकड़ना
6.	ऊंची कुर्सी पर बैठना
7.	वस्तु से खेलना
8.	सहारे से खड़े होना

9.	फर्नीचर पकड़कर खड़ा होना
10.	घुटनों के बल चलना
11.	सहारे से चलना
12.	फर्नीचर पकड़कर ऊपर उठना
13.	सीढ़ियों पर चढ़ना
14	अकेले खड़े होना
15	अकेले चलना

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि गति का विकास एक दम नहीं होता है। वह धीरे–धीरे क्रम से विकसित होता है और शैषवावस्था पूर्ण होते–होते बच्चे की मांसपेषियां इतनी दृढ़ हो जाती हैं कि उसे शरीर के सन्तुलन को बनाए रखने में कठिनाई उत्पन्न नहीं होती, वह अपना कार्य सफलता पूर्वक करने लगता है।

- **बाल्यावस्था में गत्यात्मक विकास–** जैसे–जैसे शरीर विकसित हो जाता है, वैसे–वैसे बच्चे को नयी–नयी क्रियायें सीखनी पड़ती हैं। इस अवस्था में बच्चे का शरीर विकसित होता है और सन्तुलन तथा समायोजन करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

यहाँ पर एक बात समझने की यह है कि गत्यात्मक विकास आयु की वृद्धि के साथ–साथ होता है। लगभग तीन से ग्यारह वर्ष की अवस्था में हाथ और पैर के विभिन्न कौषलों का विकास हो जाता है। कौषलों के विकास पर विभिन्न तत्वों जैसे परिपक्वता, सीखना, अभ्यास, सीखने के अवसर व सुविधायें, मानसिक क्षमता तथा माँसपेषियों के समन्वय का प्रभाव पड़ता है। विलियम स्लोन ने 'लिंकन ओसरेत्सकी का गतिक–विकास मान' को प्रमापीकृत करके 6 से 14 वर्ष की आयु के 380 लड़कों तथा 369 लड़कियों पर परीक्षण करके गतिक–विकास के मध्यमान निर्धारित किए। ये मध्यमान नीचे दी गई सारणी क्र.–1.2.. मे प्रस्तुत हैं–

सारणी–1.2.. लिंकन–ओरेत्सकी का गतिक–विकास मान
(लड़के–लड़कियों के फलाँक मान)

	लड़के		लड़कियाँ	
आयु	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन
6	32.53	16.12	33.33	14.53
7	56.74	15.64	49.95	15.18
8	65.39	15.71	64.85	18.67
9	81.39	15.07	67.74	16.81
10	89.05	20.69	84.66	18.47
11	11648	17.47	98.77	19.36
12	112.82	21.30	114.10	18.69
13	123.63	11.05	127.81	17.07
14	130.8	11.35	130.83	8.67

उपरोक्त फलाँकों से स्पष्ट है कि जटिल कौषल, सरल कौषल से विकसित होते हैं। कार्य संचालन में विधि अपनाने की ओर बालकों का ध्यान जाना स्वभाविक ही है।
जेकिंस ने 5 से 7 वर्ष तक के बच्चों को दौड़ने, फुदकने, कूदने में निपुण बताया है। कारपैंटर ने जैकिंस की धारणा की पुष्टि करते हुए कहा है कि लड़कियाँ फुदकने में तेज होती हैं।

1.4.1 सम्पूर्ण एवं सूक्ष्म गत्यात्मक कौषल का पष्च बाल्यावस्था तक विकास

;ळतवे ंदक थ्पदम डवजवत ैापससे क्मअमसवचउमदज नच जव स्ंजम बेपसकीववकद्ध

गत्यात्मक योग्यताओं के आधार पर बाल मनोवैज्ञानिकों ने गत्यात्मक गामक विकास को दो भागों में विभाजित किया है–

- **सम्पूर्ण गत्यात्मक कौषलों का विकास** ;क्मअमसवचउमदज व िळतवे डवजवत ैापससेद्ध

सम्पूर्ण अर्थात् स्थूल गत्यात्मक कौषलों के विकास के अंतर्गत बैठना, चलना, कूदना, उछलना, दौड़ना, तैरना, फेंकना आदि कौषल आते हैं। इन कौषलों में शरीर के अधिकांष अंगों का उपयोग होता है। जन्म के बाद प्रारंभिक चार–पाँच वर्षों मे स्थूल कौषलों का विकास तीव्रता से होता है। सम्पूर्ण गत्यात्मक कौषलों का विकास वर्षवार निम्नानुसार होता हैं–

(1) दो से तीन वर्ष

1. पूरी लय और आत्म विष्वास से चलता है। चलने में अपनी जल्दी और हड़बड़ाहट प्रदर्षन करता है तथा धीरे–धीरे भागता है।

2. अपने शरीर के ऊपरी भाग को बड़ा रखते हुये सरल गामक क्रियाओं जैसे उछल–कूद, फेंकने, लपकना आदि का संपादन कर सकता है और ऐसा करने में काफी खुषी का इजहार करता है।

3. बिना स्टीयरिंग तथा पैडल के तीन पहिया–साईकिल या खिलौना सवारी को धक्का दे सकता है।

(2) तीन से चार वर्ष

1. सिर्फ एक के बाद दूसरें पैर को हर एक सीढ़ी पर रखते हुये सीढ़ियाँ चढ़ता है और इसी तरह उतरने की कोषिष करता है।

2. अपने शरीर के ऊपरी भाग की सहायता से उछल–कूद करता है।

3. अपने शरीर के ऊपरी भाग को काम में लाते हुये वस्तुओं को फेंकता है तथा छाती से सटाते हुये वस्तुओं का लपकने का प्रयत्न करता है।

4. स्टीयरिंग तथा पैडलों का प्रयोग करके तीन पहिया साईकिल चलाता है।

(3) चार से पाँच वर्ष

1. दोनों पैरों को बारी–बारी से हर एक सीढ़ी पर रखते हुये सीढ़ियों पर चलता है तथा अच्छी तरह से दौड़ता है।

2. एक पैर से छलांग लगाने तथा कूदने में अपनी योग्यता दिखाता है।

3. शरीर को अच्छी तरह घुमाकर गेंद फेंक सकता है तथा हाथ में गेंद लपक सकता है।

4. तीन पहिया साईकिल को पेडल ओर स्टीयरिंग का प्रयोग करके बहुत तेज चलाता है और ऐसा करने में मोड़ ओर बाधाओं की भी परवाह नहीं करता।

(4) पाँच से छः वर्ष

1. अब अच्छी तरह तेज और ज्यादा दूर तक दौड़ सकता है तथा दूसरों के साथ दौड़ की प्रतियोगिता में रूचि दिखाता है।

2. अच्छी तरह कूद–फांद सकता है। रस्सी कूदने तथा छलांग लगाने एवं ऊपर से नीचे कूदने में रूचि दिखाता है।

3. फेंकने और लपकने के कौषल में बढ़ोत्तरी का प्रदर्षन करता है।

4. साईकिल (छोटी या प्रषिक्षण पहिये युक्त) चलाना शुरू कर देता है।

(5) सात से बारह वर्ष

1. अपने शरीर पर अब अधिक नियंत्रण स्थापित कर सकता है। अधिक समय तक बैठे रहने तथा किये जाने वाले कार्यों पर अधिक ध्यान देने में समर्थ हो जाता है।

2. दौड़ने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। अब वह विभिन्न प्रकार की गामक क्रियाओं जैसे दौड़ना, रस्सी कूदना, सीढ़ियों पर चढ़ने–उतरने, कूदने, तैरने तथा साईकिल चलाने आदि को ज्यादा थकावट अनुभव किये बिना अच्छी तरह संपादित कर सकता है।

3. फेंकने, लपकने, बैटिंग, किकिंग, हॉकी की गेंद को नियंत्रित कर आगे बढ़ाने, छड़ों पर अपना संतुलन बनाये रखने, क्रिकेट खेलने आदि गामक कौषलों में अपनी बढ़ी हुई क्षमता का प्रदर्षन करता है।

- **सूक्ष्म गत्यात्मक कौषलों का विकास** ;क्मअमसवचउमदज वत्थ्यदम डवजवतपिससेद्ध

सूक्ष्म गत्यात्मक कौषलों के अंतर्गत पकड़ना, लिखना, चित्र बनाना, चित्रों को भरना, खेलना उपकरणों एवं खिलौनों का प्रयोग करना आदि आते हैं। इन गतिविधियों को करने में बच्चों को अपनी अनेक माँसपेषियों का उचित संयोजन करना पड़ता है। सूक्ष्म गत्यात्मक कौषलों का विकास शैषवावस्था बाद होता है। बच्चों में सूक्ष्म गत्यात्मक कौषलों का विकास वर्षवार निम्नानुसार होता है–

(1) दो से तीन वर्ष

1. अपने अँगूठें तथा तर्जनी से छोटी–छोटी वस्तुओं को उठा सकता है।

2. ब्लाकों से ऊँची मीनारें बना सकता है। परन्तु वे पूरी तरह सीधी ऊँचाई की नहीं होती।

3. बोर्ड या सरल समस्यात्मक खेल के साथ खेलते हुये टुकड़ों को ठीक ढंग से नहीं रख पाता।

(2) तीन से चार वर्ष

1. अपनी जल्दबाजी और हड़बड़ाहट के कारण ब्लाकों से ऊँची मीनारें बनाने में कठिनाई का अनुभव करता है।

2. छोटी मांसपेषियों के नियन्त्रण और समन्वयन सम्बन्धी गामक क्रियाओं के संपादन में अधिक कुषलता का प्रदर्षन करता है।

(3) चार से पाँच वर्ष

1. नेत्रों के नेतृत्व में उसके हाथ पैर भुजायें तथा अँगुलियां समन्वित ढंग से गतियां करती है।

2. दूसरों की सहायता लिये बिना स्वयं कपड़े पहनना सीख जाता हैं।

3. अक्षरों को लिखना, रंग भरना, स्केच बनाना, नृत्य करना, दूसरों की नकल उतारना, बाद्य यंत्रों को बजाना तथा तैरना आदि गामक क्रियाओं का संपादन अपनी रुचि अनुसार सीख जाते हैं।

(4) पाँच से छः वर्ष

1. अपने हाथों को औजारों के रूप में इस्तेमाल करना सीख जाता है।

2. हथौड़ा चलाना, जूते के फीते बाँधना बेल्ट बाँधना, सीख जाता है।

3. लिखने, चित्रकारी करने, नाचने, बाद्य यंत्र बजाने, तैरने तथा अभिनय करने में अपने विकसित गामक कौषलों का परिचय देता है।

(5) सात से बारह वर्ष

1. केवल अंगूठे तथा तर्जनी के सहारे वस्तुओं का उचित कौषलात्मक तरीके से प्रयोग करना सीख जाता है।

2. हस्त–नेत्र समन्वयन में बढ़ी हुई क्षमता का प्रदर्षन करता है।

3. अपने हाथों और अँगुलियों की छोटी माँसपेषियों के उचित तालमेल के द्वारा सूक्ष्म गामक क्रियाओं के संपादन में अपनी योग्यता का प्रदर्षन करते हैं।

4. अब वे वयस्कों की तरह ही ऐसी सभी गामक गतिविधियों के संपादन में सिद्ध हस्त हो जाते हैं, जिनमें सूक्ष्म गामक कौषलों की जरुरत पड़ती है।

गत्यात्मक विकास का महत्वः– गत्यात्मक विकास बच्चे के जीवन का आधार होता है क्योंकि इसी के द्वारा वह आयु के प्रत्येक सोपान पर नवीन परिस्थितियों तथा वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करता है। गत्यात्मक विकास निम्नांकित रूपों में बच्चे के विकास को प्रभावित करता है–

- विभिन्न कौषलों का विकास
- आत्मसंतोष व आनंद की प्राप्ति
- अच्छा स्वास्थ
- आत्मनिर्भरता की भावना का विकास
- सामाजिकता की भावना का विकास
- समायोजन में सहायक तथा संवेगाात्मक विकास में सहायक।

1.4.2 पष्च बाल्यावस्था तक विकासात्मक कार्य

;क्मअमसवचउमदजंस जै नच जव स्ंजम बेपसकीववकद्ध

विकास काल का प्रारम्भ बच्चे के जन्म से माना जाता है और उसका अन्त किषोरावस्था के अन्त तक। जन्म और किषोरावस्था के मध्य हम विकास की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में मुख्यतया शैषवावस्था (जन्म से दो वर्ष तक), पूर्व बाल्यावस्था (तीन से पाँच वर्ष तक) तथा पष्च बाल्यावस्था (छह से बारह वर्ष तक) की ही चर्चा करते हैं। इन सभी विकास की अवस्थाओं में बच्चों से जिस प्रकार के विकासात्मक कार्यों के सम्पादन की प्रायः भारतीय सामाज एवं संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में हमें अपेक्षा होती है उसे नमूने के तौर पर निम्नवत् लिपिबद्ध किया जा सकता है–

- **शैषवावस्था के विकासात्मक कार्य**

– रेंगना, खड़ा होना, चलना, दौड़ना, कूदना, फेंकना, आदि
– साधारण रूप से खाने–पीने आदि की क्रियाओं को सीखना
– शारीरिक रूप से अपना संतुलन बनाये रखना
– मल–मूत्र के विसर्जन पर नियन्त्रण करना सीखना
– अपने चारों ओर के भौतिक परिवेष के बारे में जानने की चेष्टा करना
– खिलौने से खेलना सीखना
– तीन पहियों की साईकिल चलाना सीखना
– वस्तु, व्यक्तियों और घटनाओं पर ध्यान देना सीखना
– वस्तुओं और व्यक्तियों में पहचान करना सीखना
– सामग्री और भौतिक परिवेष में स्थित वस्तुओं के संदर्भ में साधारण संप्रत्ययों का निर्माण करना सीखना
– कवितायें और कहानियाँ सुनाना सीखना
– दूसरों के व्यवहार और क्रिया–कलापों का अनुकरण करना सीखना
– अपने संवेगात्मक व्यवहार में सभी तरह के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों को धारण करना
– धीरे–धीरे खेल सामग्री की अपेक्षा अपने साथियों पर अधिक ध्यान देना सीखना
– अपने हम उम्र तथा अन्य बड़े बालकों के साथ समय व्यतीत करने में रुचि लेना
– अपने माता–पिता, भाई–बहन तथ अन्य के साथ भावनात्मक रूप से रिष्ता बनाने की ओर बढ़ना

- **पूर्व बाल्यकाल के विकासात्मक कार्य;**क्मअमसवचउमदजंस जै व ि्मंतसल बैपसकीववकद्ध

– विभिन्न गत्यात्मक कौषलों जैसे– चलना, दौड़ना, कूदना, चढ़ना–उतरना, तीन पहियों की साईकिल अच्छे से चलाना, रस्सी कूदना, फेंकना, पकड़कर छलांग लगाना
आदि में प्रवीणता अर्जित करना
– बोलने, सुनने, पढ़ने, लिखने आदि भाषायी कौषलों से सम्बन्धित आधारभूत समझ रखना
– लिंग भेद और यौन आचरण सम्बन्धी कुछ साधारण बातों की जानकारी
– भले बुरे, सही–गलत व्यवहार में अन्तर समझना तथा आत्म चेतना का उदय
– सामाजिक और प्राकृतिक परिवेष सम्बन्धी उचित संप्रत्ययों का निर्माण
– माँ–बाप के साये से बाहर निकल अपने साथी बालकों की संगत को पसंद करना

– 'मैं' की भावना के स्थान पर 'हम' की भावना तथा सामूहिक खेलों और कार्यों को महत्त्व देना।
– वस्तुओं में समानता, असामानता की तलाष करने की योग्यता में वृद्धि और उसी के अनुरूप तुलना करने की योग्यता का विकास
– अपने संवेगों की बाह्य अभिव्यक्ति पर उचित नियन्त्रण करना सीखना

- **पष्च बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्य;क्मअमसवचउमदजंस जै वि स्ंजम बेपसकीववकद्ध**

– विभिन्न प्रकार के इनडोर और आउटडोर गेम्स को खेलेने हेतु आवष्यक शारीरिक और गत्यात्मक कौषलों का अर्जन
– अपने हम उम्र साथियों के साथ समायोजित होना
– उचित यौन व्यवहार और भूमिका निर्वाह की षिक्षा लेना
– स्वयं के प्रति उचित दृष्टिकोण एवं मान्यता बनाना
– संप्रेषण एवं भाषा कौषलों में प्रवीणता अर्जित करने तथा गणना, आलेख और रचना कार्य में सहायक आवष्यक दक्षता का विकास करना
– वस्तुओं, व्यक्तिओं, विचारों तथा प्रक्रियाओं के बारे में स्कूल तथा सूक्ष्म आधारों को विकसित करना
– आत्म–चेतना, नैतिकता और मूल्यों का विकास होना
– तर्क, चिन्तन और समस्या समाधान सम्बन्धी क्षमताओं का विकास होना
– समूह के प्रति भक्तिभाव और लगाव उत्पन्न होना।

इस प्रकार से समाज और सांस्कृतिक समूह अपने–अपने बच्चों से उनकी आयु और जीवनकाल के हिसाब से विषेष प्रकार के विकासात्मक कार्यो के सम्पादन की अपेक्षा करता है और इसी दृष्टिकोण से इन कार्यों के सम्पादन हेतु उन्हें आवष्यक रूप से तैयार करने के लिए विभिन्न प्रकार की औपचारिक तथा अनौपचारिक षिक्षा का भी प्रबन्ध करता है। बच्चों द्वारा इन कार्यों को उचित सम्पादन उन्हें अपनी आयु और अवस्था विषेष में अपने आपसे तथा अपने वातावरण के साथ समायोजित होने में पूरी–पूरी सहायता करता है।

1.5 विलम्बित विकास एवं इसका उपचार

;क्मअमसवचउमदजंस क्मसंल ंदक पजे त्मउमकपमेद्ध

गत्यात्मक विकास तथा गत्यात्मक कौषलों के अर्जन के परिप्रेक्ष्य में कुछ बच्चे सामान्य से काफी आगे तथा पिछड़े हुये नजर आ सकते हैं। अगर यह अंतर सीमा के अंदर ही रहता है तब तो ठीक है परन्तु इसकी अतिषयता समस्या पैदा कर सकती है विषेषकर उस अवस्था में बच्चे को अपनी आयु तथा अवस्था की दृष्टि से गत्यात्मक क्षमताओं के विकास में काफी पिछड़ा हुआ पाया जाता है। उनमें या तो इन क्षमताओं की अनुपस्थिति पाई जाती है अथवा उनमें इनका विकास निष्चित आयु तथा अवस्था के गुजरने के काफी बाद होता हुआ पाया जाता है। इस तरह वे गत्यात्मक विकास सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण मुकामों पर पहुँचने में सामान्य बच्चों की तुलना में काफी देरी कर देते हैं। उनकी अपने गामक विकास सम्बन्धी यह देरी उनके लिये कई तरह से घातक और हानिप्रद सिद्ध हो सकती है। जैसेः–

(प) इसके फलस्वरूप बालक स्वतन्त्र रूप से ऐसी गत्यात्मक गतिविधियाँ को करने में अपने आपको असमर्थ अनुभव कर सकता है जिनकी किसी विषेष आयु तथा वृद्धि एवं विकास की अवस्था में उससे अपेक्षा की जाती है।
(पप) इससे उनके शारीरिक वृद्धि एवं विकास की सामान्य प्रक्रिया प्रभावित होती है और वे इस क्षेत्र में भी पिछड़ जाते हैं।
(पपप) इससे उनकी अपने साथियों के साथ उचित अंतः क्रिया नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है और उनका सामान्य रूप से सामाजिक विकास नहीं हो पाता।
(पअ) गत्यात्मक कौषलों–संपूर्ण तथा सूक्ष्म के समय पर विकास न होने से उनके मानसिक विकास के मार्ग में रोड़ा आ जाते हैं और इस तरह उनका सामान्य रूप से मानसिक विकास नहीं हो पाता और वे अपनी आयु तथा अवस्था के लिये अपेक्षित मानसिक कार्य करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं।
(अ) इससे उनका सामाजिक–संवेगात्मक व्यवहार नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। इस सम्बन्ध में अपनी बात कहते हुये हरलॉक ने लिखा है–
"गत्यात्मक नियन्त्रण के विकास में पिछड़ जाने के कारण, बहुत से युवा बालकों में हीनता की भावना घर कर जाती है जिससे वे सामाजिक समूह में भाग लेने से कतराने लगते हैं और इससे उनमें असामाजिक दृष्टिकोण तथा व्यवहार को पनपने का रास्ता खुल जाता है।"

• बच्चों में होने वाले विलम्बित विकास के कारण

;ब्नेमे व ि क्मसंलमक डवजवत क्मअमसवचउमदज पद बेपसकतमदद्ध

बच्चों में गत्यात्मक विकास अपने समय पर न होकर देरी से होने के पीछे जो कारण कार्य कर सकते हैं उन्हें संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार से लिपिबद्ध किया जा सकता है–

1. माँ के गर्भ में बच्चे की वृद्धि और विकास हेतु मिलने वाला अनुपयुक्त वातावरण तथा उससे मिलने वाला अपर्याप्त पोषण।

2. बीमारी, कुपोषण, ग्रन्थि दोष, रासायनिक असंतुलन तथा गड़बड़ी और इसी तरह की अन्य की वजह से बच्चे का खराब शारीरिक स्वास्थ्य।

3. बच्चे का अनुपयुक्त एंव असामान्य शारीरिक आकार, बनावट तथा शारीरिक अनुपात।

4. निम्न बुद्धि स्तर अर्थात् बौद्धिक अक्षमता।

5. माँसपेषियों के नियन्त्रण सम्बन्धी गत्यात्मक विकास की अनुपयुक्तता और अपर्याप्तता जिसके मूल में कुछ निम्नलिखित परिवेषजन्य कारक उपस्थित हो सकते हैः

- गत्यात्मक क्रियाओं हेतु पर्याप्त जगह की कमी।
- खेलने, व्यायाम करने तथा अन्य गत्यात्मक गतिविधयों को संपादित करने हेतु उचित सुविधाओं को अभाव।
- प्रोत्साहन का अभाव।
- उचित वातावरण जन्य अनुभवों, अवलोकन तथा अनुकरण करने लायक उचित मॉडलों का उपलब्ध न होना तथा समयानुसार उचित प्रषिक्षण सुविधाओं का अभाव।

6. तंग (कड़े) वस्त्र या जूते पहनने के अनुचित प्रभाव

7. गत्यात्मक कौषल के सीखने या प्रषिक्षण तथा परिपक्वन स्तर में परस्पर तालमेल का अभाव।

8. गत्यात्मक गतिविधियों/कार्यों के सम्पादन हेतु बच्चे को इस सीमा तक मजबूर करना कि या तो उसमें ऐसे कार्यों को करने के प्रति डर घर कर जाये या फिर वे इन्हें न करने के लिये विद्रोह पर उतारू हो जायें।

- **उपचार**

गत्यात्मक विकास के स्वरूप तथा प्रक्रिया का अध्ययन अध्यापकों को अपने बच्चों के व्यक्तिगत भेदों के संदर्भ में उनकी सामान्यतया तथा सामान्य से अधिक या कम होने की क्षमता या सामर्थ्य से भी परिचय करा सकता है। किस बच्चे का गत्यात्मक विकास कितना है उसकी यह सामान्यता, अतिसामान्यता तथा अपसामान्यता को ध्यान में रखकर वह उसके लिये व्यक्तिगत निर्देषन तथा परामर्ष की व्यवस्था कर सकता है और उसके ढंग से अपने भौतिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक वातावरण से समायोजित होने में मदद कर सकता हैं इस दृष्टि से उसके द्वारा निम्नलिखित प्रयत्न किये जा सकते हैंः

- जिन बच्चों का गत्यात्मक विकास सामान्य है, उन्हें षिक्षित करने तथा उनके व्यक्तिगत सर्वांगीण विकास करने के प्रयास सामूहिक रूप से अन्य सामान्य बच्चों के साथ में लाकर किये जा सकते हैं।
- जिन बच्चों का गत्यात्मक विकास सामान्य से अच्छा और अधिक गति वाला है उन्हें अपने उसी गति से आगे बढ़ने के पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाने चाहिये। कुषल नर्तक, कुषल तैराक, कुषल खिलाड़ी, कुषल चित्रकाल, कुषल कलाकार, कुषल मैकेनिक बनने में उनकी पर्याप्त सहायता उनकी गत्यात्मक योग्यता सम्बन्धी प्रतिभा के आधार पर भलीभांति की जानी चाहिए।
- जिन बच्चों में गत्यात्मक विकास या गत्यात्मक कौषलों को ग्रहण करने सम्बन्धी क्षमतायें सामान्य से नीचे पाई जाती हैं उनके समायोजन और विकास हेतु विषेष उपाय किये जाने चाहिये। इस दिषा में निरोधात्मक, उपचारत्मक तथा समायोजनात्मक– तीनों तरह के कार्य किये जाने चाहिए। पहले तो उन सभी विषम, प्रतिकूल तथा हानिकारक परिस्थितयों तथा कारणों का पता लगाया जाना चाहिये जिनके द्वारा बच्चों के गत्यात्मक विकास का मार्ग अवरूद्ध होता है; इसके पष्चात् प्रयत्न होना चाहिए कि बच्चे के मार्ग में इस प्रकार की बाधायें कम से कम आयें। अगर बच्चे में गत्यात्मक क्षमताओं से सम्बन्धित कमियाँ तथा दोष आ ही गये हैं तो अब उनका भलीभाँति समायोजन के सभी संभव उपाय किये जाने चाहिए। उनके हिसाब से अब विकास, समायोजन तथा शैक्षणिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए तथा उन्हें उनकी सामर्थ्य के अनुसार आगे बढ़ाने के प्रयत्न किये जाने चाहिए।

1.6 खेल ;च्संलद्ध

सामान्य स्वाभाविक प्रवृत्तियों में खेल की प्रवृत्ति सबसे अधिक व्यापक और महत्वपूर्ण है।" "नालन्दा विषाल षब्द–सागर के अनुसार, खेल का सामान्य अर्थ है– 'चित्त की उमंग या

मन–बहलाव या व्यायाम के लिए इधर–उधर उछल–कूद, दौड़–धूप या कोई साधारण 'कृत्य'। मनोवैज्ञानिकों ने खेल का अर्थ निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया है–

1. मैक्डूगल के अनुसार– "खेल स्वयं अपने लिए की जाने वाली एक क्रिया है या खेल एक निरुद्देष्य क्रिया है, जिसका कोई लक्ष्य नहीं होता है।"

2. हरलॉक के अनुसार– "अन्तिम परिणाम का विचार किये बिना कोई भी क्रिया जो उससे प्राप्त होने वाले आनन्द के लिए की जाती है, खेल है।"

3. क्रो व क्रो के अनुसार– "खेल की उस क्रिया के रूप में परिभाषा की जा सकती है, जिसमें एक व्यक्ति उस समय व्यस्त होता है, जब वह उस कार्य को करने के लिए स्वतंत्र होता है, जिसे वह करना चाहता है।"

4. रायबर्न के अनुसार–"खेल एक साधन है जिसका उपयोग दूसरे स्व द्वारा उस समय किया जाता है, जब हमारी विभिन्न मूलप्रवृत्तियाँ अपने आप को प्रकाष में लाने की चेष्टा करती हैं।"

1.6.1 खेल की विषेषताएँ

खेल के द्वारा हमारी अनेक मूलप्रवृत्तियों तथा सहज प्रवृत्तियों का शोधन होता है। खेलों की विषेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. खेल एक जन्मजात और स्वभाविक प्रवृत्ति है।
2. खेल, स्वतन्त्र और आत्मप्रेरित होता है।
3. खेल, स्फूर्ति और आनन्द प्रदान करता है।
4. खेल में कुछ सीमा तक रचनात्मकता होती है।
5. खेल का क्रिया के सिवा और कोई उद्देष्य नहीं होता है।
6. खेल स्वंय खेल के लिए खेला जाता है।
7. खेल, बच्चे की सम्पूर्ण रुचि और ध्यान को केन्द्रित कर लेता है।
8. खेल एक शारीरिक और मानसिक क्रिया है।

खेल के विषय में **कार्लग्रूस** ने कहा है– खेल एक साधन है किन्तु मैं यह नहीं बता सकता कि उसका लक्ष्य क्या है? केवल खेल ही उसका लक्ष्य हो सकता है। अतः खेल जन्मजात सहज प्रवृत्ति है और इसका लक्ष्य आनन्द प्राप्ति है।

1.6.2 खेल के प्रकार ;ज्लचमे वि च्सिंलद्ध

बच्चों के सब खेलों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (1) वैयक्तिक, और, (2) सामूहिक। इन दोनों प्रकार के खेलों के आधार पर कार्ल ग्रूस ने बालकोपयोगी खेलों का विस्तृत वर्णन किया है। उनमें से पाँच प्रकार के खेल अधिक महत्वपूर्ण हैं–

1. परीक्षणात्मक खेल– इस प्रकार के खेलों में बालक, वस्तुओं को उलट–पलट कर देखता है या उनका परीक्षण करता है। इन खेलों का आधार जिज्ञास की प्रवृत्ति है। ये खेल वैयक्तिक होते है।

2. गतिषील खेल– इस प्रकार के खेलो में दौड़–भाग, उछल–कूद आदि आते हैं। ये खेल, शरीर की गति का विकास करते हैं। ये खेल वैयक्तिक और सामूहिक–दोनों प्रकार के होते हैं।

3. रचानात्मक खेल– इस प्रकार के खेलों में बालक विभिन्न वस्तुओं का निर्माण और नष्ट करता है, जैसे–रेत या मिट्टी के पहाड़, मिट्टी या कंकड़–पत्थर के घर, टीले आदि बनाना और बिगड़ना। इन खेलों का आधार, रचनात्मकता की प्रक्रिया है। ये खेल वैयक्तिक और सामूहिक–दोनों प्रकार के होते हैं।

4. **लड़ाई के खेल–** इस प्रकार के खेलों में हार–जीत के खेलों का स्थान दिया जाता है, जैसे–हॉकी, कबड्डी, फुटबाल, बालीबाल, खो–खो, मुक्केबाजी आदि। इन खेलों का सामान्य आधार, प्रतियोगिता या युद्धप्रियता होती है। ये खेल, साधारणतः सामूहिक होते हैं।

5. **बौद्धिक खेल–** इस प्रकार के खेलों का सम्बन्ध बुद्धि से होता है।, जैसे– चौपड़ शंतरज, पहेलियाँ आदि । ये खेल, बुद्धि का विकास करते हैं। ये वैयक्तिक और सामूहिक–दोनों प्रकार के होते हैं।

6. **अन्य प्रकार के खेल– हरलॉक** ने विभिन्न अवस्थाओं के बच्चों के कुछ अन्य प्रकार के महत्वपूर्ण खेलों का उल्लेख किया है, यथा–

;पद्ध **स्वतन्त्र ऐच्छिक खेल–** ये खेल, सबसे प्रारम्भिक हैं। बच्चे एवं इनको अकेला एवं जब, जहाँ और जब तक चाहता है, खेलता है। वह इन खेलों को अपने शरीर के अंगो या खिलौने से खेलता है।

;पपद्ध **झूठ–मूठ के खेल–** इन खेलों में बच्चा किसी वयस्क के समान कार्य या व्यवहार करता है। वह विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न नाम रखता है और उनसे बातें करता है।

;पपपद्ध **माता–सम्बन्धी खेल–** इन खेलों को बच्चा अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अपनी माता के साथ खेलता है।, जैसे–आँख–मिचौनी।

;पअद्ध **संवेगाात्मक खेल–** इन खेलो में बच्चा विभिन्न संवेगों का अनुभव करता है और उनके अनुरूप अभिनय करता है, जैसे–वीरता का अभिनय।

1.6.3 खेल का महत्व ;प्उचवतजंदबम व ि्संलद्ध

'खेल' बच्चे के प्रत्येक अंग को किस प्रकार प्रभावित करता है, इसका संक्षिप्त वर्णन निम्नवत दृष्टव्य है–

1. शारीरिक महत्व– खेल से बच्चे को होने वाले शारीरिक लाभ इस प्रकार है।– (1) भौतिक वातावरण का ज्ञान, (2) रक्त का स्वतन्त्र संचार, (3) शारीरिक बल और स्वास्थय की प्राप्ति, (4) शारीरिक बल और माँसपेषियों की सुडौलता, (5) रोगों से बचने की क्षमता।

2. मानसिक महत्व– खेल से बच्चे में होने वाले मानसिक लाभ इस प्रकार हैं– (1) भाषा का विकास, (2) मानसिक थकान का अन्त, (3) मानसिक सन्तुलन की क्षमता, (4) नये विचारों और परिस्थितियों का ज्ञान, (5) तर्क, स्मृति, कल्पना, चिन्तन आदि शक्तियों का विकास।

3. सामाजिक महत्व– खेल से बच्चे में होने वाले सामाजिक लाभ इस प्रकार हैं– (1) सामाजिक व्यवहार का ज्ञान, (2) दूसरों की इच्छा का सम्मान, (3) सामाजिक सम्पर्क की इच्छा की पूर्ति, (4) आत्म–हित से समूह–हित की श्रेष्ठता, (5) सहयोग, सामंजस्य, सहिष्णुता, नेतृत्व, आज्ञाकारिता, उत्तरदायित्व, निःस्वाार्थता आदि गुणों का विकास।

4. संवेगाात्मक महत्व– खेल से बच्चे को होने वाले संवेगात्मक लाभ इस प्रकार हैं– (1) दिवास्वप्न देखेने की आदत का अन्त, (2) संवेगों का नियन्त्रण करने की क्षमता, (3)

लज्जा, कायरता, बचपन, चिड़चिड़ापन आदि दोषों का निवारण, (4) **स्किनर एवं हैरीमन के अनुसार**– "खेल, संवेगों को स्थिरता प्रदान करने में सहायता देता है।"

5. वैयक्तिक महत्व– खेल से बालक को होने वाले वैयक्तिक लाभ इस प्रकार हैं– (1) प्रकृतिदत्त योग्यता का विकास, (2) पुस्तकीय ज्ञान के साथ व्याव्हारिक ज्ञान की प्राप्ति, (3) शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास के कारण व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास।

6. नैतिक महत्व– खेल से बालक को होने वाले नैतिक लाभ इस प्रकार हैं– (1) उचित–अनुचित का ज्ञान, (2) समूह के नैतिक स्तरों को मान्यता, (3) ईमानदारी, सत्यता और आत्म–नियन्त्रण का प्रषिक्षण, (4) सुख और दुःख में समान भाव का प्रषिक्षण, (5) विचारों, इच्छाओं और कार्यो पर नियन्त्रण का प्रषिक्षण, (6) **हरलॉक** के अनुसार– "बालक के नैतिक प्रषिक्षण में खेल सबसे महत्वपूर्ण साधन है।"

7. शैक्षिक महत्व– खेल से बालक को होने वाले शैक्षिक लाभ इस प्रकार हैं– (1) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से खेलने के कारण उनके आकार, रंग, बनावट, उपयोगिता आदि का ज्ञान, (2) खोज और संचय द्वारा ज्ञान की वृद्धि, (3) रेडियो, चलचित्र, संग्रहालय द्वारा सूचनाओं की प्राप्ति, (4) आत्म–अभिव्यक्ति का अवसर।

8. बाल–अध्ययन में सहायता– खेल, बाल–अध्ययन में अग्रलिखित प्रकार से सहायता करते हैं– (1) बच्चा के खेलों को देखकर, उसके सामाजिक सम्बन्धों का ज्ञान, (2) बच्चे की अपने सम्बन्ध में धारणा कि वह क्या चाहता है, (3) बच्चे की रूचि और विषेष योग्यता का ज्ञान।

9. खेल द्वारा चिकित्सा– खेल द्वारा अग्रलिखित प्रकार से चिकित्सा होती है– (1) मानसिक और संवेगात्मक संतुलन खोने वाले बालक की खेल द्वारा चिकित्सा, (2) बालक को भय, क्रोध, निराषा, मानसिक द्वन्द्व आदि से मुक्त करने के लिए स्वतन्त्र खेलों का प्रयोग, (3) चिकित्सालय में मानसिक रोगियों की मनोरंजन द्वारा चिकित्सा।

1.7 बच्चों के शारीरिक और गत्यात्मक विकास में अभिभावक और अध्यापक की भूमिका

;त्वसम वि ंचतमदजे ंदक ज्मंबीमते पद चैलेपबंस ंदक डवजवत
क्मअमसवचउमदज वि बिपसकतमदद्ध

बच्चों के शारीरिक और गत्यात्मक विकास में माता–पिता और अध्यापक की अहं भूमिका होती है। माता–पिता और षिक्षक मिलकर बच्चों के सकारात्मक विकास में अपना योगदान दे सकते हैं–

1.7.1 षारीरिक विकास में अभिभावक और अध्यापक की भूमिका

शारीरिक रूप से स्वस्थ और सामान्य बालकों को प्रायः उनकी मित्र मण्डली या साथी–समूह में समुचित स्थान मिल जाता है जबकि ऐसे बच्चे जो बहुत पतले, मोटे, लम्बे, कुरूप और विकलांग/अक्षम आदि होते हैं उनकी खिल्ली उड़ाई जाती है तथा उनके साथी उन्हें अपने मित्र के रूप में स्वीकार करने में कन्नी काटते हैं। परिणामस्वरूप वे कई प्रकार की संवेगात्मक और सामाजिक समायोजन सम्बन्धी समस्याओं के षिकार हो जाते हैं। दूसरी ओर देखा जाए तो शरीर के सभी अन्तरंग और बाह्य अवयवों की सन्तुलित वृद्धि और विकास के

सभी पहलुओं और मानव–व्यवहार के सभी पक्षों को प्रभावित करता हुआ देखा गया है। अतः साथी बच्चों से माता–पिता और अध्यापक मिल कर उनमें आपसी सामजस्य स्थापित कराने का प्रयास करें जिससे बच्चों में सकारात्मक, स्वस्थय और समुचित विकास हो सके।

शैषवावस्था में बच्चे के विकास पर माता–पिता को बराबर ध्यान देने की आवष्यकता होती है। उसके खाने–पीने, वस्त्र, सफाई, नींद, आराम आदि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इस संबंध में माता–पिता और अध्यापक दोनों का ही गम्भीर उत्तरदायित्व है।

बाल्यावस्था षिक्षा ग्रहण करने की सर्वोत्तम आयु है और इसमें षिक्षा देने में बालक की मूल प्रवृत्तियों का यथासम्भव उपयोग किया जाना चाहिए। इस आयु में बालक में शारीरिक विकास के लिए खेलों का विषेष महत्व है। उनको तरह–तरह से ऐसे खेल दिये जाने चाहिए जिनसे उनके शारीरिक विकास के साथ–साथ उनका मानसिक विकास भी होता चले। विद्यालयों में इस अवस्था में थोड़ी–बहुत ड्रिल और शारीरिक षिक्षा भी उपयोगी सिद्ध होती है। बाल्यावस्था में जब बच्चे परिवक्व हो जाते हैं तब उनमें सामाजिक भावना का विकास तीव्र गति से होता है। उसे समूह में रहना, नये मित्र बनाना अच्छा लगता है। अतः बच्चों को आवष्यक छूट देकर उनकी सामाजिक भावना को विकसित करना चाहिए। ।

1.7.2 गत्यात्मक विकास में अभिभावक और अध्यापक की भूमिका

गत्यात्मक विकास के स्वरूप तथा उसकी प्रक्रिया के ज्ञान द्वारा अध्यापक को यह पता चल जाता है कि बच्चे के गत्यात्मक विकास का कार्य धीरे–धीरे विभिन्न आयु की अवस्थाओं में से गुजरता हुआ किस प्रकार आगे बढ़ता है। किस आयु वर्ग के बच्चे में किस प्रकार की गत्यात्मक क्षमतायें तथा कुषलतायें किस स्तर तक या किस रूप में सामान्य तौर पर विकसित होती हैं, इसका पूर्वानुमान भी वह इस जानकारी के आधार पर लगा सकता है। बच्चे से इन आयु अवस्थाओं में किस प्रकार की गत्यात्मक क्रियाओं तथा कुषलताओं की अपेक्षा की जा सकती है इस बात का ज्ञान माता, पिता या अध्यापकों को बच्चों का अपने पर्यावरण से ठीक प्रकार समायोजन करा सकने में काफी सहायक सिद्ध होता है। बच्चा अभी रेंगने या घुटनों के बल चलने के ही काबिल है, अभी उसे खड़ा होने, चलना या दौड़ने इत्यादि की आषा नहीं की जा सकती। अगर ऐसे प्रयत्न किये भी जाएं तो यह बच्चे के लिए काफी अहितकर सिद्ध हो सकते हैं। कब उससे इन सभी क्रियाओं में आत्मनिर्भरता की आषा की जा सकती है, उस समय का इन्तजार करना ही चाहिए। इस तरह की बात का ज्ञान एक अध्यापक को अपनी षिक्षण गतिविधियों के ठीक प्रकार के आयोजन में बहुत सहायता कर सकता है यथाः

- बच्चों में लेखन कौषल का विकास उनकी हाथ से लिखने सम्बन्धी गत्यात्मक क्षमताओं तथा योग्याताओं के विकास से बहुत कुछ सम्बन्धित होता है। बालक को किस ढंग से लेखनी अच्छी प्रकार पकड़नी चाहिए– यह उसकी उंगलियों की बनावट, माँसपेषियों तथा नाड़ियों की क्षमता तथा उनके द्वारा बनाये जाने वाले संतुलन तथा समन्वयन पर बहुत कुछ निर्भर करता है। अध्यापक को बच्चें की इस प्रकार की क्षमताओं को आधार बनाकर उन्हें लेखन कौषल में आगे बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।
- बच्चों द्वारा जो भी प्रयोगात्मक कार्य किये जाते हैं तथा कार्य अनुभव सम्बन्धी क्रियायें की जाती हैं उनमें उन्हें भलीभाँति प्रषिक्षित करने तथा अभ्यास कराने के लिये भी उनके व्यक्तिगत गत्यात्मक विकास को ध्यान में रखा जाना चाहिये। बच्चों से किसी आयु विषेष

या अवस्था विषेष में उन्हीं क्रियाओं के संपादन की तथा वस्तुओं, साज–सम्मान या उदाहरणों के ठीक तरह उपयोग में लाने की आषा की जानी चाहिए जिनके लिये उनका गत्यात्मक विकास अनुमति देता हो।

- शारीरिक षिक्षा तथा क्रीड़ा प्रषिक्षक, योग अध्यापक आदि को तो विषेष रूप से बालकों के गत्यात्मक विकास को ध्यान में रखकर ही अपने प्रषिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिये। जिन क्रियाओं तथा अभ्यास के संपादन की बालकों से जिस आयु तथा अवस्था विषेष में आषा की जा सकती हो उसी के अनुरूप उन्हें अपना कार्यक्रम तैयार करना चाहिये।

• 1.8 ईकाई सांराष ;न्दपज ैनउउंतलद्ध.

विकास बहुमुखी प्रक्रिया है और समय की दृष्टि से व्यक्ति में परिवर्तन होता रहता है। हमारे शारीरिक ढाँचे और आंतरिक तथा बाह्म अवयवों में जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ परिवर्तन आते रहते हैं। परिवर्तनों की इस प्रक्रिया को ही शारीरिक विकास कहा जाता है। शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया व्यक्तित्व के उचित समायोजन और विकास के मार्ग में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

तीन वर्ष की आयु में षिषु के शरीर और मस्तिष्क में सन्तुलन आरम्भ हो जाता है, उसके शरीर के लगभग सभी अंग कार्य करने लगते हैं और उसके हाथ एवं पैर मजबूत हो जाते हैं। बाल्यावस्था में बच्चे के लगभग सभी अंगों का विकास हो जाता है। वह अपने शारीरिक गति पर नियंत्रण करना जान पाता है।

शारीरिक वृद्धि और विकास के मार्ग में वंषानुक्रम एंव वातावरण दोनों ही संयुक्त रूप से पर्याप्त सहायक सिद्ध होते हैं। बच्चा जन्म लेते ही हाथ–पैर चलाता है, सिर उठाता है, गर्दन घुमाता है इसी प्रकार वह अपनी मांसपेषियों पर नियंत्रण पाने लगता है। यह क्रियात्मक विकास ही गत्यात्मक विकास कहलाता है। गत्यात्मक विकास, शरीरिक वृद्धि से संबंधित होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि लड़कियाँ, लड़कों की अपेक्षा चलना शीघ्र सीख लेती हैं। गत्यात्मक विकास आयु की वृद्धि के साथ–साथ होता है।

बारह वर्ष की आयु तक बच्चों में सम्पूर्ण एवं सूक्ष्म गत्यात्मक कौषलों का पूर्ण विकास हो जाता है। दौड़ने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। अब वह विभिन्न प्रकार की गामक क्रियाओं को बिना थकावट के अच्छी तरह संपादित कर सकता है।

विकास की अवस्थाओं में बच्चों द्वारा रेंगना, खड़ा होना, चलना, दौड़ना, कूदना फेंकना, शारीरिक रूप से संतुलन बनाना, मल–मूत्र विसर्जन पर नियंत्रण, खिलौने से खेलना, कविताएँ और कहानियाँ सुनना, अपने संवेंगों की बाह्म अभिव्यक्ति पर उचित नियंत्रण आदि विकासात्मक कार्य संपादित किया जाता है। बच्चों द्वारा विकासात्मक कार्यों का उचित सम्पादन उन्हें अपनी आयु और अवस्था विषेष में अपने आपसे तथा अपने वातावरण के साथ समायोजित होने में पूरी–पूरी सहायता करता है।

गत्यात्मक विकास तथा गत्यात्मक कौषलों के अर्जन के परिप्रेक्ष्य में कुछ बच्चे सामान्य से काफी आगे तथा पिछड़े हुए नजर आ सकते हैं जिसे विलंबित विकास कहा जाता है। ऐसे बच्चों के लिए षिक्षक व्यक्तिगत निर्देषन तथा परामर्ष की व्यवस्था कर बच्चे के भौतिक, सामाजिक तथा शैक्षिक वातावरण से समायोजित होने में मदद कर सकता है।

सामान्य स्वाभाविक प्रवृत्तियों में खेल की प्रवृत्ति सबसे अधिक व्यापक और महत्वपूर्ण है। खेल के द्वारा हमारी अनेक मूलप्रवृत्तियों का शोधन होता है। खेलों को व्यक्तिगत और सामूहिक दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। कार्ल ग्रूस ने परीक्षणात्मक, गतिषील, रचनात्मक, लड़ाई तथा बौद्धिक पाँच बच्चों के लिए उपयोगी खेलों का उल्लेख किया है। हरलॉक ने स्वतंत्र ऐच्छिक खेल, झूठ–मूठ के खेल, माता सम्बन्धी खेल तथा संवेगात्मक आदि विभिन्न अवस्थाओं के बच्चों के कुछ अन्य प्रकार के खेलों का उल्लेख किया है। खेल बच्चे के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, वैयक्तिक, नैतिक तथा शैक्षिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। बच्चों के शारीरिक और गत्यात्मक विकास में माता–पिता और अध्यापक की अहं भूमिका होती है। माता–पिता और अध्यापक द्वारा आपस में मिलकर बच्चों के सकारात्मक विकास में अपना योगदान देकर उन्हें आत्मनिर्भर, स्वावलम्बी एवं कुषल नागरिक बनाया जा सकता है।

1.9 अपने प्रगति की जांच करें ;बैमबा लवनत च्तवहतमेद्धरू.

- शारीरिक वृद्धि और विकास क्या है?
- शैषवावस्था में शारीरिक विकास की विषेषताएँ बताइये।
- बाल्यावस्था में शारीरिक विकास किस प्रकार होता है?
- उत्तर बाल्यावस्था में शारीरिक विकास समझाइये।
- शारीरिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक कौन–कौन से हैं?
- गत्यात्मक विकास किसे कहते है?
- गत्यात्मक विकास की विषेषताएँ क्या है?
- शैषवावस्था में गत्यात्मक विकास किस प्रकार से होता है?
- बाल्यावस्था में गत्यात्मक विकास समझाइये।
- लिंकन–ओरेत्सकी के गतिक विकास मान को सारणी में दर्षाइये।
- सम्पूर्ण गत्यात्मक कौषलों के विकास क्रमवार समझाइये।
- सूक्ष्म गत्यात्मक कौषलों के विकास का वर्णन कीजिए।
- शैषवावस्था के विकासात्मक कार्य कौन–कौन से है?
- पूर्ण बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्य का वर्णन कीजिए।
- पष्च बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्यों की विवेचना कीजिए।
- विलम्बित विकास का आष्य स्पष्ट कीजिये।
- बच्चों में होने वाले विलम्बित विकास के कारण बताइये।
- विलम्बित विकास के उपचार लिखिये।
- खेल की अवधारणा स्पष्ट कीजिये।
- खेल की विषेषताओं का उल्लेख कीजिये।
- खेल के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।

- बच्चों के विकास में खेल का महत्व बताइये।
- बच्चों के शारीरिक और गत्यात्मक विकास में अभिभावक और अध्यापक के भूमिका की विवेचना कीजिए।

1.10 सत्रगत कार्य/गतिविधियाँ ;ेपहदउमदज ध्बजपअपजलद्ध

- अपने पड़ोस के चार–पाँच बच्चों के शारीरिक और गत्यात्मक विकास का अध्ययन कीजिए और उसका प्रतिवेदन तैयार कीजिए।
- अपने विद्यालय के बच्चों के खेलों का अध्ययन कीजिए और यह बताइये कि बच्चों में इन खेलों से किन–किन गुणों का विकास हो रहा है।
- अपने साथियों के साथ शारीरिक और गत्यात्मक विकास के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा कीजिए और उन बच्चों का पता लगाइये जिनका समुचित विकास नहीं हो रहा है। विकास न होने के कारणों का उल्लेख कीजिए।

1.11 चर्चा के बिन्दु ;च्वपदज क्पेबनेपवदद्ध

- अपने साथियों के साथ चर्चा कर स्थूल एवं सूक्ष्य गत्यात्मक विकास की सूची बनाइये।

  .....

  .....

- अपने विद्यालय मे अध्ययनरत 6–11 वर्ष तक के बच्चों के विकासात्मक कार्यों की समीक्षा कीजिए।

  .....

  .....

- अपने विद्यालय में आयोजित खेलों की सूची बनाकर बच्चों के शारीरिक एवं गत्यात्मक विकास में योगदान पर चर्चा कीजिये।

  .....

  .....

1.12 संदर्भ ;त्मदबमेद्ध

- गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता, अलका (2009) **उच्चतर षिक्षा मनोविज्ञान,** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद–2 : युनिवर्सिटी रोड़।
- पाठक, पी.डी. (2013) **षिक्षा मनोविज्ञान,** आगरा–2 : श्री विनोद पुस्तक मन्दिर।
- भटनागर, सुरेष (2010) **षिक्षा मनोविज्ञान,** मेरठ : आर. लाल बुक डिपा, निकट गर्वनमेंट इन्टर कॉलेज, मेरठ।
- मंगल, एस. के. एवं मंगल, उमा (2014) **विद्यार्थी अधिगम एवं संज्ञान,** लुधियाना : टंडन पब्लिकेषन।

- मंगल, एस. के. (2010) **षिक्षा मनोविज्ञान,** नई दिल्ली : पी. एच. आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।
- यादव, सियाराम (2010) **अधिगमकर्ता का विकास** एवं षिक्षण अधिगम प्रक्रिया शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद–2 : युनिवर्सिटी रोड़।
- यादव डी.एस. (2009) **षिक्षा मनोविज्ञान,** दिल्ली : प्रेरणा प्रकाषन, सी–13 रोज अर्पाटमेंट, सेक्टर – 14 एक्सेंटषन रोहिणी।

खण्ड – 2
इकाई 2 : संवेगात्मक विकास
;म्उवजपवदंस क्मअमसवचउमदजद्ध

इकाई संरचना

2.1 परिचय ;प्दजतवकनबजपवदद्ध
2.2 उद्देश्य ;व्इरमबजपअमेद्ध
2.3 संवेग का अर्थ ;डमंदपदह व िम्उवजपवदद्ध
2.4 संवेगों की प्रकृति ;छंजनतम व िम्उवजपवदेद्ध
2.5 संवेगों की विशेषताएँ ;बिंतंबजमतपेजपबे व िम्उवजपवदेद्ध
2.6 संवेगों के प्रकार ;ज्लचमे व िम्उवजपवदेद्ध
2.7 संवेगात्मक विकास ;म्उवजपवदंस क्मअमसवचउमदजद्ध
    2.7.1 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास
    2.7.2 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास
2.8 विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में संवेगात्मक विकास
    ;म्उवजपवदंस क्मअमसवचउमदज पद कपंिमितमदज ैवबपंस . ब्नसजनतंस ब्वदजमगज द्ध
2.9 बच्चों के संवेगों को समझना ;न्दकमतेजंदकपदह बेपसकतमदश्े म्उवजपवदेद्ध
2.10 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
    ;थ्बजवते ।ंिबजपदह म्उवजपवदंस क्मअमसवचउमदजद्ध
2.11 स्वस्थ्य संवेगात्मक विकास में अभिभावक और अध्यापक की भूमिका
2.12 इकाई सारांश ;न्दपज ैनउउंतलद्ध
2.13 अपनी प्रगति की जाँच करें ;बिमबा लवनत च्तवहतमेद्ध
2.14 सत्रगत/दत्त कार्य/गतिविधि ;ेपहदउमदज ध ।बजपअपजलद्ध
2.15 संदर्भ ;त्मंितमदबमेद्ध

2.1 परिचय

मानव विकास के अध्ययन में मनोविज्ञान अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। अध्यापक को बच्चे के हर विकास के साथ–साथ उसकी विशेषताओं की जानकारी होना अति आवश्यक है तभी वह शिक्षा का नियोजन बच्चे के विकास के अनुसार कर सकता है। वंशानुक्रम और वातावरण मानवीय – व्यवहार के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करते हैं। उनके कारण व्यक्तियों की शारीरिक रचना, मानसिक बृद्धि, सामाजिक समायोजन, जीवन दर्शन, इच्छाएँ, संवेग आदि पूरी तरह प्रभावित होते हैं।

संवेगात्मक विकास, व्यक्ति के विकास एवं उन्नति में अपना एक विशेष महत्व रखता है। यह विकास व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करता है। संवेगों के सही विकास की कमी से व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विघटित हो जाता है। संवेग जीव की शक्ति को उत्तेजित करते हैं और विषम परिस्थितियों में उसकी बहुत सहायता करते हैं। प्रेम, हर्ष, उत्सुक्ता जैसे संवेग जहाँ मनुष्य में सकारात्मक प्रभाव छोड़ते हैं वहीं भय, क्रोध, ईर्ष्या आदि संवेग
उसके विकास को विकृत और कुण्ठित कर देते हैं। अतः मानव विकास में संवेगों का अत्यधिक महत्व है। प्रस्तुत इकाई में हम संवेगात्मक विकास के विभिन्न पहलुओं, विशेषताओं तथा उसका शैक्षिक विकास में प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- संवेगात्मक विकास की अवधारणा समझ सकेंगे।
- संवेग का अर्थ समझ सकेंगे।
- संवेग की प्रकृति और विशेषताएँ समझ सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के संवेगों को समझ सकेंगे।
- विभिन्न सामाजिक – सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में संवेगात्मक विकास समझ सकेंगे।
- संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक समझ सकेंगे।
- संवेगात्मक विकास में अभिभावक और अध्यापक की भूमिका समझ सकेंगे।

2.3 संवेग का अर्थ ;डमंदपदह वि ग्उवजपवदद्ध

संवेग को अंग्रेजी में 'इमोशन' ;ग्उवजपवदद्ध कहते हैं। 'इमोशन' शब्द लैटिन भाषा के 'इमोवेयर' ;ग्उवअमतमद्ध शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है – 'हिला देना' या 'कौतूहल पैदा कर देना' या 'उत्तेजित' कर देना। अतः संवेग मन को उत्तेजित करने की दशा है। जब हमारी भावनाएँ तीव्र तथा उत्तेजित हो जाती है, तब वे संवेग बन जाती है। उदाहरणार्थ जब कोई व्यक्ति क्रोधित होता है तो उसकी मुट्ठियाँ खिंच जाती है, माथे पर सलवटे पड़ जाती है, दाँत किटकिटाने लगता है। ऊपर से लेकर नीचे तक पूरा शरीर लाल उत्तेजित दिखाई पड़ता है। हमारी इस उत्तेजित दशा का नाम संवेग है।

संवेग का शाब्दिक अर्थ है – वेग से युक्त अर्थात जब व्यक्ति वेग से युक्त होकर कार्य करता है तो उसे संवेग कहते है। अंग्रेजी भाषा के इमोशन में 'ई' का अर्थ है अंदर से तथा 'मोशन' का अर्थ है – गति। अतः इमोशन शब्द का अर्थ है आन्तरिक भावों को बाहर की ओर गति देना। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि संवेग आंतरिक भावों का बाह्य प्रकाशन है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा संवेगों की भिन्न–भिन्न ढंग से परिभाषाएँ दी गई है। आइए यहाँ कुछ परिभाषाओं का अध्ययन करते हैं–

- **वुडवर्थ के अनुसार –** "संवेग व्यक्ति की उत्तेजित दशा है।"
- रॉस के अनुसार – "संवेग चेतना की वह अवस्था है। जिसमें रागात्मक तत्त्व की प्रधानता रहती है।"
- **क्रो व क्रो के अनुसार –** "संवेग वह भावात्मक अनुभूति है जो व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक उत्तेजनापूर्ण अवस्था तथा सामान्यीकृत आन्तरिक समायोजन के साथ जुड़ी होती है और जिसकी अभिव्यक्ति ऊपरी व्यवहार के द्वारा होती है।"
- **मैकडुगल के अनुसार –** "संवेग मूल प्रवृत्तियों का हृदय है।"
- **पी.टी. यंग के अनुसार** – "संवेग मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न व्यक्ति का तीव्र उपद्रव है जिसके अंतर्गत व्यवहार, चेतन अनुभव तथा अंतरंग क्रियायें सम्मिलित रहती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि संवेग वास्तव में व्यक्ति के आन्तरिक भावों की अचानक तीव्र होने तथा विवेक प्रक्रिया के नियंत्रण से मुक्त व्यवहार के परिलक्षित होने की स्थिति को व्यक्त करते हैं।

2.4 संवेगों की प्रकृति ;छंजनतम वि ग्उवजपवदेद्ध

संवेगों की प्रकृति स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार की होती है। मानव का प्रत्येक संवेग जन्मजात मूल प्रवृत्ति से जुड़ा होता है। प्रत्येक प्राणी जीवन में प्रतिदिन अपने व्यवहारों के माध्यम से संवेगों का प्रदर्शन करता रहता है। विभिन्न परिस्थितियों में मानव का व्यवहार प्रसन्नता, भय, क्रोध, ईर्ष्या, प्रेम आदि से युक्त होती है। संवेग व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण करते है तथा उनके सामाजिक समायोजन को भी प्रभावित करते हैं। संवेगों की प्रकृति भावात्मक होती है जो व्यक्ति को क्षणिक उत्तेजना प्रदान करते हैं। अर्थात संवेगों की उत्पत्ति उत्तेजना से होती है। ये उत्तेजनायें भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों से होती हैं। संवेग एक विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति हैं जिसमें व्यक्ति की सभी आन्तरिक तथा बाह्य क्रियाओं में परिवर्तन आ जाता है। संवेगों को व्यक्ति की मुख–मुद्रा, वाणी तथा अन्य व्यवहार के अवलोकन से पहचाना जा सकता है। संवेगों के कुछ प्रकृति जन्म लक्षण निम्नवत हैं–

- संवेगों की उपस्थिति व्यक्ति वस्तु या परिस्थिति के कारण होती है।
- संवेगों की स्थिति में व्यक्ति के सोचने समझने तथा विचार प्रक्रिया का लोप हो जाता है, जिससे मानसिक क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- संवेगों का स्वरूप मानव व्यवहारों के रूप में परिलक्षित होता है।
- संवेगों में व्यापकता का गुण पाया जाता।
- संवेगों का संबंध मन और शरीर दोनों से होता है। भावों की उत्पत्ति मन से होती है और उनका प्रकटीकरण शारीरिक दशाओं से होता है।

2.5 संवेगों की विशेषताएँ ;बिंतंबजमतपेजपबे वि ेउवजपवदेद्ध

संवेगों की निम्नांकित विशेषतायें होती हैं–

(1) संवेगों की व्यापकता – संवेग सभी प्राणियों में पाए जाते हैं। मानव हो अथवा पशु–पक्षी, बालक हो अथवा वृद्ध, सभी भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न प्रकार के संवेगों को प्रदर्शित करते हैं। सभी देशों के निवासियों में सभी धर्मों, प्रजातियों अथवा जातियों के व्यक्तियों में संवेग पाए जाते हैं।

(2) शारीरिक परिवर्तन – संवेगों के उदय होने पर अस्थायी शारीरिक परिवर्तन हो जाते हैं। ये परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं – ;पद्ध आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन तथा ;पपद्ध बाह्म शारीरिक परिवर्तन। आन्तरिक शारीरिक परिवर्तनों के अंतर्गत जल्दी–जल्दी श्वाँस लेना,

हृदय की धड़कन का बढ़ जाना, पाचन क्रिया का प्रभावित हो जाना आदि प्रमुख हैं। बाह्म शारीरिक परिवर्तनों के अन्तर्गत आवाज में परिवर्तन आ जाना, मुखमंडल में अंतर आ जाना, अंग संचालन की गति में परिवर्तन आ जाना आदि परिवर्तन प्रमुख हैं।

(3) विचार प्रक्रिया का लोप हो जाना – सांवेगिक दशा में व्यक्ति की विचार प्रक्रिया या तो शिथिल हो जाती है अथवा लुप्त हो जाती है। बुद्धि तथा विवेक एवं चिन्तन तथा तर्क प्रक्रिया का उसके व्यवहार पर पूर्ण नियंत्रण नहीं रहता है। वह उचित–अनुचित का ठीक ढंग से विचार नहीं कर पाता है। यही कारण है कि व्यक्ति संवेगों के वशीभूत होकर अनेक ऐसे कार्य कर जाता है जो वह सामान्य दशा में करना कदापि पसन्द नहीं करता है।

(4) व्यक्तिगतता ;प्दकपअपकनंसपजलद्ध – संवेगों की अभिव्यक्ति में व्यक्तिगतता होती है। एक ही स्थिति में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के संवेग तथा उनकी मात्रा भिन्न–भिन्न हो सकती है। जैसे किसी गरीब बच्चे को भीषण शीत में ठिठुरता देखकर कोई व्यक्ति उसे पहनने के लिए पुराने कपड़े दयावश दे देता है, जबकि अन्य कोई व्यक्ति उसकी स्थिति पर हँस सकता है। इसी प्रकार से

पुत्र के शैतानी करने पर किसी पिता को क्रोध आ सकता है, जबकि किसी अन्य पिता के चेहरे पर मन्द मुस्कान हो सकती है।

(5) संवेगों की अस्थिरता – संवेगो की प्रकृति अस्थायी ;ज्मउचवतंतलद्ध होती है। संवेग थोड़े समय तक रहते हैं, फिर शीघ्र ही व्यक्ति सामान्य स्थिति में आ जाता है। क्रोध की मनोदशा में माँ अपने बच्चें को डाँटती है, परन्तु थोड़ी देर बाद ही वह सामान्य हो जाती है। इसी प्रकार से करुणा, घृणा, भय, आश्चर्य, कामुकता आदि संवेग कुछ समय के उपरांत शांत हो जाते हैं।

(6) संवेगों का स्थानान्तरण – संवेग कभी–कभी अन्य परिस्थितियों में स्थानांतरित हो जाते हैं। जैसे यदि कोई व्यक्ति क्रोध में अपने नौकर को डाँट रहा होता है तथा उस समय कोई अन्य व्यक्ति आकर उससे कुछ सार्थक बात करना चाहता है तो प्रायः क्रोधी व्यक्ति को आगन्तुक पर भी अनावश्यक क्रोध आने लगता है।

(7) मूल प्रवृत्तियों में संबंध – संवेगों की उत्पत्ति मूल प्रवृत्तियों से होती है। जैसे जिज्ञासा से आश्चर्य की, पलायन से भय की, संग्रहण से अधिकार की तथा ह्रास से आमोद की उत्पत्ति होती है। वस्तुतः प्रत्येक संवेग किसी न किसी मूल प्रवृत्ति से उत्पन्न होता है।

(8) संवेगों की क्रियात्मक प्रवृत्ति – संवेगों का सम्बन्ध क्रियात्मक प्रवृत्तियों से होता है। प्रत्येक संवेग किसी न किसी एक क्रियात्मक प्रवृत्ति से संबंधित होता है। भय में व्यक्ति भागता है, आमोद में व्यक्ति हँसता है तथा क्रोध में व्यक्ति की भौंहें तन जाती हैं।

(9) सुख–दुख का भाव निहित होना – संवेगों में या तो दुख का भाव निहित होता है अथवा सुख का भाव निहित होता है। प्रेम, स्नेह व वात्सल्य जैसे संवेगों में दुख का भाव निहित रहता है।

इस प्रकार संवेगों की मानव जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

2.6 संवेगों के प्रकार ;ज्लचमे व ि्उवजपवदेद्ध –

संवेग अनेक प्रकार के होते हैं। मैकडूगल ;डबक्वनहंसद्ध ने कुल चौदह संवेगों का उल्लेख किया है, जिनमें से प्रत्येक संवेग एक–एक मूल प्रवृत्ति ;प्देजपदबजद्ध से संबंधित होता है। ये **चौदह** संवेग तथा उनमें सम्बन्धित मूल प्रवृत्तियाँ अग्रांकित सारणी में प्रस्तुत किये गये हैं–

सारणी – 2.1: मैकडूगल द्वारा बताये चौदह संवेग

क्र.	मूल प्रवृत्ति ;प्देजपदबजद्ध	संवेग म्उवजपवद
1	पलायन ;म्ाबंचमद्ध	भय ;थ्मंतद्ध
2	युयुत्सा ;ब्वउइंजद्ध	क्रोध ; ।दहमतद्ध
3	निवृत्ति ;त्मचनसेपवदद्ध	घृणा ;क्पेहनेजद्ध
4	सन्तान कामना ;च्तमदजंसद्ध	वात्सल्य ;ज्मदकमतदमेद्ध
5	शरणागति ; ।चचमंसद्ध	करुणा ;क्पेजतमेद्ध
6	काम प्रवृत्ति ैमगद्ध	कामुकता ;स्नेजद्ध
7	जिज्ञासा ;ब्नतपवेपजलद्ध	आश्चर्य ॅवदकमतद्ध
8	दैन्य ैनइउपेपवदद्ध	आत्महीनता ;छमहंजपअम ैमसथ्ममसपदहद्ध
9	आत्मगौरव ैमस ीमतजपवदद्ध	आत्म–अभिमान ;च्वेपजपअम ैमसथ्ममसपदहद्ध
10	सामूहिकता ;ळतमहंतपवनेतमदद्ध	एकाकीपन ;स्वदमसपदमेद्ध
11	भोजन तलाश ;थ्ववक ैममापदहद्ध	भूख ;भ्नदहमतद्ध
12	संग्रहण ; ।बुनपेपजपवदद्ध	अधिकार ;थ्ममसपदह व ि्दमतीपचद्ध
13	रचनाधार्मिता ;ब्वदेजतनबजपवदद्ध	कृतिभाव ;ब्तमंजपअमदमेद्ध
14	हास ;स्ंनहीजमतद्ध	आमोद ; ।उनेमउमदजद्ध

भारतीय मनोवैज्ञानिक केवल दो मुख्य संवेग स्वीकार करते हैं। ये हैं – **राग तथा द्वेष**। इन दोनों मुख्य संवेगों को निम्नानुसार सारणी रूप में व्यक्त किया जा सकता है–

सारणी – 2.2 : भारतीय चिंतन में संवेग

मुख्य संवेग	विवरण	संवेग
1. रागात्मक संवेग ;च्वेपजपअम म्उवजपवदेद्ध	अपने से बड़ों के प्रति राग अपने बराबर वालों के प्रति राग अपने से छोटों के प्रति राग	सम्मान, भक्ति, श्रृद्धा, मित्रता, प्रेम, आसक्ति स्नेह, वात्सल्य, दया
2. द्वेषात्मक संवेग ;छमहंजपअम म्उवजपवदेद्ध	अपने से बड़ों के प्रति द्वेष अपने बराबर वालों के प्रति द्वेष अपने से छोटों के प्रति द्वेष	भय कायरता, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, जलन, गर्व, अभिमान, अधिकार

कुछ संवेग ऐसे होते हैं जो नैसर्गिक होते हैं– जैसे भय, क्रोध, आश्चर्य, शोक आदि। जबकि कुछ संवेग ऐसे होते है जो धीरे–धीरे विकसित होते हैं– जैसे ईर्ष्या, प्रेम, घृणा आदि। जिन संवेगों से व्यक्ति को सुख मिलता है उन्हें सुखद संवेग अथवा धनात्मक संवेग ;च्वेपजपअम म्उवजपवदेद्ध कहते हैं – जैसे प्रेम, स्नेह, मित्रता आदि। जिन संवेगों से व्यक्ति को दुख मिलता है उन्हें दुखद संवेग या ऋणात्मक संवेग ;छमहंजपअम म्उवजपवदेद्ध कहते हैं जैसे – भय, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या आदि।

2.7 संवेगात्मक विकास

संवेगात्मक विकास, मानव विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। मैक्डूगल ने व्यक्ति में 14 उद्वेग अथवा संवेग माने हैं और उनमें आत्म–सम्मान के संवेग को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। आत्माभिमान या स्वाभिमान के संवेग से शिशु के चरित्र में दया, आश्चर्य, स्वतंत्रता, रचनात्मकता, आमोद आदि वांछनीय संवेग उत्पन्न होते हैं। शिशु में चरित्र की दृष्टि से कुछ अवांछनीय संवेग भी देखे जा सकते हैं, जैसे–भय, क्रोध, घृणा, तीव्र कामुक भावना तथा आत्महीनता, इत्यादि। इन संवेगों के विकास से व्यक्ति की शक्ति कम होती है और समाज में उसका व्यवस्थापन बिगड़ता है। यद्यपि मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है परन्तु उसका अधिकतर व्यवहार बुद्धि से नहीं बल्कि संवेगों से परिचालित होता है। अतः मानव विकास में संवेगकों का अत्यधिक महत्त्व है। भिन्न–भिन्न संवेग भिन्न–भिन्न उत्तेजना परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होते हैं। उत्तेजनाओं के अतिरिक्त, कभी–कभी विशेष संवेग बहुलता का कारण शारीरिक अथवा मानसिक विकास की स्थितियाँ भी हो सकती हैं। बच्चों में शुरू से ही तीव्र उत्तेजना नहीं होती, इसका तीव्र स्वरूप तो जवानी में देखने को मिलता है। अनेक अध्ययनों से यह निश्चित हो चुका है कि व्यक्ति में संवेगों का क्रमशः विकास होता है। संवेगों के विकास का अध्ययन भी व्यक्ति की सामान्य स्थितियों के अनुसार किया जाता है। ये सामान्य स्थितियाँ हैं – शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था। यहाँ पर व्यक्ति में संवेगात्मक विकास का इन्हीं स्थितियों में से शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था का अध्ययन किया जा रहा है–

2.7.1 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास – संवेग जन्म से ही नहीं उत्पन्न होते बल्कि मानव व्यक्तित्व के किसी भी अंग के समान उनका विकास होता है। वाटसन ने नवजात शिशु में मुख्य रूप से तीन मूल संवेग माने हैं। वह है भय, क्रोध और प्रेम। जबकि ब्रिजेज ने वाटसन की आलोचना की है। उनके अनुसार–"शिशु के जन्म के समय केवल उत्तेजना होती है और दो वर्ष की आयु तक उसमें लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है।" लेकिन उसके बाद भी अधिकतर मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि इन तीन मूल संवेगों के मिश्रण से ही अन्य सभी संवेगों

का जन्म होता है और आयु बढ़ने के साथ–साथ इन संवेगों की अनुभूति और अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन होता रहता है।

शिशु के उत्पन्न होने के पश्चात शुरु से ही उनके स्वभाव व चाल–चलन में यह तत्व देखने को मिलता है। क्योंकि वह रोता–चिल्लाता और हाथ–पाँव फेंकता है। इस प्रकार, शैशवावस्था में जन्म से ही संवेग का प्रमाण मिलता है। परन्तु इस आयु में यह निश्चित करना कठिन है कि शिशु की किन क्रियाओं और व्यवहार से उसमें कौन सा संवेग समझना चाहिए। यद्यपि मनोवैज्ञानिक इस विषय में सहमत नहीं हैं कि शिशु के जन्म के समय कष्ट और चिन्ता आदि की अनुभूतियाँ कहाँ तक होती हैं परन्तु सामान्य रूप से सभी यह मानते हैं कि नवजात शिशुओं में संवेगात्मक व्यवहार पाया जाता है। सामान्य रूप से कोई भी संवेगात्मक प्रतिक्रिया होने से पूर्व शिशु में उत्तेजना का अर्थ समझने की योग्यता होनी चाहिए। शारीरिक विकास के साथ–साथ शिशु में जाठरिक प्रतिक्रियाओं और संवेगात्मक अनुभवों में सामान्य सम्बन्ध देखा जा सकता है। शिशु की किसी इच्छा की पूर्ति में आघात आने से उसमें संवेगात्मक उत्तेजना होती है। शैशवावस्था में शिशु अपनी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में हस्तान्तरित नहीं कर सकता।

संवेगों की अभिव्यक्ति में शैशवावस्था में बराबर अन्तर देखा व सुना जा सकता है। जन्म के पश्चात प्रारंभ के कुछ महीनों में शिशु मनुष्य का चेहरा देखकर मुस्कराता है और बाद में हँसता भी है। गैसेल ने चार सप्ताह की आयु के शिशुओं के अध्ययन में पाया कि भूख, क्रोध और कष्ट में रोने को अलग–अलग माँ, अपने शिशु के रोने को सुनकर पहचान लेती है। इसी तरह, पहले वर्ष में भय, हर्ष और स्नेह की अभिव्यक्तियाँ देखी जा सकती हैं। छः महीने की आयु होते–होते बच्चे के चेहरे की प्रतिक्रियाओं को देखकर भय और क्रोध के संवेग में अन्तर किया जा सकता है।

- **शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ**

1. एक छोटा बच्चा शुरू में किसी वस्तु से नहीं डरता, परन्तु जैसे–जैसे उसकी समझ विकसित होती जाती है। वह साँप, पशुओं, अंधेरे आदि से डरने लगता है।
2. तीन एवं चार वर्ष की आयु तक शिशु में प्रेम का विकास हो जाता है और वह उसको अभिव्यक्त करने में भी समर्थ हो जाता है।
3. शैशवावस्था में बालक सहानुभूति व अपनेपन की भावना केवल अपने माता–पिता, बहन–भाई, अपने प्रियतम के प्रति ही रखता है यह भावनाएँ उसमें शैशवावस्था के बाद ही पूरी तरह विकसित होती है।
4. शैशवावस्था में बच्चा प्रेम का उत्तर प्रेम से, क्रोध का क्रोध से ही देता है अर्थात् उसमें अनुकरण की भावना पाई जाती है।
5. बालक के संवेगात्मक व्यवहार में अत्यधिक अस्थिरता होती है उसका संवेग कुछ ही समय के लिए रहता है। जैसे–भूखा बालक दूध मिलते ही तुरन्त शान्त हो जाता है।
6. शुरुआती आयु में बालक के संवेगों की शुरुआत बहुत तीव्रता से होती है फिर धीरे–धीरे कम हो जाती है।
7. शुरुआती अवस्था में शिशु के संवेगों में अस्पष्टता होती है वह क्या कहना चाह रहा है, समझना मुश्किल होता है।
8. बालक के संवेगात्मक विकास में क्रमशः परिवर्तन होता चला जाता है। प्रारम्भ में वह संवेगों को रोकर अभिव्यक्त करता है फिर आवाजों के साथ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

इस तरह शिशु का संवेगात्मक व्यवहार धीरे–धीरे ही निश्चित और जाहिर होता चला जाता है। शैशवावस्था में बच्चों के व्यवहार के विकास की सामान्य दिशा अनिश्चित और अस्पष्ट से विशिष्ट की ओर जाती है।

- **शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास हेतु शिक्षा का स्वरूप**

शैशवावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति में क्रमशः परिष्कार होता जाता है। इसका मतलब यह नहीं लगाना चाहिए कि शिशु के जीवन में संवेगों का महत्त्व ही नहीं रहता। उसे अब भी संवेगात्मक अनुभवों के उपयुक्त उत्तेजनाओं की जरूरत होती है।

ज्ञान और अनुभव बढ़ने के साथ–साथ संवेगात्मक अभिव्यक्ति में अन्तर आना स्वाभाविक ही है। माता–पिता और अभिभावकों को ध्यान रखना चाहिए कि बालक में कोई भी संवेग अत्यधिक तीव्रता की स्थिति न ले सके क्योंकि इससे कभी–कभी उसको काफी नुकसान होती है।

शैशवावस्था में मुख्य रूप से शिक्षा तीन परिस्थितियों पर निर्भर करती है–

(1) परिवार का असर– परिवार में रहने वालों के जरिये ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाय जो बच्चों के लिए लाभदायक हो। जिनके द्वारा शिशु में अवांछनीय संवेगों का विकास न हो। वह वांछनीय संवेगों को ही अधिक से अधिक ग्रहण करें।

(2) शिक्षकों एवं अभिभावकों के योगदान का प्रभाव – शिक्षक एवं अभिभावक ही बच्चों को वीर या कायर, क्रोध या विनयशील, झगड़ालु अथवा सहनशील बना सकते हैं। ऐसा माना जाता है कि विश्व के बड़े–बड़े वीर पुरुष बचपन में अपनी माताओं से वीरता की कहानियाँ सुनकर ही वीर बन गए थे। अतः कहा जा सकता है कि शिशुओं का संवेगात्मक विकास शिक्षकों एवं अभिभावकों पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

(3) पास–पड़ोस का असर– दो वर्ष के बाद से ही बच्चों पर आस–पड़ोस के वातावरण का असर पड़ने लगता है और बालक उससे प्रभावित भी होता है। अतः इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसके साथी बच्चों का व्यवहार कैसा है? वह क्या खेल खेलते हैं? आपस में कैसे बातें करते हैं? बच्चों के अभिभावकों को इस समय उन्हें सही दिशा–निर्देश देना चाहिए।

2.7.2 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास – बाल्यावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति अधिक विशिष्ट होती जाती है, परन्तु उसमें अब शैशवावस्था की सी प्रचण्डता नहीं रहती। साथ ही बालक ऐसी अनेक बातों के प्रति कोई संवेग नहीं दिखलाता जो बचपन में अधिक उत्तेजना उत्पन्न करती हैं। उदाहरण के लिए वह नहाने या कपड़े पहनने में क्रोधित नहीं होता और अजनबियों को देखकर नहीं डरता। बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास पर परिवार से अधिक मित्रों और साथियों का प्रभाव पड़ता है। ये साथी पड़ोस के भी हो सकते हैं और कक्षा के सहपाठी भी। इस आयु में बालक स्कूल जाने लगता है। अतः उसके संवेगात्मक विकास में शिक्षकों के व्यवहार और स्कूल तथा कक्षा के वातावरण का भी असर पड़ता है। अच्छे उदाहरण उपस्थित करके और उपयुक्त वातावरण निर्माण करके शिक्षक बालकों में वांछनीय संवेगों का विकास कर सकते हैं और अवांछनीय संवेगों को बढ़ने से रोक सकते हैं। इस प्रकार वे बालक में आदर्श चरित्र का निर्माण कर सकते हैं।

- **बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ**

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास की निम्नलिखित विशेषताएँ होती है–

(1) बाल्यावस्था संवेगों की मुख्य अवस्था है इसी आयु के बालक सभी तरह के संवेगों पर नियंत्रण एवं उनके प्रदर्शन का तरीका सीख जाते हैं।

(2) बाल्यावस्था में संवेग अधिक निश्चित होने पर भी कम शक्तिशाली रहते हैं। जैसे छः वर्ष का बालक अपने क्रोध पर नियंत्रण करना सीख लेता है।

(3) बच्चों के अन्दर सही को सही और गलत को गलत ही समझने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अतः उसके संवेगों का प्रदर्शन भी समय, परिस्थितियों एवं स्थान के अनुकूल ही होता है।

- **बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास हेतु शिक्षा का स्वरूप**

(1) बालक के संवेगात्मक विकास में शिक्षक का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। शिक्षक का अप्रिय व्यवहार एवं कठोर अनुशासन उसके संवेगात्मक विकास को अवरुद्ध कर देगा। अतः शिक्षक को प्रेम, सहानुभूति तथा सहयोगात्मक व्यवहार करना चाहिए।

(2) बाल्यावस्था में बालक विविध समूहों का सदस्य होता है। इन समूहों में साधारणतः जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, आदि की भावनाएँ पाई जाती हैं, वहीं सहयोग, प्रेम, दया आदि भावनाएँ भी पर्याप्त रूप में विद्यमान होती हैं। अतः समूह की विविधता भी बहुत महत्त्व रखती है।

(3) विद्यालय एवं परिवार में यथासम्भव स्वतंत्रता का वातावरण होना चाहिए। जिससे बालक अपने संवेगों को उन्मुक्त रूप से अभिव्यक्त कर सकें।

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि परिवार, विद्यालय और आस–पास के स्वस्थ्य वातावरण में शिक्षक, अभिभावक एवं समाज के व्यक्तियों द्वारा अच्छे आदर्श उपस्थित होने पर बालकों में स्वतः वांछनीय संवेगों का विकास होता है।

2.8 विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में संवेगात्मक विकास

;म्उवजपवदंस क्मअमसवचउमदज पद कपमितमदज ैवबपव . ब्नसजनतमंस ब्वदजमगज द्ध

बच्चे का विकास उसके समाज के वातावरण नियम एवं आचार–विचार से प्रभावित होता है। विकसित देशों के बच्चों का विकास अर्द्ध विकसित एवं गरीब देश के बच्चों की तुलना में तीव्र गति से होती है।

बच्चों को दूसरे साथियों के साथ मिलने–जुलने एवं खेलने का अधिक से अधिक अवसर दिया जाना चाहिए जिससे उसमें सामाजिक भावना का विकास हो सके।

माता–पिता की अशिक्षा तथा घर–परिवार की विपन्नता बच्चे के समुचित 'संवेगात्मक विकास' में बाधक होती है। अनपढ़, रूढ़िवादी एवं कूपमण्डूक माता–पिता प्रायः बच्चे की आवश्यकताओं, रूचियों, अभिवृत्तियों एवं योग्यताओं को समझने में असमर्थ होते हैं। वे बच्चे को उचित एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार भी प्रदान नहीं कर पाते हैं। इससे बच्चे अपने को उपेक्षित महसूस करते हैं।

संवेगात्मक तथा सामाजिक व्यवहार एक दूसरे के अनुयायी होते है। जिन बच्चों में प्रेम, स्नेह, सहयोग, हास–परिहास के भाव अधिक होते हैं वे सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इसके विपरीत जिन बच्चों में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा, नीरसता आदि भाव होते हैं वे किसी को भी अच्छे नहीं लगते। संतुलित एवं वांछनीय संवेग जीवन में आनंद भर देते है और व्यक्तित्व में महत्वपूर्ण गुणों की वृद्धि करते है। वास्तव में संवेग व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक योग्यता, सामाजिक जीवन, चरित्र, वाणी, स्वभाव यहा तक की सीखने को भी पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं।

- **विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक**

ैवबपंस थ्ंबजवते प्दसिनमदबपदह जीम क्मअमसवचउमदजद्ध

सामाजिक परिपेक्ष्य में विकास निम्नवत रूप से प्रभावित होता हैं–

(1) शारीरिक बनावट और स्वास्थ्य ;चैलेपुनम ंदक भ्मंसजीद्ध – जिन बच्चों का शरीर सुसंगठित और सुन्दर होता है, उन्हें अपने समूह और समाज में अच्छा स्थान प्राप्त होता है। इस प्रकार के बच्चों

का समाज की भिन्न परिस्थितियों में समायोजन अच्छा होता है। फलस्वरूप इनका सामाजिक विकास अन्य बच्चों की अपेक्षा शीघ्र और सामान्य होता है। स्वस्थ सुन्दर बच्चे खेलकूद में होशियार और आगे होते हैं। अतः इनको सामाजिक परिस्थितियों में सीखने के अवसर अधिक प्राप्त होते हैं। रंग–रूप में भद्दे या बेडोल बच्चे, गूँगे, बहरे, अन्धे आदि बच्चों के साथ सब बच्चे खेलना भी पसन्द नहीं करते और न मित्रता स्थापित करना अधिक पसन्द करते हैं। अतः इन्हें सामाजिक अवसर कम प्राप्त होते हैं और इनका सामाजिक विकास अन्य बच्चों की अपेक्षा पिछड़ जाता है। शरीर और स्वास्थ्य की दृष्टि से कमजोर बच्चे अपनी कमजोरियों के कारण धीरे–धीरे अन्तर्मुखी हो जाते हैं। इन बच्चों में सामाजिकता के गुण, मित्रता और सहयोग आदि गुणों का अधिक विकास नहीं हो पाता है।

(2) परिवार ;थ्ंउपसलद्ध – परिवार का वातावरण तथा परिवार का सामाजिक–आर्थिक स्तर बच्चों के सामाजिक विकास को बड़े महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। इन कारकों के अतिरिक्त परिवार का आकार भी सामाजिक विकास को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। **डी.सी.डिंकमेयर** ;1965द्ध का विचार है कि छोटे परिवारों में बच्चों को अधिक लाड़–प्यार तो मिलता ही है, साथ ही उनकी देखभाल भी अच्छी होती है। इस अवस्था में उनमें सद्‌गुणों के विकसित होने की तथा सामान्य सामाजिक विकास होने की सम्भावना अधिक होती है। बड़े परिवार में बच्चों का लाड़–प्यार और देखभाल उतनी नहीं हो पाती है, परन्तु उन्हें अन्य बच्चों के व्यवहार के अनुकरण के अवसर अधिक प्राप्त हो जाते हैं। फलस्वरूप उनका सामाजिक विकास शीघ्र तो होता है, परन्तु उन बच्चों के अनुरूप होता है जिनके व्यवहार का अनुकरण किया है। सहयोग, उत्तरदायित्व, पक्षपात, तिरस्कार प्रारम्भ में बच्चा परिवार से ही सीखते हैं। परिवार के सदस्यों का जैसा सामाजिक व्यवहार होता है, बच्चा भी बहुत कुछ उसी प्रकार का व्यवहार सीख लेता है। परिवार का सामाजिक–आर्थिक स्तर भी बच्चे के सामाजिक समायोजन को प्रभावित करता है। निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले परिवारों के बच्चों में हीनता की भावना हो सकती है जिससे वे उत्तरदायित्व संभालने में कठिनाई का अनुभव करते हैं तथा आत्मविश्वास की कमी के कारण सामाजिक परिस्थितियों में उतना सफल नहीं हो पाते हैं जितना कि उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले परिवारों के बच्चे सफल होते है।

(3) पड़ोस और विद्यालय ;छमपहीइवनतीववक ंदक ैबीववसद्ध – बच्चे का सामाजिक विकास किस प्रकार का होगा, यह उसके पड़ोस और स्कूल से भी निर्धारित होता है। बच्चे के पड़ोस में रहने वाले बच्चों और वयस्कों के सामाजिक व्यवहार का भी प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। पड़ोस में किस प्रकार के सामाजिक कार्यक्रम होते हैं, कैसा सामाजिक वातावरण है, आदि कारक भी बच्चे के सामाजिक विकास को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं। विद्यालय में शिक्षक और बच्चों के मित्र भी बच्चे के सामाजिक विकास में योगदान देते हैं। विद्यालय में बच्चे को अपनी आयु के अनेक बच्चों के साथ बैठने और सीखने का अवसर ही नहीं मिलता है बल्कि उसे बड़े बच्चों के सामाजिक अनुभव सुनने और सामाजिक व्यवहार को देखने का अवसर भी मिलता है। इन अवसरों से उसकी सामाजिक सूझ, सामाजिक प्रत्यक्षीकरण बढ़ता है। फलस्वरूप वह समाज के विभिन्न मूल्यों से सम्बन्धित व्यवहार का अधिगम करता है। विद्यालय के अनेक कार्यक्रमों में भाग लेकर भी वह अनेक सामाजिक व्यवहार प्रतिमानों को सीखता है। विद्यालय में से वह सहयोग, मित्रता, उत्तरदायित्व और आत्मनिर्भरता आदि सीखता है।

(4) **मनोरंजन** ;त्मबतमंजपवदद्ध– बच्चे को मनोरंजन की जितनी ही अधिक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं उतना ही अधिक वह घूमने–फिरने, खेल–तमाशों और मित्रों में व्यस्त रहता है। इस प्रकार की सुविधाएँ अधिक प्राप्त होने पर बच्चे का स्वभाव हँसमुख प्रकार का हो जाता है। अपने इस स्वभाव के कारण उसे सामाजिक परिस्थितियों में सफल समायोजन करने में सहायता मिलती है। फलस्वरूप उसका सामाजिक विकास शीघ्र होता है। मनोरंजन के साधनों और अवसरों की

बहुलता में बच्चे में समाज विरोधी व्यवहार के उत्पन्न होने की भी सम्भावना कम होती है। मनोरंजन की सुविधाओं के फलस्वरूप उसमें सामाजिक विकास सामान्य ढंग से होता है बल्कि उनका सामाजिक विकास सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुरूप होता है।

(5) व्यक्तित्व ;च्मतेवदंसपजलद्ध– बच्चों का व्यक्तित्व भी उनमें सामाजिक विकास को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। यह देखा गया है कि जिनमें अनुपयुक्तता तथा हीनता की भावनाएँ होती हैं, उनमें आत्मविश्वास की कमी होती है। इस प्रकार के बच्चों का विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन उपयुक्त नहीं होता है। इस प्रकार के बच्चों का सामाजिक विकास भी अनुपयुक्त होता है।

(6) संवर्द्धन अभिप्रेरक ;।ंपिसपंजपवद डवजपअमद्ध– यह जिन व्यक्तियों में अधिक होता है, उनका सामाजिक विकास सामान्य ढंग से ही नहीं होता है बल्कि तीव्र गति से भी होता है। मित्र–मण्डली, परिवार और पड़ोस के बच्चों में समय व्यतीत करने वाले बच्चों में संवर्द्धन अभिप्रेरणा अधिक मात्रा में पायी जाती है। शैचटर (1959) ने इस दिशा में अपने अध्ययनों के आधार पर यह स्थिर किया कि चिन्ता से संवर्द्धन अभिप्रेरणा की वृद्धि होती है और संवर्द्धन अभिप्रेरणा की अधिकता से बच्चों के सामाजिक विकास की दर बढ़ जाती है।

(7) संवेगात्मक विकास ;म्उवजपवदंस क्मअमसवचउमदजद्ध – सामाजिक विकास की दिशा में हुए अध्ययनों में यह देखा गया है कि जो बालक विनोदप्रिय और हँसमुख होते हैं, उनके दोस्त और साथी समूहों की संख्या अधिक होती है। इस प्रकार के बच्चों में सामाजिक विकास भी अन्य प्रकार के बच्चों की अपेक्षा अधिक मात्रा में पाया जाता है। इस दिशा में हुए अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि जो बच्चे चिड़चिड़े होते हैं या क्रोधी स्वभाव के होते हैं उनके मित्रों और साथी समूहों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है, उनका सामाजिक विकास भी अपेक्षाकृत कम होता है।

(8) हीनता की भावना ;प्दमितपवतपजल ब्वउचसमगद्ध – यह देखा गया है कि जिन बच्चों में हीनता की भावना अधिक मात्रा में पायी जाती है उनमें सामाजिक विकास कम गति से होता है। ये बच्चे दूसरे बच्चों से मिलने–जुलने में कटे–कटे से रहते हैं। अपनी हीनता की भावना के कारण उनमें आत्मविश्वास भी कम हो जाता है जिससे उन्हें अपना सामाजिक दायरा बनाने में कठिनाई होती है।

(9) साथी समूह ;च्ममत ळतवनचद्ध – एक बच्चे की मित्र–मण्डली जितनी ही बड़ी होती है उसके साथी समूहों की संख्या उतनी ही अधिक होती है। उसके सामाजिक मूल्यों और सामाजिक प्रतिमानों को सीखने की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है। फलस्वरूप इन बच्चों का सामाजिक विकास अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में होता है। उसके इन साथी समूहों में बालक और बालिकाएँ दोनों ही होते हैं। इन साथी समूह के सदस्यों का सामाजिक विकास जिस प्रकार का होता है, बच्चा भी अनुकरण के द्वारा अपने साथी समूह के सदस्यों के सामाजिक व्यवहार प्रतिमानों को सीखता है।

- **विकास को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक कारक**

;ब्नसजनतंस थ्ंबजवते प्दसिनमदबपदह जीम क्मअमसवचउमदजद्ध

समाज में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका विशेष महत्त्व रखती है। संस्कृति व समाज में गहरा सम्बन्ध है। संस्कृति के किसी तत्त्व में किसी प्रकार का परिवर्तन होता है तो उसका प्रभाव समाज पर निश्चित रूप से पड़ता है। फलस्वरूप समाज में भी परिवर्तन आता है।

सांस्कृतिक कारक किस प्रकार संवेगात्मक विकास को प्रभावित करते हैं, इसकी विवेचना निम्नवत है–

(1) सांस्कृतिक विलम्बना ;ब्नसजनतंस स्ंहद्ध – सांस्कृतिक कारक की भूमिका को स्पष्ट करने में ऑगबर्न ;व्हइनतदद्ध की 'सांस्कृतिक विलम्बना' की अवधारणा महत्त्वपूर्ण है। ऑगबर्न ने संस्कृति के दो रूपों की चर्चा की–भौतिक संस्कृति और अभौतिक संस्कृति। भौतिक संस्कृति के

अन्तर्गत सभी भौतिक एवं मूर्त पदार्थ आते हैं, जैसे – मशीन, कपड़ा, कलम आदि। अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत अमूर्त वस्तुएँ आती हैं, जैसे– विचार, पसन्द, नैतिकता आदि। ऑगबर्न का कहना है कि आज के युग में रोज नये–नये आविष्कार होते हैं, समाज में निरन्तर विकास हो रहा है। उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हुई, यन्त्रचालित गाड़ियाँ आयीं, सड़कों का निर्माण बढ़ा आदि। परन्तु इस अनुपात में मानव के विचार, पसन्द, नैतिकता आदि में परिवर्तन नहीं आया। इस प्रकार भौतिक संस्कृति की तुलना में अभौतिक संस्कृति पीछे रह जाती है। इसे ही सांस्कृतिक विलम्बना कहा गया। ऑगबर्न का ऐसा मानना है कि किसी समाज में भौतिक संस्कृति भी अभौतिक संस्कृति के पीछे रह सकती है। इसे भी सांस्कृतिक विलम्बना कहा जायेगा। यह विलम्बना की स्थिति हमेशा के लिए नहीं रहती। ऐसा समय आता है जब दोनों संस्कृतियों में अनुकूलन के लिए परिवर्तन की प्रक्रिया को लागू करना होता है। इस क्रम में संस्कृति के दोनों रूपों में परिवर्तन होते है। इससे समाज की संरचना परिवर्तित होती है और बच्चों के व्यवहार एवं संवेगों में परिवर्तन आता है।

(2) भौतिक संस्कृति में असन्तुलन ;क्पेमुपइतपनउ प्देपकम डंजमतपंस ब्नसजनतमद्ध – मैकाइवर की 'भौतिक संस्कृति में असन्तुलन' की अवधारणा सामाजिक परिवर्तन में सांस्कृतिक कारक के महत्त्व को दर्शाता है। मैकाइवर के अनुसार भौतिक संस्कृति के विभिन्न तत्त्वों के बीच भी असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जो सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करती है। उदाहरणस्वरूप –परिवहन के साधनों में जितनी अधिक वृद्धि हुई है उस अनुपात में सड़कों का विकास नहीं हुआ। जिस तरह जंगल की लकड़ी का उपयोग किया जाता है उस अनुपात में उसकी देखरेख नहीं होती। इसे ही भौतिक असंतुलन कहेंगे। यह असन्तुलन समाज में अनेक को जन्म देता है। समस्याओं को जन्म देता है। फिर इन समस्याओं के समाधान के लिए अनेक परिवर्तनों के कार्यक्रम को लागू करना होता है। इस प्रकार भौतिक असन्तुलन समाज में परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न करता है।

(3) सांस्कृतिक परिवर्तन ;ब्नसजनतंस बिंदहमद्ध – सोरोकिन ैवतवापदद्ध का 'सांस्कृतिक परिवर्तन का चक्रीय सिद्धान्त' सामाजिक परिवर्तन में सांस्कृतिक कारक के महत्त्व को दर्शाता है। सोरोकिन के अनुसार संस्कृति के तीन रूप होते हैं – ;पद्ध विचारात्मक संस्कृति ;प्कमंजपवदंस ब्नसजनतमद्धए ;पपद्ध आदर्शात्मक संस्कृति ;प्कमंसपेजपब ब्नसजनतमद्धए और ;पपपद्ध इन्द्रियपरक संस्कृति ैमदेंजम ब्नसजनतमद्ध । विचारात्मक संस्कृति अध्यात्मवाद और मानवीय मूल्यों से सम्बन्धित है। इन्द्रियपरक संस्कृति भौतिक मूल्यों से सम्बन्धित है। आदर्शात्मक संस्कृति दोनों की विशेषताओं से सम्बन्धित है। किसी भी समाज में संस्कृति का कोई रूप स्थायी नहीं होता। विचारात्मक संस्कृति के युग में अध्यात्मिक और मानवीय मूल्यों पर सामाजिक संरचना आधारित होती है। परन्तु अध्यात्मिक तथा मानवतावाद के अनुभव के बाद मानव इससे दूर जाने लगता है। तब वह आदर्शात्मक सांस्कृतिक संरचना वाले समाज में पहुँचता है। इसके बाद मानव इन्द्रियपरक संस्कृति की ओर उन्मुख होता है। सोरोकिन का कहना है कि संस्कृतियों में यह परिवर्तन चक्र के समान होते रहते हैं। विचारात्मक से आदर्शात्मक और आदर्शात्मक से इन्द्रियपरक। फिर इन्द्रियपरक से आदर्शात्मक और आदर्शात्मक से विचारात्मक। इस प्रकार जिस युग में संस्कृति का जो रूप होगा वहाँ की सामाजिक संरचना बदलेगी। इस प्रकार समाज और बच्चों में परिवर्तन का कारण संस्कृति है।

(4) धर्म और धार्मिक विश्वास ;त्मसपहपवद ंदक त्मसपहपवने ठमसपमद्धि – सांस्कृतिक कारक का एक तत्त्व 'धर्म एवं धार्मिक विश्वास' है जो समाज में परिवर्तन लाता है। मैक्स वेबर ;डंग ॅमइमतद्ध के अनुसार, धर्म में परिश्रम द्वारा धन संग्रह करने व धन से लाभ की अनुमति है, फलस्वरूप जो लोग एवं समाज इस धर्म से जुड़े हैं, वे आर्थिक रूप में आगे हैं, जैसे– इंग्लैण्ड एवं जर्मनी। जबकि कैथोलिक लोग आर्थिक विकास में पीछे रह गये, जैसे – यूरोप।

इस प्रकार वेबर का मानना है कि धर्म एवं धार्मिक विश्वास भौतिकता को प्रभावित करते हैं एवं सामाजिक परिवर्तन में सहायक होते हैं।

(5) सांस्कृतिक संघर्ष ;ब्नसजनतंस ब्सौद्ध – जब दो भिन्न संस्कृतियों का आमना–सामना होता है तब सांस्कृतिक संघर्ष उत्पन्न होता है। अंग्रेजी के भारत में आने के बाद यह स्थिति बनी। लेकिन कालक्रम में नई पीढ़ी अंग्रेजी संस्कृति से प्रभावित होती गयी। क्रमशः सांस्कृतिक संघर्ष कम होते गये तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान प्रारम्भ हुआ। फलस्वरूप भारतीय सामाजिक संरचना में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। हमने औपचारिक शिक्षा यानि स्कूल/कॉलेज की शिक्षा प्रणाली को अपनाया, उसकी लोकतान्त्रिक प्रणाली को ग्रहण किया एवं वैज्ञानिक विकास नीति को स्वीकारा। फलस्वरूप समाज में आमूल परिवर्तन आया।

(6) सांस्कृतिक आन्दोलन ;ब्नसजनतंस डवअमउमदजद्ध – सांस्कृतिक आन्दोलन का भी सामाजिक परिवर्तन से गहरा सम्बन्ध रहा। उन्नीसवीं शताब्दी में जो सुधारवादी आन्दोलन राजा राम मोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द
सरस्वती और स्वामी विवेकानन्द आदि के द्वारा चलाये गये थे, वे सभी सांस्कृतिक आन्दोलन ही थे। इस आन्दोलन के कारण भारत में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। छुआछुत, सती प्रथा, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा, बाल–विवाह, अन्धविश्वास आदि से सम्बन्धित धारणाओं में परिवर्तन आया।

(7) सांस्कृतिक सम्पर्क ;ब्नसजनतंस ब्वदजंबजद्ध – सांस्कृतिक सम्पर्क एवं सामाजिक परिवर्तन में गहरा सम्बन्ध है। जब दो भिन्न संस्कृतियाँ एक–दूसरे के सम्पर्क में आती हैं, तो उसे ही सांस्कृतिक सम्पर्क कहा जाता है। इस सम्पर्क में एक सांस्कृतिक समूह दूसरी सांस्कृतिक के बहुत–से तत्त्वों को ग्रहण करता है। इससे उसका सामाजिक जीवन परिवर्तित होता है। उदाहरणस्वरूप – हिन्दू और मुस्लिम के सम्पर्क से दोनों ने एक–दूसरे के सांस्कृतिक तत्त्वों को ग्रहण किया, जिससे दोनों समूहों के सामाजिक जीवन में बदलाव आया।

इस प्रकार सामाजिक और सांस्कृतिक विकास बच्चों के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करते है। बच्चा जितना अधिक सामाजिक और सुसंस्कृत होगा संवेगात्मक रूप से उतना ही परिपक्व और सहनशील बनेगा।

2.9 बच्चों के संवेगों को समझना : ;न्दकमतेजंदकपदह बेपसकतमदशे म्उवजपवदेद्ध

बच्चों का संवेगात्मक व्यवहार समझना बिल्कुल कठिन है। संसार में बच्चों के चारों और होने वाले अनुभवों के परिणामों से इसे बहुत कुछ समझा जा सकता है। ज्यादातर समय बच्चों के जो व्यवहार अतार्किक दिखाई देते है कुछ समय पश्चात् दूसरे दृष्टिकोण से गहराई से सोचने पर वही व्यवहार तार्किक लगते हैं। एक बच्चा जो एक समय डरा हुआ रहता है, जिसके डरने का कोई कारण नहीं होता, बाद में उसी वस्तु से उस बच्चे की डर समाप्त हो जाती है। एक शिक्षक को समझ कर इन सभी बच्चों के साथ सदैव न्याय करना चाहिए। उनके डर को कम करने का प्रयास करना चाहिए जिससे बच्चों का डर समाप्त हो सके और सदैव के लिए विद्यालय न छोड़ सकें। शिक्षकों को बच्चों की न्याय संगत बातों को समझ कर उनकी अच्छी आदतों एवं व्यवहार का विकास करना चाहिए।

- **शैशवावस्था के संवेगों को समझना–** शैशवावस्था में जन्म के समय शिशु खामोशी की अवस्था में होता है इसलिए इस अवस्था में संवेगों का कोई विशेष रूप समझ में नहीं आता है। क्रोध का प्रदर्शन शिशु तब करता है जब उसकी प्रिय वस्तु को उससे छीन लिया जाता है या उसकी शारीरिक गतिविधियों में अवरोध उत्पन्न किया जाता है। क्रोध की अभिव्यक्ति शिशु रोकर और हाथ–पैर फेंककर करता है। जैसे यदि माँ पेट भरने से

पहले स्तनपान से हटा दे या सोते से बच्चे को कोई जगा दे तो उन परिस्थितियों में शिशु क्रोध का प्रदर्शन करता है।

तीव्र ध्वनियों और अकेलेपन का अहसास शिशु में भय संवेग की उत्पत्ति करता है। भय का प्रदर्शन बच्चा रोकर, चौंककर, हाथ–पैर पटककर और साँस रोककर करता है। प्रेम व स्नेहपूर्ण व्यवहार में शिशु में प्रेम संवेग की उत्पत्ति होती है। जब शिशु को सताया जाता है, गुदगुदाया जाता है या थपथपाया जाता है तो वह प्रेम का प्रदर्शन करता है।

इस प्रकार से माँ शिशु के रूदन से ही उसके क्रोध, भय, प्रेम, भूख और बिस्तर गीला करने की स्थिति को समझ लेती है।

- **बाल्यावस्था के संवेगों को समझना–** बाल्यावस्था में शैशवावस्था की तुलना में संवेगों की तीव्रता में कुछ कमी आ जाती है क्योंकि अब बच्चा सामाजिक भय और निन्दा के कारण अपने संवेगों पर नियन्त्रण करना सीख जाता है। अब वे अपने संवेगों की अभिव्यक्ति परिस्थिति के अनुसार करते हैं परन्तु इस समय भी उनके संवेगों में प्रौढ़ों के समान स्थायित्व नहीं होता है। बाल्यावस्था में प्रत्येक बालक की संवेगात्मक अभिव्यक्ति का स्वरूप अलग–अलग होता है।

भय की दशा में बच्चे रोते हैं, चीखते हैं, काँपते हैं, बड़े बच्चों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, श्वास गति मंद हो जाती है, हृदय की धड़कन तथा रक्तचाप में वृद्धि हो जाती है। कुछ बच्चे भय की दशा में होठ को दाँत से दबा लेते हैं, मुट्ठियों को कसकर बन्द कर लेते हैं, चेहरा पीला पड़ जाता है, छोटे बच्चे माँ से चिपक जाते हैं।

जिज्ञासा बच्चों के मानसिक विकास में सहायक होती है। तीव्र बुद्धि बच्चा सामान्य बुद्धि बच्चे की तुलना अधिक जिज्ञासु होते है। स्नेह की शारीरिक अभिव्यक्ति बच्चा अपने स्नेही, स्वजन तथा वस्तु को थपथपाकर, चूमकर तथा मुस्कराकर करता है एक वर्ष का बच्चा अपनी माँ को देखकर उसकी गोद में जाने के लिए बाहें फैला देता है। आनंद की अभिव्यक्ति बच्चा मुस्कराकर, हँसकर, जोर से खिलखिलाकर, ताली बजाकर एवं उछल कूदकर करता है।

इस प्रकार बाल्यावस्था में माता–पिता और शिक्षकों को बच्चों के क्रोध, प्रेम, जिज्ञासा, स्नेह एवं आनंद आदि संवेगों को समझकर उनके सकारात्मक संवेगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जिससे बच्चों का समुचित विकास हो सके।

2.10 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

;थ्बजवते ।ग्मिबजपदह म्उवजपवदंस क्मअमसवचउमदजद्ध

शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में होने वाले संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नांकित हैं–

(1) वंशानुक्रम – व्यक्ति वंशानुक्रम के रूप में अपने माता–पिता तथा अन्य पूर्वजों से अनेक शारीरिक तथा मानसिक गुण व योग्यतायें प्राप्त करता है। इन शारीरिक तथा मानसिक गुणों का व्यक्ति के संवेगात्मक विकास पर प्रभाव पड़ता है।

(2) स्वास्थ्य – व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य का उसके संवेगात्मक व्यवहार से घनिष्ठ संबंध होता है। स्वस्थ व्यक्ति की अपेक्षा बीमार, रोगग्रस्त अथवा शारीरिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों में ऋणात्मक संवेगात्मक अस्थिरता अधिक होती है। स्वास्थ्य ठीक न होने से व्यक्ति चिड़चिड़ा हो जाता है।

(3) थकान – थकान भी व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करती है। थके हुए व्यक्ति में क्रोध, नाराजगी या चिड़चिड़ापन जैसे ऋणात्मक या अवांछनीय संवेग प्रदर्शित करने की अधिक प्रवृत्ति पाई जाती है।

(4) मानसिक योग्यता – व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहार पर उसकी मानसिक क्षमता का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अधिक बुद्धिमान व्यक्तियों का संवेगात्मक क्षेत्र विस्तृत होता है। उच्च मानसिक क्षमता वाले बच्चों में अपने संवेगों को नियंत्रित करने की अधिक क्षमता होती है।

(5) परिवार का वातावरण – परिवार का वातावरण तथा सदस्यों का संवेगात्मक व्यवहार भी बालकों के संवेगात्मक विकास को तीन ढंग से प्रभावित करता है।

प्रथम, यदि परिवार में शांति, सुरक्षा व स्नेह का वातावरण होता है तो बच्चे का संतुलित ढंग से संवेगात्मक विकास होता है। **द्वितीय,** यदि परिवार में कलहपूर्ण, अत्यधिक सामाजिक तथा मौज–मस्ती का वातावरण रहता है तो बच्चों में अत्यधिक संवेग उत्पन्न हो जाते हैं। **तृतीय,** यदि परिवार के सदस्य अत्यधिक संवेदनशील होते हैं तथा प्रचुरता से संवेगात्मक व्यवहार प्रदर्शित करते हैं तो बच्चा भी अत्यधिक संवेदनशील होकर संवेगात्मक व्यवहार करते हैं।

(6) अभिभावकों का दृष्टिकोण– बच्चों के प्रति माता–पिता का दृष्टिकोण तथा व्यवहार भी बच्चों के संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करता है। बच्चों की उपेक्षा करना, घर से अधिक समय बाहर रहना, बच्चों के संबंध में अत्यधिक चिंतित रहना, बच्चों को
अत्यधिक संरक्षण देना, बच्चों को बालसुलभ अनुभवों से वंचित रखना, बच्चों को अत्यधिक लाड़ प्यार करना अथवा बच्चों के प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करना जैसे व्यवहार बच्चों में अवांछनीय संवेगात्मक व्यवहार विकसित कर देते हैं।

(7) सामाजिक–आर्थिक स्थिति – परिवार की सामाजिक–आर्थिक स्थिति भी संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करती है। उच्च सामाजिक–आर्थिक स्थिति वाले बालक–बालिकाओं में निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति वाले बालक–बालिकाओं की तुलना में संवेगात्मक स्थिरता प्रायः अधिक होती है। निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति वाले बालक–बालिकायें, धनी बालकों के उत्तम खानपान, वेशभुषा, सुख–सुविधा व एश्वर्य से युक्त देखते हैं जिसके फलस्वरूप उनमें क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष जैसे ऋणात्मक संवेग अधिक विकसित हो जाते हैं।

(8) सामाजिक स्वीकृति– व्यक्ति के द्वारा किये गये कार्यो के फलस्वरूप प्राप्त सामाजिक स्वीकृति भी उसके संवेगात्मक विकास को प्रभावित करती है। व्यक्ति अपने कार्यों की दूसरों के द्वारा प्रशंसा चाहता है। जब उसकी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती है तब उसमें संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है। वास्तव में यदि व्यक्ति को अपने कार्यो की सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती है तो उसका संवेगात्मक व्यवहार या तो शिथिल हो जाता है अथवा उग्र हो जाता है।

(9) सामाजित–सांस्कृतिक स्थिति – बच्चे का विकास उसके समाज के वातावरण नियम एवं आचार विचार से प्रभावित होता है। विकसित देशों के बच्चों का विकास अर्द्धविकसित एवं गरीब देश के बच्चों की तुलना में तीव्र गति से होती है।

बच्चों को दूसरे साथियों के साथ मिलने–जुलने एवं खेलने का अधिक से अधिक अवसर दिया जाना चाहिए जिससे उसमें सामाजिक भावना का विकास हो सके।

माता–पिता की अशिक्षा तथा घर–परिवार की विपन्नता बच्चे के समुचित 'संवेगात्मक विकास' में बाधक होती है। अनपढ़, रूढ़िवादी एवं कूपमण्ड्क माता–पिता प्रायः बच्चे की आवश्यकताओं, रूचियों, अभिवृत्तियों एवं योग्यताओं को समझने में असमर्थ होते हैं। वे बच्चे को उचित एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार भी प्रदान नहीं कर पाते हैं। इससे बच्चे अपने आप को उपेक्षित महसूस करते है।

(10) विद्यालय – विद्यालय का बच्चों के संवेगात्मक विकास पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। बच्चा विभिन्न क्रियाओं के द्वारा अपने संवेगों की अभिव्यक्ति करता है।यदि विद्यालय का वातावरण, पाठ्यक्रम, कार्यक्रम, शिक्षक वृन्द इत्यादि बच्चों के संवेगों के अनुकूल होते हैं तो

उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है तथा उनका स्वस्थ संवेगात्मक विकास होता है। इसके विपरित विद्यालयी वातावरण से तालमेल न होने पर, परीक्षा में असफल हो जाने पर, अध्यापकों के अत्यधिक उग्र व्यवहार आदि के कारण बच्चों में अवांछित संवेग जैसे भय, क्रोध, चिड़चिड़ाहट या घृणा आदि उत्पन्न हो जाती हैं। अध्यापकगण बच्चों के समक्ष अच्छे तथा बुरे उदाहरण प्रस्तुत करके उनकों साहसी या डरपोक, क्रोधी या सहनशील, शांत या कलहप्रिय बना सकते हैं। अच्छी आदतों के निर्माण तथा अच्छे आदर्शों का अनुसरण करने की इच्छा संवेगों को नियंत्रित करने की क्षमता प्रदान करती है।

मानव जीवन में संवेगों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति के व्यवहार का संबंध संवेगों से होता है तथा शिक्षा का संबंध व्यवहार के परिशोधन से होता है। इसलिये बच्चों के संवेगात्मक व्यवहार का अध्ययन करना शैक्षिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है।

2.11 स्वस्थ्य संवेगात्मक विकास में अभिभावक और अध्यापक की भूमिका

;त्वसम वि चिंतमदजे ंदक ज्मंबीमते पद भ्मंसजील म्उवजपवदंस क्मअमसवचउमदजद्ध

माता–पिता तथा अध्यापकों को बच्चों के संवेगात्मक व्यवहार का अध्ययन करके उनका उचित मार्गदर्शन करना चाहिए। शिक्षा के द्वारा अवांछित संवेगों को नियंत्रित करने तथा वांछित संवेगों को प्रोत्साहित करने के प्रयास किये जाने चाहिए। बच्चों के वातावरण को इस प्रकार से नियंत्रित करना चाहिए कि एक ओर जहाँ उनमें अवांछित संवेगों का उदय न हो सके, वहीं दूसरी ओर उनमें वांछित संवेगों का संचार हो सके। शोधन ैनइसपउंजपवदद्धए अध्यवसाय तथा रेचन के द्वारा संवेगों को नियंत्रित किया जा सकता है।

- शोधन में अवांछित संवेगों को परिमार्जित करके उन्हें अच्छी दिशा दी जा सकती है। जैसे क्रोध की वृत्ति को शत्रुओं की ओर या काम प्रवृत्ति को साहित्य की ओर परिवर्तित किया जा सकता है।
- अध्यवसाय में रत रहना, संवेगों को वशीभूत करने का एक अच्छा उपाय है।
- रेचन का तात्पर्य है कि संवेगों को आने से रोका न जाये वरन् संवेगों को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त अवसर दिए जाएँ।

इसके अतिरिक्त अभिभावकों और अध्यापकों द्वारा अपना उत्तरदायित्व कैसे निभाया जाए, इसकी चर्चा निम्नलिखित बिंदुओं में की जा रही है–

(1) संवेगात्मक विकास के लिए स्वास्थ्य और शारीरिक विकास पर पूरा–पूरा ध्यान देने की आवष्यकता है। स्वस्थ और निरोग कैसे रहा जाए, इस बात का बच्चों को भलीं–भांति ज्ञान कराया जाना चाहिए। माता–पिता और अधिकारियों के सहयोग से बच्चों के साथ सम्पर्क स्थापित कर उन्हें उनके बच्चों की शारीरिक कमजोरियों, न्यूनताओं, बीमारियों आदि से अवगत कराना चाहिए तथा उनके निराकरण के लिए घर, विद्यालय और चिकित्सालयों द्वारा उचित प्रबन्धन की व्यवस्था होनी चाहिए।

(2) बच्चों के संवेगात्मक विकास पर पारिवारिक वातावरण भी बहुत प्रभाव डालता है। अतः अध्यापकों को उन्हें अनुकूल पारिवारिक वातावरण प्रदान कराने का पूरा–पूरा प्रयत्न करना चाहिए। बच्चों के अधिक निकट आकर अध्यापकों को उनके संवेगात्मक व्यवहार को उनके पारिवारिक वातावरण के सन्दर्भ में समझने का प्रयत्न करना चाहिए तथा इसी को ध्यान में रखते हुए उनके माता–पिता तथा अभिभावक को उनके बच्चों के कल्याण के लिए उचित परामर्ष देने का प्रयत्न करना चाहिए तथा अपने स्वयं के व्यवहार के द्वारा भी उन्हें संवेगात्मक संतुलन बनाने में पूरी सहायता करनी चाहिए।

(3) विद्यालय के परिवेष और क्रिया–कलापों को उचित प्रकार से संगठित कर अध्यापक बच्चों के संवेगात्मक विकास में भरपूर योगदान दे सकते हैं। इसके लिए उन्हें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- बच्चों की संवेगात्मक शक्तियों के उचित प्रकाषन और अभिव्यक्ति के लिए उन्हें पाठेत्तर क्रियाओं तथा रोचक क्रियाओं के माध्यम से उचित अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।
- पाठ्यक्रम और अध्यापन विधियों को यथेष्ट रूप में परिवर्तनषील, प्रगतिषील और बाल केन्द्रित होनी चाहिए।
- बच्चों को अपने अध्यापकों से पर्याप्त स्नेह और सहयोग मिलना चाहिए। प्रत्येक अवस्था में बच्चों के स्वाभिमान का ध्यान रखा जाना चाहिए तथा भूल कर भी उनका अपमान एवं अवज्ञा नहीं की जानी चाहिए। जहां तक हो सके अध्यापकों को बच्चे की सभी प्रकार की संवेगात्मक आवष्यकताओं की पूर्ति के लिए पूरा–पूरा प्रयत्न करना चाहिए।
- बच्चों के संवेगों को संयमित एवं प्रषिक्षित करने के लिए अध्यापक द्वारा उपयुक्त विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसे भी हो बच्चे के संवेगात्मक तनाव को समाप्त करने की चेष्टा की जानी चाहिए तथा उसके अन्दर किसी भी प्रकार की अनावष्यक मानसिक ग्रन्थियों और विकारों को पनपने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए।
- धार्मिक और नैतिक षिक्षा को विद्यालय कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। जहां तक हो सके 'सादा जीवन और उच्च विचार' को बच्चों के जीवन में एक मूल–मंत्र बनाया जाना चाहिए।
- अध्यापक बच्चों के लिए आदर्ष होते हैं। वे उनके हर आचरण का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। अतः अध्यापक को स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत कर बच्चों का संवेगात्मक रूप से अधिक संतुलित और संयमित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।
- बच्चों को संतुलित सामाजिक विकास की ओर भी पूरा–पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्हें अपनी मित्र–मण्डली, तथा सामाजिक परिवेष में उचित स्थान मिलना चाहिए।
- अध्यापकों द्वारा बच्चों को संवेगात्मक व्यवहार सामान्य है या असामान्य, इस बात का अच्छी तरह से अध्ययन किया जाना चाहिए। अगर उन्हें उसमें कुछ असामान्यता का आभास हो तो समय से पहले योग्य व्यक्तियों की सहायता ले कर उसके निराकरण और रोकथाम के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए।
- सीखने की प्रक्रिया में संवेगों की रचनात्मक भूमिका की ओर भी अध्यापक को ध्यान रखना आवष्यक है। संतुलित और संयमित संवेगात्मक व्यवहार और भावनाएं न केवल शारीरिक विकास के लिए एक अमूल्य टॉनिक का कार्य करती हैं बल्कि ज्ञान और कौषल अर्जित करने के लिए भी उचित वातावरण का निमार्ण करती हैं। अतः अध्यापकों को विद्यार्थियों को षिक्षा ग्रहण कराने में संवेगात्मक रूप से सक्रिय साझेदार बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। निःसंदेह अध्यापक तथा अभिभावकगण बालकों के संवेगात्मक विकास में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं। पाठ्यसहगामी क्रियाओं जैसे नाटक, खेल–कूद, स्काउटिंग, रेडक्रास, भ्रमण आदि के माध्यम से भी छात्रों का उचित ढंग से संवेगात्मक विकास किया जा सकता है।

2.12 इकाई सारांश ;न्दपज ैनउउंतलद्ध

संवेगात्मक विकास, व्यक्ति के विकास एवं उन्नति में अपना एक विषेष महत्त्व रखता है। संवेगों के सही विकास की कमी से व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विघटित हो जाता है। संवेग जीव की शक्ति को उत्तेजित करते हैं और विषम परिस्थितियों में उसकी सहायता करते हैं।

संवेग को अंग्रेजी में 'इमोषन' कहते हैं। इमोषन में 'इ' का अर्थ अंदर से तथा 'मोषन' का अर्थ गति है। अतः 'इमोषन' शब्द का अर्थ है आन्तरिक भावों को बाहर की ओर गति देना। वुडवर्थ के अनुसार– "संवेग व्यक्ति की उत्तेजित दषा है।" मैकडूगल के अनुसार "संवेग मूल प्रवृत्तियों का हृदय है।"

संवेगों की प्रकृति भावात्मक होती है जो व्यक्ति को क्षणिक उत्तेजना प्रदान करते हैं। संवेगों को व्यक्ति की मुख–मुद्रा, वाणी तथा अन्य व्यवहार के अवलोकन से पहचाना जा सकता है। संवेगों की विषेषताओं में संवेगों की व्यापकता, शारीरिक परिवर्तन, विचार प्रक्रिया का लोप हो जाना, व्यक्तिगतता, संवेगों की अस्थिरता, संवेगों का स्थानान्तरण, मूल प्रवित्तयों में संबंध, संवेगों की क्रियात्मक प्रवृत्ति एवं सुख–दुख का भाव निहित होना है।

संवेग अनेक प्रकार के होते हैं। मैकडूगल ने कुल 14 संवेगों का उल्लेख किया है, जिनमें से प्रत्येक संवेग एक–एक मूल प्रवत्ति से संबंधित होता है। भारतीय विद्वान मुख्य दो संवेग स्वीकार करते हैं– राग तथा द्वेष। जिन संवेगों से व्यक्ति को सुख मिलता है उन्हें सुखद संवेग अथवा धनात्मक संवेग कहते हैं– जैसे प्रेम, स्नेह, मित्रता आदि। जिन संवेगों से व्यक्ति को दुख मिलता है उन्हें दुखद संवेग या ऋणात्मक संवेग कहते हैं जैसे– भय, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या आदि। संवेगो के विकास का अध्ययन व्यक्ति की सामान्य स्थितियों शैषवावस्था, बाल्यावस्था, किषोरावस्था और प्रौढ़ावस्था के अनुसार किया जाता है। 'वाटसन' ने नवजात षिषु में मुख्य रूप से भय, क्रोध और प्रेम तीन मूल संवेग माने हैं। शैषवावस्था में बच्चों के व्यवहार के विकास की सामान्य दिषा अनिष्चित और अस्पष्ट से विषिष्ट की ओर जाती है। शैषवावस्था में मुख्य रूप से षिक्षा में परिवार का असर, षिक्षकों एवं अभिभावकों के योगदान का प्रभाव और पास–पड़ोस का असर पड़ता है।

बाल्यावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति अधिक विषिष्ट होती जाती है। बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास पर परिवार से अधिक मित्रों और साथियों का प्रभाव पड़ता है। बाल्यावस्था में बच्चे स्कूल जाने लगते हैं अतः उनके संवेगात्मक विकास में षिक्षकों का व्यवहार, स्कूल तथा कक्षा के वातावरण का भी असर पड़ता है। परिवार, विद्यालय और आस–पास के स्वस्थ्य वातावरण में षिक्षक, अभिभावक एवं समाज के व्यक्तियों द्वारा अच्छे आदर्ष उपस्थित होने पर बच्चों में स्वतः वांछनीय संवेगों का विकास होता है। विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बच्चों का संवेगात्मक विकास अलग–अलग होता है। बच्चों के संवेगों को समझकर उनमें सकारात्मक संवेगों का समुचित विकास किया जा सकता है। शैषवावस्था, बाल्यावस्था में होने वाले संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों मे वंषानुक्रम, स्वास्थ्य, थकान, मानसिक योग्यता, परिवार का वातावरण, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, विद्यालय आदि प्रमुख हैं।

अभिभावक तथा अध्यापकों को बच्चों के संवेगात्मक व्यवहार का अध्ययन करके उनका समुचित मार्गदर्षन करना चाहिए। षिक्षा के द्वारा अवांछित संवेगों को नियंत्रित करने तथा वांछित संवेगों को प्रोत्साहित करने के प्रयास किये जाने चाहिए। शोधन, अध्यवसाय तथा रेचन के द्वारा संवेगों को नियंत्रित किया जा सकता है। संवेगात्मक विकास के लिए स्वास्थ्य और शारीरिक विकास पर पूर्ण ध्यान देने की आवष्यकता है।

2.13 अपनी प्रगति की जाँच करें ;बैमबा लवनत च्तवहतमेद्ध

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(अ) संवेगों की प्रकृति होती हैः

;पद्ध भावात्मक ;पपद्ध क्रियात्मक
;पपपद्ध रागात्मक ;पअद्धद्वेषात्मक

(ब) मैकडूगल के अनुसार पलायन ;भ्मबंचमद्ध मूल प्रवृत्ति निम्नलिखित संवेग से संबंधित है–

;पद्ध भय ;थ्मंतद्ध ;पपद्ध क्रोध ; ।दहमतद्ध
;पपपद्ध घृणा ;क्पेहनेजद्ध ;पअद्ध करूणा ;क्पेजतमेद्ध

(स) भारतीय मनोवैज्ञानिक किन दो मुख्य संवेगों को स्वीकार करते हैं?

;पद्ध भय तथा कायरता ;पपद्ध राग तथा द्वेष
;पपपद्ध घृणा तथा क्रोध ;पअद्ध ईर्ष्या तथा जलन

(द) वाटसन ने नवजात शिशु में मुख्य रूप से कौन से तीन मूल संवेग माने हैं?

;पद्ध भय, हर्ष और स्नेह ;पपद्ध भूख, क्रोध और कष्ट
;पपपद्ध भय, क्रोध और प्रेम ;पअद्ध भूख, भय और क्रोध

लघु उत्तरीय एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- संवेगों का अर्थ समझाइयें।
- संवेगों की विभिन्न परिभाषाएँ लिखिए।
- संवेगों की प्रकृति पर प्रकाश डालिए।
- संवेगों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- मैकडूगल के अनुसार संवेगों के प्रकार की विवेचना कीजिए।
- भारतीय चिंतन में संवेग कितने प्रकार के बताए गए हैं? समझाइये।
- शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास कैसे होता है? समझाइये।
- शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास हेतु शिक्षण का स्वरूप लिखिए।
- बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास की विवेचना कीजिए।
- बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ एवं शिक्षा के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
- विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में संवेगात्मक विकास की विवेचना कीजिए।

2.14 सत्रगत / दत कार्य / गतिविधि ;ेपहदउमदजपबजपअपजलद्ध

- अपने पड़ोस के कम से कम 5 शिशुओं के संवेगों का अध्ययन करिए और उनके संवेगों की सूची बनाकर अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
- अपने विद्यालय में अध्ययनरत कक्षा एक एवं दो के किन्ही 5 छात्रों के संवेगों का अध्ययन करिए और अपने प्रयास से उनके सकारात्मक संवेगों के विकास की व्याख्या कीजिए।

2.15 संदर्भ ;त्मिमितमदबमेद्ध

- गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता, अलका (2009). **उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान**, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद –2:11, युनिवर्सिटी रोड।
- पाठक, पी.डी. (2013). **शिक्षा मनोविज्ञान**, आगरा–2: श्री विनोद पुस्तक मन्दिर।
- भटनागर, सुरेश (2010). **शिक्षा मनोविज्ञान**, मेरठ : आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेंट इन्टर कॉलेज, मेरठ।

- मंगल, एस. के. एवं मंगल, उमा (2014). **विद्यार्थी अधिगम एवं संज्ञान**, लुधियाना : ठंडन पब्लिकेशन।
- मंगल, एस. के. (2010). **शिक्षा मनोविज्ञान**, नई दिल्ली : पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।
- यादव, सियाराम (2010). **अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद–2:11, युनिवर्सिटी रोड।
- यादव, डी.एस. (2009). **शिक्षा मनोविज्ञान**, दिल्ली : प्रेरणा प्रकाशन, सी–13, रोज अर्पाटमेंट, सेक्टर–14 एक्सेंटशन, रोहिणी।

इकाई 4 : स्वतंत्रता के बाद शैक्षिक विकास : मुद्दे

;म्कनबंजपवदंस क्मअमसवचउमदज ौपदबम प्दकमचमदकमदबम रू ेनमेद्ध

डॉ. आर. एस. पाण्डेय

इकाई संरचना

4.1 परिचय ;प्दजतवकनबजपवदद्ध
4.2 उद्देश्य ;व्ह्रमबजपअमेद्ध
4.3 परिमात्रात्मक विस्तारण विस्तार : विस्तार और इसकी सामाजिक प्रकृति
फनंदजपजंजपअम म्गचंदेपवद रू म्गजमदज ंदक पजे ौवबपंस छंजनतम
4.4 विद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता : स्थिति
फनंसपजल पद ौबीववस म्कनबंजपवद रू ौजंजने
4.5 शैक्षिक अवसरों की समानता : सफलता और असफलता
मुनंसपजल व म्कनबंजपवद वचचवतजनदपजपमे रू ौनबबमे ंदक थ्पसनतमे
4.6 इकाई सारांश ;न्दपज ौनउउंतलद्ध
4.7 अपनी प्रगति की जाँच करें ;बैमबा लवनत च्तवहतमेद्ध
4.8 नियत कार्य / गतिविधियाँ ;ोपहदउमदज ६ ।बजपअपजलद्ध
4.9 चर्चा / स्पष्टीकरण के बिन्दु
4.10 सन्दर्भ / अतिरिक्त पठन सामग्री

4.1 परिचय ;प्दजतवकनबजपवदद्ध

पन्द्रह अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के उपरान्त 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू किया गया। भारतीय संविधान में भारत को गणतंत्र घोषित किया गया। भारतीय संविधान में लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था में शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया तथा शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्वों को केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विभाजित किया गया जिससे केन्द्र तथा राज्य अपने–अपने स्तर पर शिक्षा का नियोजन करके शैक्षिक विकास को सुनिश्चित कर सके। स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा के विकास के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में वे सभी उपलब्धियाँ प्राप्त नहीं हो सकी हैं जो स्वतंत्र भारत में अपेक्षित थीं फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय कार्य किये गये हैं। वास्तव में भारतीय शिक्षा के ज्ञात इतिहास में शिक्षा तथा इसकी समस्याओं पर इतना अधिक ध्यान पहले कभी नहीं दिया गया था जितना ध्यान स्वतंत्रता–प्राप्ति के उपरान्त दिया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्त करने के तत्काल बाद भारत के सामने अनेक समस्यायें थीं। इन समस्याओं में से एक शिक्षा प्रणाली के पुनर्गठन करने तथा शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने की समस्या भी थी। सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने, अनपढ़ प्रौढ़ों को साक्षर बनाने, माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार करने, विज्ञान तकनीकी शिक्षा का तेजी से विस्तार करने, लड़कियों, हरिजनों व अल्पसंख्यकों के शैक्षिक विकास को सुनिश्चित करने तथा मातृभाषा, प्रादेशिक भाषा व राष्ट्रभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने जैसी अनेक विकट चुनौतियाँ स्वतंत्र भारत के कर्णधारों के सम्मुख थीं। निःसंदेह स्वतन्त्र भारतीय संविधान के निर्माताओं तथा केन्द्र व राज्यों की सरकारों ने इन चुनौतियों को स्वीकार किया तथा भारतीय शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान करने का भरसक प्रयास किया। संविधान में शिक्षा के सम्बन्ध में

अनेक प्रावधान करके सभी के शैक्षिक अधिकारों को सुनिश्चित किया गया एवं केन्द्र तथा राज्यों के शैक्षिक उत्तरदायित्वों को स्पष्ट कर दिया गया। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के उपरान्त सन् 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, सन् 1952 में डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा सन् 1964 में डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन विभिन्न स्तरों की शिक्षा समस्याओं का अध्ययन करने तथा उनके समाधान प्रस्तुत करने के लिए किया गया। केन्द्र तथा राज्य स्तर पर अनेक शैक्षिक समितियों का भी गठन किया गया। सन् 1968 तथा सन् 1986 में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा सन् 1979 में तैयार की गई ड्राफ्ट शिक्षा नीति भी भारतीय शिक्षा के विकास के कुछ दिलचस्प मोड़ हैं।

प्रस्तुत इकाई में स्वतंत्रता के बाद शैक्षिक विकास के विभिन्न मुद्दों के संबंध में विवरण प्रस्तुत किया गया है।

4.2 उद्देश्य ;व्हरमबजपअमेद्ध

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

1. स्वतंत्रता के बाद शैक्षिक विकास के विभिन्न मुद्दों की समझ सकेंगे।
2. शिक्षा के परिमात्रात्मक विस्तार और इसकी सामाजिक प्रकृति समझ सकेंगे।
3. विद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता की स्थिति समझ सकेंगे।
4. शैक्षिक अवसरों की समानता के बारे में समझ सकेंगे।
5. शैक्षिक अवसरों की असमानता के कारण और उसकी सफलता के उपाय समझ सकेंगे।

4.3 परिमात्रात्मक विस्तारण विस्तार : विस्तार और इसकी सामाजिक प्रकृति

फनंदजपजंजपअम म्गचंदेपवद रू म्गजमदज ंदक पजे ैवबपंस छंजनतम

विद्या

4.4 विद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता : स्थिति

फनंसपजल पद ैबीववस म्कनबंजपवद रू ैजंजने

4.5 शैक्षिक अवसरों की समानता : सफलता और असफलता

मुनंसपजल व िम्कनबंजपवद वचचवतजनदपजपमे रू ैनबबमे ंदक थ्पसनतमे

1. विषय–प्रवेशः– शिक्षा–आयोग के अनुसार, शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य है– अवसर की समता प्रदान करना, जिससे पिछड़े तथा दलित वर्ग और व्यक्ति शिक्षा के द्वारा अपनी स्थिति सुधार सकें। जो भी समाज सामाजिक न्याय को अत्यन्त आदर्श मानता है और साधारण की हालत सुधारने तथा समस्त शिक्षा पाने योग्य व्यक्तियों को शिक्षित करने का उत्सुक है, उसे यह व्यवस्था करनी ही होगी कि जनता के सब वर्गों को अवसर की अधिकाधिक समता प्राप्त होती जाये। एक समतामूलक तथा मानवतामूलक समाज, जिसमें निर्बल का शोषण कम–से–कम हो, बनाने का यही एक सुनिश्चित साधन है।

2. शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थः– शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ हमें समानता के अर्थ को जानने के लिए बाध्य करता है। 'समानता' का तात्पर्य यह नहीं है कि सब हर प्रकार से समान हों। ऐसा असम्भव है। समानता का तात्पर्य अवसर की समानता से है। राज्य की ओर से सबको समान समझा जाय। जाति, रंग, नस्ल, धर्म आदि के कारण किसी के साथ भेदभाव न किया जाये। किसी वर्ग या समुदाय या सम्प्रदाय को विशेष अधकार न दिये जायें। अतः समानता का तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों के अस्तित्व से है जिनके कारण सब व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो सकें और सामाजिक भेदभाव का अन्त हो सके। साथ ही सामाजिक न्याय की स्थापना हो सके। **प्रो0 लास्को** के शब्दों में, "समानता का यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के

साथ एक जैसा व्यवहार किया जाय अथवा सभी को समान वेतन दिया जाय। यदि पत्थर ढोने वाले का वेतन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ या वैज्ञानिक के समान कर दिया गया तो इससे समाज का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा। इसलिए समानता का अर्थ है कि कोई विशेष अधिकार वाला वर्ग न रहे और सबको उन्नति के समान अवसर रहे।"

शैक्षिक अवसरों की समानता की अवधारणा को 'शिक्षा नामक वस्तु के वितरण के रूप में समझा जा सकता है। प्रारम्भिक स्तर पर इस वितरण के सिद्धान्त का अर्थ है कि बिना किसी भेदभाव के एक निश्चित अवधि तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाय। माध्यमिक स्तर पर इसका अभिप्राय है– विभिन्नकृत पाठ्यक्रम की व्यवस्था जिससे व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा रूचियों को सन्तुष्ट किया जा सके। उच्च शिक्षा के स्तर पर इसका अभिप्राय है कि उन समस्त लोगों के लिए शैक्षिक अवसरों की व्यवस्था की जाये जो इस शिक्षा से लाभ उठाने की क्षमता रखते है और उसके बदले में समाज को उपयुक्त योगदान देने में समर्थ हैं।

3. शिक्षा के अवसरों के समकरण की आवश्यकताः– आज शैक्षिक अवसरों के समकरण के लिए विश्व–व्यापी माँग के दो प्रमुख कारण है। प्रथम वैचारिक कारण है। शिक्षा का अधिकार एक सार्वभौमिक मानवीय अधिकार है जिसका उल्लेख मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की धारा 26(1) में की गई है। इस दृष्टि से शिक्षा एक मौलिक अधिकार है। इस कारण व्यक्ति को जाति, रंग, धर्म, प्रजाति आदि के आधार पर इससे वंचित नहीं किया जा सकता है। द्वितीय, अधिकाधिक व्यक्तियों को अधिकाधिक शिक्षा का विचार शिक्षा की इस क्षमता से विकसित हुआ कि शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक एवं आर्थिक सीढ़ी पर अग्रसर करने में समर्थ है अर्थात् अधिक एवं उत्तम शिक्षा अधिक आय तथा उन्नत सामाजिक स्थिति की महत्त्वपूर्ण कुँजी है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा सामान्य मानवीय अधिकारों– आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार जो व्यक्ति की गरिमा तथा उसके व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के लिये अनिवार्य है, कि प्राप्ति का प्रमुख साधन है।

4. भारत में शिक्षा के अवसरों की विषमताएँः– भारत में शिक्षा की विषमताएँ विभिन्न प्रकार की हैं। उनमें से प्रमुख अग्रांकित हैं:

(1) जिन स्थानों पर प्राथमिक, माध्यमिक या कॉलेज की शिक्षा देने वाली संस्थाएँ नहीं हैं, वहाँ के बच्चों को वैसा अवसर नहीं मिल पाता जैसा उन बच्चों को मिल पाता है जिनकी बस्तियों में ये संस्थाएँ उपलब्ध हैं।

(2) इस समय देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक विकासों में भारी असन्तुलन देखने मिलता है– एक राज्य और दूसरे राज्य के शैक्षिक विकासों में बहुत बड़ा अन्तर मौजूद है और एक जिले तथा दूसरे जिले के विकास में और भी बड़ा अन्तर मौजूद है और एक जिले तथा दूसरे जिले के विकास में और भी बड़ा अन्तर देखने को मिलता है।

(3) शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और कारण यह है कि जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गरीब है और बहुत थोड़ा भाग अपेक्षतया धनी। किसी शिक्षा–संस्था के समीप होते हुए भी गरीब परिवारों के बच्चों को वह अवसर नहीं मिलता जो धनी परिवारों के बच्चों को मिल जाता है।

(4) शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और बड़ा दुःसाध्य रूप विद्यालयों तथा कॉलेजों के अपने–अपने भिन्न स्तरों के कारण पैदा होता है। जब किसी विश्वविद्यालय या वृत्तिक कॉलेज जैसी संस्था में प्रवेश उन अंकों के आधार पर दिया जाता है जो माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर दी गयी सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त हुए हों और प्रवेश साधारणतया इसी आधार पर होता है, तब देहाती क्षेत्र के साधनहीन ग्रामीण विद्यालय में पढ़े छात्र के लिए यह कसौटी या मापदण्ड एक समान नहीं रहता।

(5) घरेलू पर्यावरणों के भिन्न–भिन्न होने के कारण भी भारी विषमताएँ उत्पन्न होती हैं। देहात के घर या शहरी गन्दी बस्तियों में रहने वाले और अनपढ़ माता–पिता की सन्तान को शिक्षा पाने का वह अवसर नहीं मिलता जो उच्चतर शिक्षा पाये हुए माता–पिता के साथ रहने वाली उनकी सन्तान को मिलता है।

(6) भारतीय परिस्थितियों ने अग्रलिखित दो प्रकार की शैक्षिक विषमताओं को प्रमुख रूप से जन्म दिया हैः

(अ) शिक्षा के सब स्तरों पर तथा क्षेत्रों में लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा में भारी अन्तर।

(ब) उन्नत वर्गों तथा पिछड़े वर्गों–अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों–के बीच शैक्षिक विकास का अन्तर।

5. शैक्षिक अवसरों में विषमता के कारणः– शैक्षिक अवसरों में विषमता अनेक कारणों से उत्पन्न होती है। इनमें से कुछ प्रमुख कारणों का वर्णन आगे किया जा रहा है–

;पद्ध शिक्षा संस्थाओं की अनुपलब्धता **छवद.।अंपसंइपसपजल वि म्कनबंजपवदंस प्देजपजनजपवदरू.** जिन स्थानों पर कोई भी प्राथमिक, माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षासंस्था नहीं है वहाँ के बच्चे शिक्षा प्राप्ति के वे अवसर प्राप्त नहीं कर पाते जो शिक्षा–संस्थाओं से युक्त बस्तियों में रहने वाले बच्चे प्राप्त कर लेते हैं। जब बच्चों के लिए सरलता से तय करने योग्य दूरी पर शिक्षा–संस्था की व्यवस्था नहीं होती है तो बच्चों का शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

यहाँ यह भी इंगित करना उचित ही होगा कि देश के विभिन्न भागों में हो रहे शैक्षिक विकास में पर्याप्त असंतुलन हैं विभिन्न राज्यों यहाँ तक कि एक ही राज्य के विभिन्न जनपदों में हो रहे शैक्षिक विकास में पर्याप्त अंतर स्पष्ट रूप से दुष्टिगोचर होता है।

;पपद्ध निर्धरता **च्वअमतजल रू.** निर्धनता शैक्षिक अवसरों में विषमता का एक महत्वपूर्ण कारक है। हमारे देश की जनसंख्या का अधिसंख्य भाग निर्धनता से त्रस्त है, जबकि एक छोटा भाग साधन सम्पन्न है। निर्धन परिवारों के बच्चों को शिक्षा –प्राप्ति के वे अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते जो समृद्ध परिवारों के बच्चों को हो जाते हैं। शिक्षा–शुल्क, पठन–पाठन सामग्री, विद्यालयी गणवेश, पौष्टिक आहार आदि की कमी के कारण निर्धन बालक या तो विद्यालय पहुँच ही नहीं पाते हैं बौर यदि पहुंच भी जाते है तो शिक्षा बिना पूरी किये ही विद्यालय छोड़ देते है। कुछ शिक्षा–स्तर पर तो स्थिति और भी अधिक खराब हो जाती है।

;पपपद्ध शिक्षा की गुणवत्ता में अंतर **क्पांमितमदबम पद फनंसपजल वि म्कनबंजपवद रू.** शैक्षिक विषमता के लिए विभिन्न स्कूलों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में विद्यमान अन्तर भी उत्तरदायी हैं जैसे ग्रामीणक्षेत्र में स्थित अल्पसाधन युक्त स्कूल के छात्र को उपलब्ध शिक्षा तथा नगरीय क्षेत्र में स्थित साधन– सम्पन्न विद्यालय के छात्र को उपलब्ध शिक्षा की गुणवत्ता कभी भी समतुल्य नहीं हो सकती । यही कारण है कि जनपरीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर योग्यता की तुलना करना कदापि तर्कसंगत नहीं हो सकता।

;पअद्ध परिवार का वातावरण **थ्ंउपसल म्दअपवतदउमदज रू.** परिवार के वातावरण का अंतर शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में विषमता उत्पन्न करता है। अशिक्षित माता–पिता के बच्चे अथवा ग्रामीण परिवेश में रहने वाले माता–पिता के बच्चे शिक्षा प्राप्ति के वे अवसर नहीं प्राप्त कर पाते हैं जो शिक्षित माता–पिता अथवा शहरी परिवार अथवा समृद्ध परिवार के बच्चे प्राप्त कर लेते हैं। अनुपढ़ माता–पिता के बच्चों को शिक्षा–प्राप्ति के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन/सहयोग नहीं मिल पाता है।

;अद्ध यौन भेद **ैमग क्पांमितमदबम रू.** भारतीय परिवेश में लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा के बीच एक भारी अंतर पाया जाता है। परम्परागत भारतीय समाज में अभी भी लड़कियों की शिक्षा को हेय दृष्टि से देखा जाता है। लड़कियों की शिक्षा के प्रति इस नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण लड़के तथा लड़कियों को शिक्षा–प्राप्ति के समान अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

;अपद्ध सामाजिक स्थिति ैवबपंस ैजंजने रू. समाज के प्रगतिशील तथा पिछड़ेवागें के मध्य शैक्षिक विकास में अन्तर पाया जाता है। अनुसूचित जातियाँ जनजातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग के बालक–बालिकाओं को शिक्षा–प्राप्ति के वे अवसर नहीं मिल पाते हैं जो समाज के अगड़ी जातियों के बच्चों को मिल जाते है।

;अपपद्ध शारीरिक दोष चैलेपबंस क्मिबजेरू. विकलांग तथा विभिन्न प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक कतियों से युक्त बालक–बालिकायें भी शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में समानता नहीं प्राप्त कर पाते हैं। अन्धे, लूले, लँगड़े, बहरे, गूँगे तथा मंदबुद्धि के बच्चों के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था प्रायः नहीं हो पाती है।

शैक्षिक अवसरों में विषमताओं के लिए उत्तरदायी उपरोक्त वर्णित कारणों के अवलोकन से स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली का सर्वाधिक लाभ साधन सम्पन्न, समृद्ध तथा शहरी वर्ग के लोग प्राप्त करते है। निर्धन तथा साधन विहीन ग्रमीण इस प्रणाली का लाभ नहीं उठा पाते हैं। लोकतंत्र की प्रगति हेतु इन वर्गों के बीच शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के प्रयासों को करने की महती आवश्यकता है। जिससे सामाजिक न्याय के सिद्धान्त को बल मिल सके।

6ण् शैक्षिक अवसरों की समानता के उपाय

डमेंनतमे वित मुनंसप्रपदह म्कनबंजपवदंस व्चचवतजनदपजपमे

समानता और न्याय पर आधारित समाजवादी व्यवस्था के निर्माण के लिए सामाजिक पुनर्गठन की आवश्यकता है इसके लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करनी होगी जो सभी को शैक्षिक अवसरों की समानता सुनिश्चित करें। शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के लिए अनेक प्रयास किए गए है परन्तु उनसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली है। आवश्यकता इस बात की है कि शैक्षिक विषमतायें दूर करने वाले कारणों को पहचानने तथा उनके प्रभाव को कम करने के लिए उचित कदम उठाने के प्रयास निरन्तर होते रहें। नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत नवोदय विद्यालय इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए खोले गये है। मुक्त विश्वविद्यालय भी उच्च–शिक्षा के अवसर बढ़ा रहे है। अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्ग तथा लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। ग्रामीण–शहरी असन्तुलन को समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। बालबाड़ी, शिशु परिचर्या केन्द्र आंगनवाड़ी, आश्रम विद्यालय, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र आदि तथा प्रौढ़ शिक्षाकेन्द्र वंचितवर्ग के लिए शिक्षा प्राप्ति में वरदान सिद्ध हो सकते हैं। शैक्षिक समानता लाने के लिए कुछ उपाय निम्नवत हो सकते हैं–

1. यथासम्भव छात्रों के घर के पास शिक्षा संस्थायें स्थापित की जानी चाहिए।
2. छात्रावास सुविधाओं को बढ़ाया जाना चाहिए।
3. छात्रों को यातायात साधन उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
4. निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ अधिक संख्या में दी जानी चाहिए।
5. शैक्षिक विकास की स्पष्ट व समान नीति तैयार की जानी चाहिए।
6. शिक्षण शुल्क पूर्ण रूपेण समाप्त कर देना चाहिए।
7. पुस्तकें, गणवेश, स्टेशनरी तथा स्कूल अल्पाहार निःशुल्क दिया जाना चाहिए।
8. दिवा अध्ययन केन्द्र खोले जाने चाहिए।
9. अभिभावाकें में शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहिए।

यद्यपि जीवन के अन्य आदर्शे की तरह शैक्षिक अवसरों की पूर्ण समानता की प्राप्ति कदाचित असम्भव ही है फिर भी उपरोक्त वर्णित उपाय शिक्षा में समान अवसरों की प्राप्ति की दिशा में कुछ न कुछ उपयोगी आवश्यक सिद्ध होंगे।

4. भारत में शिक्षा के अवसरों की विषमताएँः– भारत

4.6 इकाई सारांश ;न्दपज ैनउउंतलद्ध

4.7 अपनी प्रगति की जाँच करें ;बैमबा लवनत च्तवहतमेद्ध
4.8 नियत कार्य/ गतिविधियाँ ;ेपहदउमदज ६ ।बजपअपजलद्ध
4.9 चर्चा/ स्पष्टीकरण के बिन्दु
4.10 सन्दर्भ/अतिरिक्त पठन सामग्री

खण्ड – 2

इकाई–3 भाषा का विकास

;ंदहनंहम क्मअमसवचउमदजद्ध

इकाई की रूपरेख

3.1 प्रस्तावना ;प्दजतवकनबजपवदद्ध

3.2 उद्देष्य ;व्इरमबजपअमेद्ध

3.3 भाषा एवं विचार का सहसंबंध ;त्मसंजपवदीपच इमजूममद ंदहनंहम ंदक जीवनहीजद्ध

3.4 ग्रहणषील कौषल (पढ़ना एवं सुनना) एवं अभिव्यंजनात्मक कौषल (बोलना एवं लिखना) ख्त्मबमचजपअम ैापससे ;त्मंकपदह ंदक स्पेजमदपदहद्ध ंदक च्तवकनबजपअम ेापससे ै;चमांपदह ंदक ॅतपजपदहद्ध,

3.5 भाषा विकास के चरण ै;जंहमे व िंदहनंहम क्मअमवसवचउमदजद्ध

3.6 भाषा के विकास को प्रभावित करने वाले कारक ;थ्ंबजवते ंमिबजपदह ंदहनंहम क्मअमवसवचउमदजद्ध

3.7 बच्चों की भाषा कौषल का मार्गदर्षन : द्विभाषी एवं बहुभाषी कक्षाओं के विषेष संदर्भ में ;ळनपकपदह बेपसकमतदष ंदहनंहम ैापससे ूपजी ेचमबपंस तममितमदबम जव ठपसपदहनंस ंदक डनसजपसपदहनंस ब्सेंतववउेद्ध

3.8 भाषा एवं सामाजिक –सांस्कृतिक भिन्नता ;ंदहनंहम ंदक ैवबपव.ब्नसजनतंस टंतपंजपवदेद्ध

3.8.1 उच्चारण ; ।बबमदजेद्ध

3.8.2 बहुभाषीय कक्षा के लिए सम्प्रेषण में अन्तर ;क्पमितमदब पद ब्वउउनदपबंजपवद वित ं डनसजपसपदहनंस ब्सेंतववउेद्ध

3.8.3 द्विभाषी एवं बहुभाषी बच्चे ;ठपसपदहनंस ंदक डनसजपसपदहनंस बेपसकतमदद्ध

3.8.4 षिक्षकों के लिए निहितार्थ (क्रियान्वयन) ;प्उचसपबंजपवदे वित ज्मंबीमतष द्ध

3.9 सारांष ै;नउउंतलद्ध

3.10 अपनी प्रगति की जाँच करें ;बैमबा लवनत च्तवहतमेद्ध

3.11 निहित कार्य ;ेापहदउमदजद्ध

3.12 संदर्भ सूची ;त्ममितमदबमेद्ध

3.0 भाषा का विकास (ंदहनंहम क्मअमसवचउमदज)–

3.1 प्रस्तावना ;प्दजतवकनबजपवदद्ध–

भाषा एक विषिष्ट योग्यता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज में अपनेविचारो, सोच, भावनाओ, चिन्तन एवं अनुभवो का आदान–प्रदान करता है। भाषा मानव जाति का सबसे अद्वितीय व्यवहार तथा सबसे सर्वव्यापक व्यवहार है भाषा–षैली से मनुष्य इस अनुपम कला से अपने विचारो को अर्थपूर्ण ढंग से व्यक्त कर सकता है।

हरलॉक(भ्नतसवबा)के अनुसार–"भाषा दूसरों के साथ संवाद स्थापित करने की क्षमता या योग्यता है।"

वेब्सटर ॅमइेजमत) के अनुसार–"भाषा का तात्पर्य भाव या विचार को अभिव्यक्त करने या संचारित करने की मौखिक या भिन्न साधन से है। "

3.2 उद्देष्य ;व्ह्रमबजपअमेद्ध – प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र–

- भाषा विकास को परिभाषित कर सकेंगें।
- भाषा एवं विचार का सह–संबंध बता देंगे।
- ग्रहणषील कौषल का अभिप्राय, आवष्यक तत्व तथा आधारो की सूची बना देंगे।
- उत्पादक कौषल का अर्थ, बोध व षिक्षण विधियों का महत्व समझा सकेंगे।
- भाषा–विकास के चरण लिख सकेंगे।
- भाषा–विकास के विभिन्न कारकों की भूमिका बता सकेंगे।
- द्विभाषी एवं बहुभाषी कक्षाओं में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
- भाषा एवं सामाजिक–सांस्कृतिक भिन्नता के आधार एवं तत्व बतायेंगे।

3.3 भाषा एवं विचार का सहसंबंध ;त्मसंजपवदीपच इमजूममद स्ंदहनंहम ंदक जीवनहीजद्ध

भाषा एक सतत् प्रक्रिया है, यह क्रमबद्ध, गत्यातमक तथा पूर्व होती है। परंतु इस प्रक्रिया का स्वरूप बालक की परिपेक्वता से र्निधारित होती है। इस दृष्टिकोण से भाषा–विकास का अर्थ, वह योग्यता है जो बालक की परिपक्वता के अनुपात मे उसे अपने भावो तथा विचारो को दूसरों तक पहचान तथा दूसरों के भावों तथा विचारों को ग्रहण करने में सहायक होती है। षुरू में नवजात षिषु केवल रोता है। फिर बलबलाता है, फिर एक षब्द द्वारा अपनें भाव या विचार की अभिव्यक्ति करता है और अति जटिल वाक्यों के माध्यम से अपने विचारो या भावो को मौखिक रूप से, लिखित रूप से अथवा षारीरिक संकेतों के माध्यम से व्यक्त करने में सक्षम बन जाता है। मौखिक भाषा बहुत प्रारंभिक वर्षो में ही विकसित हो जाती है। तीन वर्ष की आयु तक बच्चे

बातचीत करने में काफी निपुण बन जाते है, पूर्व विद्यालय वर्षों के अन्त तक वाक्यों को समझने तथा बोलने के योग्य बन जाते है तथा लिखित भाषा का उपयोग भी करने लगते है। (ळसमेंवदए 1981, डमदलनाए 1982)

ब्वससपदे – ानब्रंरए 1991 के अनुसार जन्म और औपचारिक स्कूली षिक्षा के बीच बच्चे यह महत्वपूर्ण कार्य सीखे जाते है और वह है– भाषा की समझ एवं बोलना अतः भाषा से हम अपने विचारों को संगठित एवं संप्रेषित कर सकते है। भाषा प्रतिबिंबित करता है कि बालक कैसे सोचता है यह विचार करता है तथा भाषा उसके सोचने या विचार प्रक्रिया को प्रभावित भी करती है।

भाषा विकास बालक के मानसिक विकास का ही एक पक्ष हैं क्योंकि इसका संबंध अन्य मानसिक क्रियाओं से होता है। भाषा के अंतर्गत हो सभी साधन आते है जिनसे विचार, संवेग और भावनाओं अर्थपूर्ण ढ़ंग से प्रकट होती है जैसे– बोलना, संकेत करना, हाव–भाव, लिखना, चित्र बनाना, आदि वाकषक्ति, भाषा का ही एक रूप है। जिसमें अर्थ व्यक्त करने के लिए ध्वनि ै;वनदकद्ध या शब्दों ॅ;वतकेद्ध का प्रयोग किया जाता हैं। वाक्षक्ति ै;चममबीद्ध का उपयोग न केवल अर्थों को व्यक्त करने में, वरन सूचना प्राप्त करने, तथा दूसरों को क्रियाषील बनाने में भी होता है। इस प्रकार यह लोगों के बीच एक बंध का कार्य करती है जो उन्हें घनिष्ठतापूर्वक बाँधे रखती हैं। बालक का समायोजन वाकषक्ति द्वारा प्रभावित होता हैं। और उसकी वाक्षक्ति उसके समायोजन द्वारा प्रभावित होती हैं।

3.4 ग्रहणषील एवं अभिव्यंजनात्मक कौषल (त्मबमचजपअम ंदक च्तवकनबजपअम ेापससे)

भाषीय कौषल का अर्थः–

भाषा के दो रूप होते हैं– मौखिक एवं लिखित। मनुष्य इन दोनों रूपों का प्रयोग अपनी सोच–विचार का एक दूसरे के साथ आदान प्रदान करने के लिए करता है। सुनने बोलने की क्रिया मौखिक रूप द्वारा की जाती है। तथा पढ़ने लिखने के लिखित रूप द्वारा की जाती है। बालक बोलकर, सुनकर, पढ़कर और लिखकर विचारों का लेन–देन करता है। इन योग्यताओं को विकसित करना ही भाषा षिक्षण का मुख्य उद्देष्य है।

भाषा–प्रयोग में चार कौषल या दक्षताएँ सम्मिलित हैं जिन्हें दो प्रमुख प्रकारों में विभाजित किया गया है। पठन और श्रवण कौषल ग्रहणात्मक कौषल कहलाते हैं। तथा मौखिक अभिव्यक्ति व लेखन कौषल अभिव्यंजनात्मक कौषल कहे जाते हैं।

(।) ग्रहणषील कौषल (त्मबमचजपअम ेापससे)

(प) सुनना/श्रवण कौषल (स्पेजमदपदहेापससे)

(प्प) पढ़ना/वाचनकौषल (त्मंकपदहेापससे)

(ठ) अभिव्यंजनात्मक कौषल (च्तवकनबजपअम`ापससे)

(प) बोलना/मौखिक अभिव्यक्ति कौषल ै(चमांपदहेापससे)

(प्प) लिखना/लेखन कौषल ॅ(तपजपदहेापससे)

इन्हे स्ैं ; स्पेजमदपदहए ैचमांपदहए त्मंकपदहए ूतपजपदहद्ध द्वारा भी जाना जाता है। भाषा षिक्षण के दौरान इन कौषलों का विकास किया जाता है। इन चारों कौषलो में निम्मनलिखित क्रियाएं षामिलहै।

(प) सुनना – अन्य व्यक्तियों के कथन भाषण आदि को सुनकर उसका अर्थ, आषय तथा भाव समझना।

(प्प) बोलना– अपने विचारो, भावों उद्देष्यो को भाषा मे बोलकर दूसरो के समक्ष रखना।

(प्प्) पढ़ना – अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखित भाषा को समझना।

(प्ट) लिखना –अपने भावों, विचारो को लिपिबद्ध रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता पैदा करना।

(A) ग्रहणीय कौषल– ग्रहणीय कौषलों मे पढ़ना (वाचन) और सुनना (श्रवण) आते हैं क्योंकि इसमें बच्चे भाषा को ग्रहण कर समझते हैं। बाल्यावस्था में जो बालगीत, छोटे–छोटे कहानिया सुनाये जाते है वह षिषु को सुनने के कौषल का विकास एवं दक्षता के लिए सबसे उत्तम अभ्यास है। इस प्रक्रिया के दौरान कानों द्वारा ध्वनियो को ग्रहण किया जाता है तथा मस्तिष्क द्वारा उनकों ग्रहण करने को सुनना अथवा श्रवण कहा जाता है। भाषा विकास में सुनने का अर्थ है– मौखिक भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त भाव एवं विचारो को समझते हुए ग्रहण करना यह क्रिया श्रवण या सुनना कहलाता है।

श्रवण कौषलः–

भाषा सीखने का प्रथम चरण 'श्रवण' है।यही अन्य कौषलों को विकसित करने का आधार है। जो बालक बचपन से सुन नहीं सकता वह बोलने में भी असफल रहता है। तथा उसका भाषा ज्ञान हो नहीं पाता।

परिभाषाः–किसी भी व्यक्ति के द्वारा प्रयुक्त ध्वनियों, शब्दों एवं भावों को कानों के माध्यम से ग्रहण कर, उसका अर्थ ग्रहण करने की क्रिया को श्रवण कहा जाता है। वक्ता के वकत्व्य के उद्देष्य पूरी तरह से ध्यान पूर्वक सुनकर, उसी अभिप्राय को ग्रहण करने की योग्यता ही श्रवण कौषल है।

श्रवण कौषल बच्चे कि व्यक्ततित्व के विकास में अत्यन्त महत्वपूण हैं। बच्चा जन्म के पष्चात् वातावरण में ध्वनियों को सुनता है जो उसके मस्तिष्क अंकित हो जाती है। यही अंकित ध्वनयिाँ बच्चों के भाषा ज्ञान का आधार बनती है। अच्छी तरह से सुनने के कारण ही बालक इन घ्वनियों के सूक्ष्म अंतर को समझ पाता है अतः श्रवण कौषल ही अन्य भाषायी कौषलों को विकास करने को प्रमुख आधार बनता है। सिर्फ मौखिक कौषल के लिए ही नही वरन् पठन और लेखन कौषलों को विकसित करने के लिए भी श्रवण कौषल की आवष्यकता होती है।

सुनने (श्रवण)के कौषल का विकास हेतु क्रियाएं।

1. विद्यालय में प्रारंभिक षिक्षा में बच्चो को मातृभाषा के सर्वमान्य रूप को सुनने और सुनाकर उसका एवं भाव समझने में दक्ष किया जाता है।
2. भिन्न स्वरों के उच्चारण पर अधिक बल दिया जाता है।
3. बोलने की षैली लहजा एवं भाषीय विविधता का प्रयोग किया जाता है।
4. इस कौषल के विकास के लिए छात्र की मनः स्थिति का निर्माण किया जाता है कि वह
5. कही गई बात समझ सके, इसलिए छात्र को कथा–षैलियो से परिचित कराना आवष्यक है।

षब्दों एवं वाक्यों में सार्थकता प्रथम लक्षण है। सार्थक ध्वनियाँ मस्तिष्क में विचार या भाव बिम्व बनाती है। अतः बाल्यवस्था मे छात्रो को बोलकर, मुर्त–रूप में वह वस्तु दिखाई जानी चाहिए। इससे भाव–विम्ब स्थूल रूप लेता है। बोलने की षैली व लहेजे के साथ'–साथ षिक्षक के चहरे पर भी वह हाव–भाव प्रदर्षित होने चाहिए, षिक्षक को बोलने में इतनी रोचकता होनी चाहिए कि वो ग्रहणषील बन जाए।

वक्ता के बोलने के भाव एवं अभिवृति प्रकट होती है। षब्द से उसके अर्थ–बोध के साथ–साथ लाक्षणिक अर्थ का भी बोध होता है। इसीलिए इसमें षिक्षक को अधिक से अधिक षब्दो का प्रयोग करना चाहिए। तथा अन्य भाषाओ से भी षब्दो को समावेषित करना चाहिए।उदाहरण– हिन्दी भाषा में ही फारसी, उर्दू, अरबी, अंग्रेजी तथा संस्कृत के षब्दो का समावेष है तथा यही गुण भाषा को जिवित रखना है।

सुनने/श्रवण के कौषल की षिक्षण सामग्री –

1 मौलिक सामग्री(व्तपहपदंस डंजमतपंस)– छोटे बच्चो को श्रवण एवं वाचन कौषल में मौलिक सामग्री सहायक होती है। जैसे कि कोई वस्तु दिखाकर, उस पर छोटे–छोटे प्रष्न पूछे जा सकते है। छात्र मौलिक सामग्री को देखकर आनंदित होते है तथा षिक्षक संप्रेषणात्मक वातावरण भी बना देता है।

2. दृष्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोगः–

(क) रेडियो– रेडियो के द्वारा शैक्षणिक चैनल पर छात्रों के लिए एक ऐसा कार्यक्रम प्रसारित किया जा सकता है। जिसे छात्रों को ध्यानपूर्वक सुनाया जा सकता है।

(ख) चल–चित्र– चलचित्र में आवास के साथ–साथ दृष्य भी होते हैं। बच्चे हर दृष्य को बहुत ध्यान से देखते एवं सुनते हैं। अतः शैक्षिक चल–चित्रो का प्रयोग भाषा बोध को रोचक बनाता है।

(ग) दूरदर्षन– घर में बैठे हुये दूरदर्षन के द्वारा हम बोलने वाले की आवाज तो सुनते ही हैं, साथ ही उसकी आकृति भी देखते हैं। श्रवण कौषल को विकसित करने के लिए इसका प्रयोग भी उपयोगी है।

(घ) वीडियो– इसमें विद्वानों की आवाज रिकॉर्ड करके तथा वीडियो बनाके छात्रों तक पहुँचाया जा सकता है।

(च) स्मार्ट बोर्ड– आजकल कक्षाओं के स्मार्ट बोर्ड के प्रवेष से कक्षायें भी स्मार्ट क्लास कहलाने लगी है। स्मार्ट बोर्ड सरलता से लगाए गए, एल.सी.डी. प्रोजेक्टर का नया विकसित रूप है। यह अत्याधुनिक तकनीक सभी उम्र के छात्रों के लिए लाभकारी है। इंटरेक्टिव बोर्ड एक कक्षा को विषिष्ट बना, सीखने का वातावरण बना देता है। इसमें प्रमुख उपकरण हैं– स्मार्ट इंटरेक्टिव ब्हाइट बोर्ड एवं एल.सी.डी. प्रोजेक्टर एवं सी.पी.यू यह इंटरेक्टिव ब्हाइट बोर्ड (स्ब्क ैबतममदद्ध मीडिया के कई रूपों की अनुमति देता है. जिनमें फोटो, चित्र, मान–चित्र, ग्राफ, गेम्स तथा वीडियों शामिल हैं, जिन्हें प्रदर्षित किया जा सकता है।

यह उपकरण कक्षा में अधिगम के अनुभवों को समृद्ध करता है। तथा दृष्य–श्रव्य सामग्री की प्रकृति का विस्तार करने में सहायक होता है यह सीखने को गतिषील बनाता है। इसमें आडियो सुनकर छात्र चर्चा कर सकते हैं। प्राथमिक स्तर पर कहानियाँ तथा अनेक खेलों द्वारा अधिगम कराया जा सकता है। तथा इसके साथ दृष्य तत्वों को भी जोड़ा जा सकता है, जिन्हें

देखते हुए छात्र जल्दी सीखता है। टचस्क्रीन क्षमताओं के साथ छात्र इन्हें स्पर्ष कर इंटरेक्टिव करने की अनुमति देते हैं।

3.कहानी कहना तथा सुनना– षिक्षक कहानी सुनाये तथा उसके उपरान्त बालको से सुने छोटे–छोटे प्रष्न पूछते हुए बालको का ध्यान कहानी सुनने की ओर आकर्षित किया जा सकता है। कहानी सुनने में बच्चों को बहुत रूचि होती है तथा कहानी के द्वारा बच्चों का ध्यान सुनने की ओर आकर्षित किया जा सकता है।

4.सस्वर–वाचन (स्वनक त्मंकपदह)– षिक्षक के द्वारा किये गये आदर्ष वाचन तथा कक्षा के किसी छात्र द्वारा किये जाने वाले अनुकरण को ध्यान पूर्वक सुनकर षुद्ध उच्चारण, गति, विराम आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं, इससे छात्रों में श्रवण, पठन एवं वाचन कौषलों का विकास होता है।

5.श्रुत लेखन (क्पबजंजपवद)– इससे श्रवण कौषल के प्रतिक्षण एवं विकास पर ध्यान दिया जा सकता है। श्रुत लेखन षुद्ध लिखने के अभ्याास के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसमें बालको सुनकर लिखना होता है। इसमें लिखने के लिए सामग्री छात्रों के मानसिक और बौद्धिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।

6.वाद–विवाद (क्मइंजम)– श्रवण–कौषल के लिए वाद–विवाद क्रिया अत्यन्त सषक्त एवं सार्थक होती है। इसमे भाग लेने वाले छात्रो को बहुत सचेत रहना पड़ता है। प्रतिपक्षी वक्ता के उत्तर देने के लिए ध्यानपूर्वक सुनना पड़ता है। तथा अपना तर्क भी प्रस्तुत करना होता है।

7. रोल–प्ले (त्वसम च्संल)– इससे छात्रो के श्रवण एवं वाचन कौषलों का विकास होता है। इसमें किसी का रोल करने के लिए पूर्व नियोजित ढंग से छात्र को एक चरित्र दिया जाता है।

पठन (वाचन) कौषल–

किसी के द्वारा लिखित भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति भाव एवं विचारों को पढ़ना एवं समझना पठन कहलाता है। अर्थ बोध एवं भाव की प्रतीति पढ़ने के आवष्यक तत्व होते है।उदाहरण – लेख, कहानी, निबन्ध, नाटक अथवा पद्य को पढ़कर उसका अर्थ एवं भाव ग्रहण करना।पठन कौषल में पाठ्य–सामग्री का बोध अति आवष्यक है। बोध सक्रियता तथा नये संप्रत्ययों का निर्माण करता है। इससें षब्द भण्ड़ार में वृद्धि होती है। तार्किक विकास के साथ–साथ नये ज्ञान को पूर्ण ज्ञान से जोड़ने की योग्यता का भी विकास होता है। पढ़ना एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है।

परिभाषाः–लिखित सामग्री को पढ़ते हुए अर्थ सहित ग्रहण करने की क्रिया को पठन अथवा वाचन कहा जाता है।

एक उद्देष्यपूर्ण, सार्थक एवं चिंतन प्रधान क्रिया पठन होता है इस प्रक्रिया में जैसे–जैसे पढ़ने वाले की दृष्टि छपे हुये शब्दों पर घूमती है वैसे–वैसे वह उन शब्दों में निहित अर्थ एवं भाव को भी वह ग्रहण करता जाता है।

पठन/वाचन की षिक्षण विधियाँ –पठन (वाचन) की षिक्षण विधियाँ।

1. मुखर या सस्वर वाचन

स्वर सहित पढ़ते हूए अर्थ ग्रहण करने को सस्वर बाचन की संज्ञा दी जाती है। यह वाचन प्रथम अवस्था होती है। मुखर या सस्वर वाचन अभिप्राय है कि स्वर के साथ पढ़ना।इसलिए बालक को सर्वप्रथम सस्वर वाचन की षिक्षा दी जाती है। इसके द्वारा शब्द एवं वाक्यों को शुद्ध उच्चारण के साथ, उचित गति से पढ़ने का अभ्यास कराया जाता है। सस्वर वाचन अभ्यास शुद्ध उच्चारण की षिक्षा में सहायक होता है। इससे मौखिक अभिव्यक्ति कुषल होती है। शब्द–भण्डार में वृद्धि तथा नये–नये मुहावरे, लोकोतियाँ का ज्ञान होता हैं।

अतः सस्वर वाचन के निम्नलिखित गुण हैं–

1. शुद्ध– उच्चारण
2. उचित ध्वनि निर्गम
3. उचित बल एवं विकास
4. उचित हाव–भाव
5. उचित वाचन मुद्रा
6. स्वर माधुर्य
7. प्रभावोत्पादकता
8. अंग संचालन
9. स्वाभाविकता

2. साहचर्य विधि (।वबपंजपवद डमजीवक)–इस विधि की प्रतिपादक मान्टेसरी है। इस विधि के द्वारा खिलौनों, चित्रों, विभिन्न प्रत्यक्ष वस्तुओं और शब्दों में साहचर्य स्थापित किया जाता हैं।

3. ध्वनि–साम्य विधि (तिलउपदह ॅवतके डमजीवक)–इसमें समानोच्चारण वाले शब्दों को साथ–साथ सिखाया जाता हैं।उदाहरण –बहना, रहना, कहना, चलना, पढ़ना, बढ़ना आदि।

4.शब्द षिक्षण विधि ैवतक जमंबीपदह डमजीवक)–इसमें सार्थक शब्दों के पढ़ने की षिक्षा दी जाती है। उदारण – पापा, मामा, नाना, आदि इस विधि मनोरंजक एवं मनोवैज्ञानिक हैं। इसमें बालक रूचि लेते हैं, इसमें सरल शब्दों के उपरांत धीरे–धीरे कठिन शब्दों को भी सीख लेते हैं।

5. वर्ण–विन्यास विधि(।सचींइंजम व्तपमदजंजपवद डमजीवक)–इसमें सर्वप्रथम स्वर फिर व्यंजन, मात्राएं, संयुक्ताक्षर, तद् उपरांत सार्थक शब्द सिखाये जाते है। विधि द्वारा ही वाचन षिक्षा दी जानी चाहिए। वर्तमान में स्कूलों (प्रारंभिक) में यही विधि अपनाई जाती हैं।

6. वाक्य–षिक्षण विधि(मदजमदबम जमंबीपदह डमजीवक)–इस विधि में सबसे पहले अक्षर वाक्य ज्ञान, फिर शब्द–ज्ञान, और अन्त में अक्षर–ज्ञान कराया जाता है। इसमें बालक सर्वप्रथम अपनी दृष्टि पूर्ण वाक्य पर डालता है, पृथक शब्दों पर उसका ध्यान बाद में जाता है। अतः इस प्रणाली में षिक्षण का क्रम है वाक्य–षब्द, वर्णाक्षर। यह प्रणाली अक्षर–बोध के विपरीत हैं।

(ठ) अभिव्यंजनात्मक कौषल (च्तवकनबजपअम ेापससे)

इसमें छात्र या अधिगमकर्ता भाषा का उत्पादन करता है। मनुष्य अपनी सोच एवं विचार को एक दूसरे तक पहँचाना चाहता है इस कार्य के लिये वह भाषा के दोनों रूपों का प्रयोग करता है – वाणी एवं लिखित रूप। यह दो सक्रिय कौषलों में समाहित है– बोलना एवं लिखना।

(प) बोलना/मौखिक अभिव्यक्त कौषल के स्त्रोत एवं सामग्री–

1. भाषण –पूर्व निर्धारित कोई रूचिकर विषय देकर छात्रों को भाषण करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। यह छात्रों के मानसिक स्तर के अनुरूप होना चाहिए आवष्यकता के अनुसार छात्रों को उचित मार्गदर्षन दिया जाना चाहिए।बोलने का प्रषिक्षण देने हेतु भाषण का अभ्यास कराना लाभकारी होता है। छात्रों को पहले से यह बताना उचित होता है कि भाषण के बाद उनसे प्रष्न पूछे जाऐंगे।

2. कविता पाठः–छोटे बच्चों को कविता एवं गीत सुनने एवं सुनाने में अधिक रूचि होती है। अतः कविताएँ एवं गीत कण्ठस्थ कराके उन्हें कविता पाठ के लिए प्रेरित किया जा सकता है। उचित हाव–भाव के साथ कविता पाठ का अनुभव प्रदान करना चाहिए।

3. विषय–वस्तु पर आधारित प्रष्नः–षिक्षक को छात्रों से पठित सामग्री पर प्रष्न पूछने चाहिए। छात्रों के उत्तर से यह जाँच पाऐगें कि विषय–वस्तु को कितना ग्रहण किया गया है।

4. भाषा लैब/भाषा प्रयोग–षालाः–भाषा प्रयोगषाला की सहायता से भाषा सिखाने का एक सक्रिय, रोचक तथा उपयोगी आधुनिक षिक्षण अभिकरण है। भाषा प्रयोगषाला में छात्रों को अनुदेष पहले से रिकार्ड किये गये व्याख्यान द्वारा दिये जाते हैं। छात्र शीर्ष ध्वनि यत्रों के माध्यम से कहे गये शब्द एवं वाक्य सुनते हैं। पुनः थोड़ी देर के लिए रूका जाता है जिससे छात्र बोलन वाले के शब्दों व व्याख्यों को दो या तीन बार दोहरा सके। बाद में सुनाये गये, दिखाये पाठ पर आधारित प्रष्न किये जाते हैं।

5. परिस्थितियों के अनुसार संवादः–इसमें किस प्रकार भाव पूर्वक बोलना है इसके लिए षिक्षक कृत्रिम रूप से ऐसी परिस्थितियाँ बनाते हैं जिसके अनुसार छात्रों को संवाद बोलने के लिए प्रेरित किया जा सके। इसमें छात्रों को अपने दैनिक जीवन से अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं। षिक्षक उनको समय–समय पर उन अनुभवों की मौखिक व्याख्या प्रदान करने के लिए अवसर देता है। उदाहरण– नाटक, विधा, इसका एक शसक्त माध्यम है। मौखिक अभिव्यक्ति के सभी गुणों का विकास इस विधा द्वारा किया जा सकता है इसमें भाग लेने वाले सभी छात्र–छात्राओं को पात्र के चरित्र के अनुसार उचित हाव–भाव, उतार–चढ़ाव एवं प्रवाह के साथ संवाद प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। नाटक मंचन के द्वारा छात्र–छात्राऐं मौखिक अभिव्यक्ति की कई शैलियों को सीखते हैं।

6. मल्टीमीडियाः–शुद्ध उच्चारण की दृष्टि से टेपरिर्काडर का उपयोग किया जा सकता है तथा इसके द्वारा किसी कार्यक्रम को रिर्काड करके छात्रों को सुनाया जा सकता है। इसी प्रकार कार्यक्रम को रिर्काड कर वीडियो के माध्यम दिखाया जा सकता है। इसमें दूरदर्षन, मोबाइल अथवा वीडियोग्राफी द्वारा दिखाया जा सकता है इससे बोलने के साथ–साथ भाषाण कौषल को भी विकसित करने में सहायता मिलती है।

लेखनकौषल (लिखना):–

भाव एवं विचार, लेखन के मूल तत्व होते है। अतः अपने भाव एवं विचारों को लिखित भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने की क्रिया को लेखन कहते हैं। इस विधि से शब्द–कोष, शुद्ध वर्तनी, शुद्ध उच्चारण, भाव एवं विचारों की स्पष्टता का विकास होता है। इससे लेखन के विराम चिन्हों के प्रयोग का ज्ञान एवं अभ्यास होता है, जिससे लेखन कौषल का विकास होता है।

- इसमें लेखन की तत्परता रूचि एवं अध्ययन का विकास सुनिष्चित होता है तथा लेखन के लिए यह अति आवष्यक हैं।

- इससे बालकों का प्रसंगानुकूल भाषा ज्ञान एवं उसके प्रयोग की अभ्यास का अनुकूल अवसर मिलता है। तथा लेखन की क्रिया में दक्षता हासिल होती है।

इस प्रकार लेखन कौषल के लिए अभ्यास को आवष्यकता होती है। अतः षिक्षक छात्रों को जितने सुअवसर प्रदान करेगा वे लेखक कौषल में उतने ही अधिक निपुण होगे। अतः बच्चों को अपने भाव एवं विचारों को लिखित भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने की क्रिया में निपुर्णता हासिल होती है, तथा लेखन के आवष्यक तत्वों का विकास होता हैं।

लेखन कौषल के विकास की विधियाँ –

1. **सुलेख** –लेखन कौषल के विकास हेतु षिक्षक प्रारम्भ अक्षर को लिखने से सिखाते है। इसके लिए षिक्षक श्रुतलेख, प्रतिलेख एवं सुलेख का प्रयोग करते है।

सुलेख के समय निम्न बातों पर ध्यान रखा जाता है–

(i) पूर्ण, सुन्दर और सुडौल अक्षर लिखना

(ii) षिरोरेखा

(iii) स्वच्छ लेखन

(iv) पृष्ठ पर लिखित अंष का स्थान अर्थात् ऊपर, नीचे एवं बांयी और हाषियां छोड़ने का ध्यान

(v) अक्षर–अक्षर, शब्द–षब्द और वाक्य–वाक्य के बीच दूरी का ध्यान।

2. **भाषा संबंधी अभ्यास** –षुद्ध भाषा के प्रयोग पर ही लिखित रचना की प्रभावपूर्णता निर्भर है, अतः अधिकाधिक भाषा सम्बन्धी अभ्यास छात्रों द्वारा होना चाहिए। इन अभ्यासों के लिए निष्चित योजना बना लेनी चाहिए। कक्षा में लिखित अभ्यास के लिए मौखिक कार्य की भी सहायता लेना अनिवार्य है। ष्यामपट्ट का अधिकाधिक प्रयोग भी वांछित है।

3. **वर्तनी सम्बन्धी अभ्यास** –इसके निए छात्रों को लिपि का सही ज्ञान, उच्चारण की शुद्धता, व्याकरणिक रूपों की जानकारी अति आवष्यक हैं।

4. **शब्द प्रयोग संबंधी अभ्यास** –भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति के साधन शब्द ही हैं। रचना की उत्कृष्टता बहुत कुछ शब्दों के ही ज्ञान, प्रयोग तथा योजना पर निर्भर है। बालक के शब्द भण्डार की अभिवृद्धि तथा उनका यथास्थान प्रयोग ही रचना के उदेष्य को पूर्ण करता है। अतः इसके अभ्यास हेतु निम्न अभ्यास आवष्यक है।

शब्दों का वाक्यों में प्रयोग

(i) रिक्त स्थानों की पूर्ति

(ii)समानार्थी शब्दों का अभ्यास

(iii) एकार्थक शब्द का अभ्यास

(iv) पर्यायवाची एवं विलोम शब्द

(v)लिंग, वचन एवं विभक्ति संबंधी अभ्यास

(vi) उपयुर्क्त विषेषण का प्रयोग

(vii) सर्वनाम तथा क्रिया विषेषणों का प्रयोग

(viii) उपसर्ग, प्रत्यय और समास संबंधी शब्द–रचना।

5. वाक्य–रचना संबंधी ज्ञान –भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से वाक्य–रचना के अभ्यासों का विषेष महत्व है। इसके निहित निम्न अभ्यास छात्रों से निरंतर करवाना चाहिए

- ज्ञात विषयों पर प्रष्नों के उत्तर लिखवाना
- उत्तर देकर उन पर प्रष्नों की रचना कराना
- वाक्य के विविध रूपों का अभ्यास
- एक रूप से दूसरे रूप में वाक्य परिवर्तन
- काल – परिवर्तन
- वाक्य का प्रारम्भिक अंष देकर शेष की पूर्ति करना

6 अनुच्छेद रचना (च्तंहतंचीॅतपजपदह) –बालक अपने भावो एवं विचारों को सुश्रृंखलित एवं सुसंबंद्ध रूप से प्रस्तुत करने के लिए अनेक वाक्यों का क्रम से आयोजित करता है। ऐसे वाक्यों के समूह को अनुच्छेद कहते है। प्रत्येक अनुच्छेद का एक मुख्य विचार होता है, अपने विचारों को सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने के लिए बालकों को अनुच्छेद रचना आवष्यक है। पाठ्य–पुस्तक पढ़ाते समय विभिन्न अनुच्छेदों की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। छात्रों को इनके लिखने की प्रणाली एवं क्रियाविधि का परिचय विविध उदाहरणों एवं नमूनों द्वारा कराना चाहिए और फिर उनके आधार पर प्रचुर अभ्यास कराना चाहिए।

7. वर्णनात्मक लेखन (क्मेबतपचजपअमॅतपजपदह) –छात्र स्वयं देंखे हुए स्थानों का वर्णन बड़ी रूचि एवं संजीवता से करते है। प्रारम्भ में उन्हें ऐसे स्थानों, दृष्यों, घटनाओं एवं क्रिय–कलापों का

वर्णन देना चाहिए, जिनका उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका हो, जैसे–अपना शहर, अपना विद्यालय, अपना गाँव, मेला, उत्सव, यात्रा, मोबाईल, विद्यालय में होने वाले समारोह, चिड़ियाघर, प्रदर्षनी, कोई विषिष्ट घटना इत्यादि।

8 पत्र लेखन (स्मजजमत ॅतपजपदह) – प्रारम्भिक कक्षाओं से इनका स्तर अति सामान्य रूप मे होता है। उदाहरण– माता–पिता को पत्र, प्रधानाध्यापक को आवेदन पत्र, मित्रों को पत्र आदि यह पत्र लगभग 8–10 पंक्तियों के होंगे या छोटे आकार के ही होंगे।

9. जीवनी तथा आत्मकथालेखन (स्पमि ैामजबी ंदक ।नजव ठपवहतंचील ॅतपजपदह) –महापुरूषों को जीवनी पढ़कर अपने शब्दों में लिखना, लिखित रचना की दृष्टि से अच्छा अभ्यास है। इससे स्वंय में ही अत्यंत प्रेरणादायी अनुभव सिद्ध होता है। बच्चों ने स्वंय क्या सीखा, तथा अन्य अनुभव भी लिखने को कहा जा सकता है।

बच्चों को अपने स्तर से परिचित होते है, अन्य रोचक वस्तुओं का वर्णन, आत्मकथा शैली में लिखने के लिए कहा जा सकता है– जैसे किसी पेड़ लकड़ी, कागज, कपड़े की आत्म कथा आदि।

10 निबंध लेखन (ैं्लॅ.तपजपदह) –प्राथमिक स्तर पर छात्रों को सरल एवं रोचक विषयों पर निबंध लिखने के लिए उचित निर्देषन देने चाहिए, विभिन्न त्यौहारो जैसे ईद, होली, दीपावली, क्रिसमस आदि पर्व, रूचि के खेल–कूद आदि, विषयों पर निबंध लेखन करवाना चाहिए।

3.5 भाषा विकास के चरण ;जंहमे व िंस्दहनंहम क्मअमवसवचउमदजद्ध–

भाषा विकास निम्नलिखित रूपों से गुजरता हुआ पूर्णता को प्राप्त करता हैं–

1. वाक्षक्ति या बोलने का पूर्व रूप ;च्तमै.चममबी थ्वतउद्ध
2. समझने योग्य वाक्षक्ति का विकास ;क्मअमसवचउमदज व िबवउचतमीमदेपइसम ेचममबीद्ध
3. षब्द – भण्डार में वृद्धि ;ळतवूजी पद अवबंइनसंतलद्ध
4. उत्तर की लम्बाई में वृद्धि ;ळतवूजी पद समदहजी व िमेचवदेमेद्ध

1. वाक्षक्ति या बोलने का पूर्व रूप ;च्तमै.चममबी थ्वतउद्ध

षिषु की सभी ध्वनियाँ भाषा के अंतर्गत नहीं रखी जा सकती हैं। स्वर–ध्वनि ;अवबंसप्रंजपवदद्ध में जब तक अर्थ नहीं जुड़ता है, तब तक उसे भाषा ;ंस्दहनंहमद्ध नहीं कहा जा सकता।उदाहरण के रूप में जैसे– बच्चों का रोना या चीखना भाषा में नहीं आता क्योकि इसमें

अर्थ नहीं जुड़ जाता है, षिषु, धीरे–धीरे रोकर या चिल्लाकर यह विकास का पूर्व वाक्षक्ति स्तर ;च्तमे.चममबी समअमस वि कमअमसवचउमदजद्ध हैं। तथा इसे वाक्षक्ति या बोलने का पूर्वरूप ;च्तमै.चममबी थ्वतउद्धहैं।

हरलॉक ;भ्नतसवबाद्धके अनुसार बोलना, सीखना, एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि षिषु बारहवें और पन्द्रहवें माह के बीच तक एक भी शब्द बोलने में असमर्थ रहता है। वह अपनी आवष्यकताओं की भाव – संकेत ;ळमेजनतमेद्ध तथा भाव–पूर्ण स्वर ध्वनियों ;म्गचतमेपअम अवबंसप्रंजपवदद्ध द्वारा प्रकट करने का प्रयत्न करता है। वाक्षक्ति का विकास भाषा–विकास का पूर्व रूप है। वाक्षक्ति का विकास में निम्नलिखित चरण है–

(a) रोना या चीखना ;ब्तलपदहद्ध

(b) अस्पष्ट ध्वनियाँ ;ठंइइसपदहद्ध

(c) भाव–संकेत ;ळमेजनतमेद्ध

(d) बोलना ै;चमांपदहद्ध

उपरोक्त चारों में से अस्पष्ट ध्वनियों वाला चरण महत्वपूर्ण है क्योंकि अस्पष्ट ध्वनियाँ ही कालान्तर में बोलने और भाषा का आधार बनती हैं।

;द्धरोना या चीखना ;ब्तलपदहद्ध –जन्म लेने के पश्चात् षिषु अपनी प्रारम्भिक अवस्था में केवल रोने या चीखने की ध्वनि करता है। तीसरे या चौथे सप्ताह में उसके रोने या चीखने में परिवर्तन आने लगता हैं। वह भूख, पीड़ा, तीव्र प्रकाष, तेज आवाज क कारण रोता या चीखता है। तीसरे माह तक वह चीखने लगता है कि उसके रोने या चीखने पर ही लोग उसकी ओर ध्यान देते है तो वह अपनी इच्छा या आवष्यकता को पूरा करवाने के लिए रोता है। इस प्रकार उसका रोना अर्थपूर्ण होता है। पाँचवें माह में यदि उसके पास से कोई निकलता है और वह उसकी ओर ध्यान नहीं देता है तो वह रोकर आने वाले का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। नवें माह में यदि कोई उसके सामने किसी दूसरे षिषु को गोद ले लेता है तो वह रोने लगता है। एक वर्ष के अंत तक वह भय से या उसे कोई कष्ट होने से भी वह रोने लगता है। इस प्रकार इस रोने में षिषु का बोलना और भाषा छिपी रहती है जिसके माध्यम से वह अपनी बात को व्यक्त करता है। भाषा–वैज्ञानिक इस प्रकार अर्थपूर्ण रोने या चीखने की अवस्था से ही षिषु के भाषा–विकास का आरम्भ मानते हैं।

;इद्ध अस्पष्ट ध्वनियाँ ;ठंइइपदहद्ध –अस्पष्ट ध्वनियाँ, धीरे–धीरे बढ़ती हुई निष्चित रूप धारण कर देती है। सबसे पहले स्वर, व्यंजनों के साथ मिलने लगते हैं जिससे षिषु बा–बा, दा–दा, मा–मा, पा–पा आदि ध्वनियों का उच्चारण आरम्भ करता है। अस्पष्ट ध्वनियों की अवस्था तीसरे और बारहदें माह के बीच रहती हैं। आठवें और नवें माह में ये अस्पष्ट ध्वनियाँ प्रौढ़ता को प्राप्त करता हैं। कुछ बच्चे दूसरे माह में ही अस्पष्ट ध्वनियाँ निकालने लगते हैं। अस्पष्ट ध्वनियों के बारे में लेविल का विचार है–"ये संतोष के क्षणों में तथा जब षिषु अकेले में रहता है, उत्पन्न होती हैं।" अस्पष्ट ध्वनियों का संबंध किसी वस्तु विषेष, व्यक्ति या स्थिति से नहीं होता है इन ध्वनियों को सुनकर षिषु स्वंय प्रसन्न होता हैं। ये ध्वनियाँ षिषु को आनन्द प्रदान करती हैं और स्वर यंत्रों से संबंधित मांसपेषियों को नियंत्रित करने का अभ्यास कराती हैं। अस्पष्ट ध्वनियों के संबंध में हरलॉकका कथन है "यह वास्तविक भाषा नहीं है। अस्पष्ट ध्वनियाँ, बोल–खेल का एक रूप है।"

;बद्धभाव–संकेत (ळमेजनतमे)– षिषु वास्तविक रूप से बोलने से पहले अपनी बात को हाव–भाव द्वारा प्रकट करने और दूसरों को समझाने का प्रयत्न करता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक लेटिफ ने इसे 'सम्पूर्ण षारीरिक भाषा' कहा है। धीरे–धीरे षिषु यह जान जाता है। कि उसे केवल भाव–संकेतों द्वारा ही समझा जा सकता है। अतःभाव–संकेत ही उसकी भाषा बन जाते है। षैषवावस्था में, सामान्यतः, भाव–संकेत के ये रूप देखने को मिलते है– दूध पीने की इच्छा न होने पर बोतल को हाथ से हटा देना, गोद में जाने की इच्छा होने पर बॉहो को फैलाना या देखकर मुस्कराना, नहलाते समय रो–रोकर नहाने की अनिच्छा जाहिर करना आदि। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि षिषु के भाव–संकेत उसकी भाषा का ही प्रारम्भिक रूप है।

;कद्ध बोलना ैचमांपदह)–भाषा–विकास की यह अवस्था बारह से अट्ठारह माह के बीच होती है। इस काल में षिषु अपनी बात को एक षब्द बोलकर व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। उदाहरणार्थ, इस काल में षिषु के 'पानी' षब्द के उच्चारण का तात्पर्य होता है कि वह पानी पीना चाहता है। इसके पश्चात् षिषु की वाक्षक्ति और षब्द–भण्डार में तीव्रता के साथ विकास होता है। इस समय षिषु का भाषा–विकास में अनुकरण का विषेष महत्व होता है।

2.समझने योग्य वाक्षक्ति का विकास (क्मअमसवचउमदज वि बवउचतमीमदींपइसम ेचममबी)–समझने योग्य वाणी का विकास जीवन के दूसरे और तीसरे वर्ष होता है तथा अपेक्षाकृत प्रारम्भिक आयु में ही उच्चता को प्राप्त कर लेता है। दो वर्ष की आयु हो जाने पर वह छोटे–छोटे सरल वाक्यों को सुनकर दोहराने लगता हैं। वह सही भाषा तथा षब्दोंका प्रयोग करना भी सीख

लेता है और षब्दों के अर्थ भी सीखने लगता है। इस प्रकार, जब बच्चा किण्डर गार्टन या पहली कक्षा में पहूँचता है, उसकी समझने योग्य वाक्षक्ति पूर्णतः टिकाऊ हो जाती है।

3.षब्द–भण्डार में वृद्धि (ळतवूजी पद टवबंइनसंतल)–टरमैन (ज्मतउंद), थॉर्नडाइक (जीवतदकपाम)तथा कई अन्य अनुसंधानकर्ताओं के परिणामों से ज्ञात हुआ है कि बचपन मे षब्द–भण्डार में लगातार वृद्धि होती रहती है। सीषोर (मैीवतम)ने बच्चों के शब्द भण्डार सम्बन्धी परीक्षण किया जिससे पूर्व स्कूल तथा आरम्भिक स्कूल वर्षो में षब्द–भण्डार में वृद्धि के बारे में उपयोगी सूचना प्राप्त होती है। 89 आइटम वाले टेस्ट का उसने 4 से 10 वर्ष की आयु के 117 बच्चों के ऊपर व्यक्तिगत रूप से परिक्षण किया। इन परीक्षण से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुये–

आयु वर्षो में ठ	षब्द–ज्ञान
4	5,600
5	9,600
6	14,700
7	21,200
8	26,300
10	34,300

डॉ. मेक्कार्थी (क्ण् डब ब्तजील) के अध्ययन से ज्ञात होता हे कि छठी श्रेणी के छात्र का षब्द–भण्डार लगभग 50,000 षब्द–भण्डार में निम्न प्रकार के षब्दों का समावेष होता है–

1. छः से सात वर्षो मे वह षिष्टाचार सम्बन्धी षब्दोंसे पूर्ण परिचय प्राप्त कर लेता है। उसे खाने–पीने से सम्बनधित षब्दोंका ज्ञान हो जाता है और वह रूपये–पैसे पहचानने लगता है।
2. सात से आठ वर्ष में वे समय सूचक षब्द, साधारण संख्याओं के अर्थ और षिष्टाचार की प्रारम्भिक बातें जानने लगते हैं।
3. आठ से नौ वर्ष में बाल–पत्रिकाएँ पढ़ने लगते है, वे दिन, दिनांक, माह, वर्ष से सम्बन्धित षब्द जान जाते है।
4. दस से ग्यारहवें वर्ष में वे षुद्ध उच्चारण करना सीख जाते है और अपने विचारों को उपयुक्त षब्दोंमें व्यक्त करने लगते है।

5. बाल्यवस्था के ग्यारहवें और बारहवें वर्ष में ही व्यंगात्मक और षपथ षब्द, आदि के संकेत षब्द सीखते है।

5. **उत्तरों की लम्बाई में वृद्धि(ळतवूजी पद स्मदहजी व ित्मेचवदेमे)**—भाषा—विकास के दौरान न केवल बच्चे के षब्द—भण्डार में वृद्धि होती है। वरन् उनके उत्तरों और बोले गये वाक्यों की लम्बाई में भी वृद्धि होती है।आरम्भ में वह एक षब्द का वाक्य बोलता है। इसमें धीरे—धीरे वृद्धि होती है और बच्चा 6 वर्ष की आयु में विभिन्न प्रकार के भिन्न—भिन्न षब्दों के वाक्य बोलने लगता है।**हाइडर (भ्मपकमत)** तथा **हाइडर (भ्मपकमत)**के अध्ययन से ज्ञात होता है। कि प्रारमभिक स्कूल वर्षो में बच्चे द्वारा प्रयोग किये गये वाक्यों में प्रति वाक्य षब्दोंकी संख्या धीरे—धीरे लगातार वृद्धि होती है।

आयु	श्रेणी	शब्द प्रति वाक्य(औसत संख्या)
8	3	10.2
9	4	10.9
10	5	11.1
11	6	11.1
12	7	12.8
13	8	13.7
14	9	13.9

भाषा विकास के अध्ययनों से पता चलता है कि बालिकाओं में बालकों की अपेक्षा भाषा विकास तीव्रता के साथ होता है। बालिकाओं की अभिव्यक्ति बालकों से अधिक अच्छी होती है। और वाक्यों में अधिक षब्द भी होते हैं। बालिकाओं में बालकों की अपेक्षा भाषा दोष भी कम पाया जाता है।

3.6 भाषा—विकास को प्रभावित करने वाले कारक
;थ्बजवते प्दसिदमदबपदह स्ंदहनंहम क्मअमसवचउमदजद्ध.

सभी बालकों में भाषा एक समान नहीं होती है, भाषा विकास की गति एवं दृष्टि से इनमें अत्यधिक अंतर पाया जाता है। यह भिन्नता निम्नलिखित प्रमुख कारकों के कारण होती है—

1. **शब्द – अर्थ सहचर्य ॅवतक डमंदपदह ेवबपंजपवद)**–बच्चे के भाषा–विकास पर शब्द–अर्थ सहचर्य का प्रभाव पड़ता है। किसी शब्द का अर्थ बच्चे कैसे ग्रहण करते है यह अनुबंधन प्रक्रिया पर निर्भर करता है। जैसे, यदि बच्चे को खिलौना दिखाकर, 'खिलौना शब्द बोला जाए, तो वह उसे वह शब्द एवं उसका अर्थ समझने लगता हैं। अतः शब्द को मूर्त रूप में या वह वस्तु का चित्र, रूप या त्री–विमिय–आयाम ;3.क्पउमदेपवदंसद्ध दिखाकर शब्द का उच्चारण करने पर बालक के मानस पहल पर उस वस्तु की प्रतिमा ;प्उंहमद्ध निर्मित हो जाती है। इस प्रकार जिन वस्तुओं की प्रतिमाएँ बच्चों के सामने अंकित हो जाती हैं वह उसे शीघ्र याद कर लेते है और उनके नामों की सरलतापूर्वक उच्चारित कर पाते हैं।

2. **अधिगम एवं अनुकरण (स्मंतदपदह ंदक प्उपजंजपवद)**– बच्चे की भाषा का अत्यधिक विकास वातावरण पर भी निर्भर करता है। अतः सीखने के मौके तथा अनुकरण प्रमुख तत्व है जो भाषा विकास में उत्तरदायी होते है। जो बच्चे परिवार, पड़ोस एवं साथियों के साथ ज्यादा बातचीत के अवसर पाते है, उनका भाषा विकास एवं शब्द ज्ञान भण्डार ज्यादा विकसित होता है। अतः बच्चों के साथ शुद्ध–भाषा, शुद्ध उच्चारण करना चाहिए। लोगों द्वारा बोले गए शब्दों एवं उनके उच्चारण का अनुकरण करने की प्रबल प्रवृत्ति भी होती हैं। यह प्रवृत्ति सामान्य बच्चों में 9–10 महीने की अवस्था में ही उत्पन्न हो जाती है। इसमें ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे जिन नमूने ;डवकमसेद्ध का अनुकरण करते है वे उपयुक्त प्रकार के हों। षिक्षित एवं सुसंस्कृत परिवार के बच्चे सुन्दर और षिष्ट भाषा का अनुकरण करते है तथा उनके शब्द भण्डार में अच्छे शब्दों का बाहुल्य होता हैं।

3. **अभिप्रेरणा ;डवजपअंजपवदद्ध** –बच्चे के भाषा–विकास पर अभिप्रेरणा का विषेष रूप से प्रभाव पड़ता है। छोटे बच्चों को माताओं और परिवार का प्यार–दुलार प्रेरणा का कार्य करता हैं। ऐसे में बच्चा माता द्वारा बोले गए शब्दों को दोहराने की कौषिष करता हैं।

4. **समाजिक एवं आर्थिक स्थिति;वबपंस म्बवदवउपब ैजंजनेद्ध** –जिन परिवारों की वित्तीय स्थिति उत्तम होती है तथा षिक्षित माँ–बाप की संतान भी शुद्ध, सभ्य शब्दों का उच्चारण भाषाओं में उपयोग करती हैं। उनमे बुरे शब्द का ज्ञान कम होता है। अतः उन बच्चों की माता–पिता बचपन से ही सही षिक्षा प्रदान करते हैं।

4.1 **बुद्धि ;प्दजमससपहमदबमद्ध** –बुद्धि के स्तर का भाषा के बोलने की योग्यता से घनिष्ट संबंध है। भाषा का विकास बुद्धि के स्तर के साथ चलता है। जिन बच्चों की पूर्ण रूप से बुद्धि–विकास

होता है वे जल्दी ही भाषा के क्षेत्र में विकसित हो जाते है। अधिक बुद्धि–लब्धि वाले बालको के भीतर सुन्दर शब्द–भण्डार, शुद्ध–उच्चारण, उपर्युक्त शब्द–चयन और शब्दों को जोड़कर वाक्य रचना करने की अधिक क्षमता पाई जाती हैं।

5. विभिन्न भाषाओं का प्रयोग;न्मे व िअंतपवने संदहनंहमेद्ध –जहाँ पारिवारिक सदस्यों के द्वारा एक से ज्यादा भाषा का प्रयोग किया जाता है। वहाँ बच्चे की भाषा विकास के क्षेत्र में रूकावट आने लगती है। क्योंकि उसे सभी भाषाओं के शब्दों को याद करना उनका पृथक उच्चारण करना जटिल लगता है। विभिन्न शोधों के परिणाम में यह पाया गया कि एक भाषा बोलने वाले बच्चे दो भाषा बोलने वाले बच्चों की अपेक्षा बुद्धि के क्षेत्र में अधिक पाये गये।

6. लिंग भेद ;ळमदकमत क्पमितमदबमद्ध –प्रायः लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ जल्दी बोलना शुद्ध करती हैं उनका शब्द–भण्डार भी लड़कों से अधिक व्यापक होता है। उनका उच्चारण भी शुद्ध होता हैं।

7. परिपवक्ता ;डंजनतपजलद्ध –बालक के फेंफड़े, गला, जीभ, होंठ, दाँत, स्वर–यंत्र तथा मस्तिष्क के वाणी केन्द्र आदि अंगों में दृढ़ता एवं परिपक्वता आती जाती है, वैसे ही बच्चों की वाणी का विकास होता जाता है। इससे अधिगम प्रारम्भ होता है जो कि एक समायोजन है जो परिपक्वता पर आधारित होता हैं।

3.7 बच्चों की भाषा कौषल का मार्गदर्षनः द्विभाषी एवं बहुभाषी कक्षाओं के विषेष संदर्भ में

भाषायी कौषलों के षिक्षण की दृष्टि से बालक की षिक्षा के प्राथमिक स्तर का महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चों की शैषवावस्था एवं बाल्यावस्था में अनुकरण प्रवति बड़ी तीव्र होती है और भाषा अनुकरण से सीखी जा सकती है। अतः प्राथमिक स्तर पर बच्चों को बहुत सुगमता एवं सहजता के साथ इन भाषायी कौषलों का अभ्यास कराया जा सकता है। कौषलों में दक्षता के लिए अभ्यास ही आवष्यक होता है इसलिए बच्चे की छोटी आयु से ही उसे भाषयी कौषलों का अभ्यास कराया जाता है तो वह उन पर पूर्णता के साथ अधिकार प्राप्त कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राथमिक स्तर पर पहली कक्षा में प्रवेष करते ही भाषायी ज्ञान शुरू हो जाता है। इसमें आवष्यक यह है कि अध्यापक यह पता लगाये कि बालक का पूर्व ज्ञान क्या है। इसी आधार पर वह चारों भाषायी कौषलों का विकास कर सकता है। प्रथम कक्षा से ही बच्चों को शुद्ध उच्चारण, शुद्ध बोलने, पढ़ने–लिखने का अभ्यास करवाना शुरू कर देना चाहिए। इस आयु में

बालक की माँसपेषियों में भी लचीलापन होता है। लिखित कौषल विकसित करने की दृष्टि से सुन्दर लेख को अभ्यास कराने के लिए यही समय सर्वथा उपयुक्त है। बालक की उंगलियों को हम विभिन्न वर्णो के लेखन की दृष्टि से जिन दिषाओं में घुमाने का अभ्यास करा देगें वह आयुपर्यन्त के लिए स्थाई प्रभाव छोड़ देगा। यही बात उच्चारण एवं मौखिक अभिव्यक्ति की है। यदि बालक की जीवा को उचित स्थान का स्पर्ष करने का अभ्यास कराकर उसे शुद्ध ध्वनि उच्चारण सिखाया जा सकता है इससे हमेषा के लिए बालक की मौखिक अभिव्यक्ति में शुद्ध उच्चारण रहेगा। इसी प्रकार बोलचाल के लिए भी अवसर प्रदान कर बच्चों की हिचक व संकोच दूर कर उसमें बोलने के लिए आत्मविष्वास पैदा कर दिया जा सकता है। इससे वह बालक जीवन में किसी भी क्षेत्र में विचार अभिव्यक्ति में निपूर्ण रहेगा।

अध्यापक बाल व्यवहारः–

आवष्यकता इस बात है कि अध्यापक का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण हो, बच्चे के मन से डर दूर कर दिया जाये, उसे खुलकर बोलने के अवसर प्रदान किये जाऐं तथा उसकी त्रुटियों को समझाकर दूर किया जाये। विद्यालय में विभिन्न प्रकार की भाषा संबंधी क्रियायें एवं खेल आयोजित किये जायें जिनमें इन कौषलों के अभ्यास को अवसर मिले। इस प्रकार सुनकर, विचार एवं भाव ग्रहण करने, बोलकर विचार व्यक्त करने, पढ़कर अर्थ ग्रहण करने एवं लिखकर विचार व्यक्त करने की पहली सीढ़ी है। यह प्राथमिक स्तर ही षिक्षा के भारी स्तरों का निमार्ण करता है। प्राथमिक स्तर पर विकसित की गई योग्यताएँ एवं कौषल ही माध्यमिक एवं उच्चतर स्तर तक सदैव विकसित होती रहती हैं। अतः प्राथमिक स्तर पर चारों कौषलों लिखना, पढ़ना, सुनना एवं बोलना का ठीक रूप से ज्ञान एवं अभ्यास बहुत जरूरी है। अध्यापक को इस विषय में सावधान रहना चाहिए।

द्विभाषी कक्षाऐं ;ठपसपदहनंस ब्सें त्ववउद्ध. भारत में अनेक भाषाऐं बोली जाती हैं हमारे देष में प्रत्येक राज्य की अपनी मात्र भाषा है और वहां पर षिक्षा का माध्यम बनी है। अतः षिक्षण अधिगम प्रक्रिया अधिक प्रभावषाली बनाने हेतु मात्र भाषा का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति में दो भाषाओं का प्रयोग होता है। एक भाषा वह जो बच्चे सीख रहें हैं अर्थात् हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत इत्यादि तथा दूसरी भाषा है मात्र भाषा के सही प्रयोग की अनुमति रहती है। मात्र भाषा का प्रयोग एक तरह से एक संषाधन के रूप में होता है। यहां मात्र भाषा के कठिन शब्दों के अर्थ समझाने में तथा उन्हें याद रखने में प्रयोग किया जाता है।

द्विभाषी कक्षाओं की विषेषताएँ –

1. मातृभाषा के उचित उपयोग से भाषा के अधिगम पर पकड आसान हो जाता है। तथा नियोजित भाषा आसानी से सीखी जा सकती हैं।
2. आमूर्त विचारों को सरलता से मातृभाषा से समझा जा सकता हैं।
3. अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावी एवं रोचक बनाया जा सकता हैं।
4. इन कक्षाओं में पढ़ने एवं लिखने को भाषा षिक्षण में जल्दी शुरू कर दिया जाता है। तथा बोलने एवं लिखने में समायोजन या एकीकृत रूप से दोनो कौषलो ाक प्रयोग होता हैं।
5. इन कक्षाओं में षिक्षक मातृभाषा का प्रयोग ज्यादा करता हैं।
6. यह ग्रामीण तथा शहरी दोनो तरह के विद्यालयों में प्रयोग की जा सकती हैं।

आज अंतराष्ट्रीय संदर्भ में देखते हुए वैष्विक स्तर पर अंग्रेजी भाषा का अपना महत्व है। भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी को भारत की राजभाषा बनाया गया हैं। हिन्दी भाषा प्रदषों में हिन्दी ही राजभाषा एवं मातृभाषा हैं।

हिन्दी प्रांतों में हिन्दी को अन्य भाषाओं के रूप में पढ़ाया जाता हैं। मातृभाषा का प्रयोग व सीखना बालक घर और आस–पास के वातावरण से ही सीख लेता है। अतः स्पष्ट है कि बालक मातृभाषा को स्वाभाविक रूप से सीखता है, जबकि अन्य भाषा को प्रयासों से सीखता हैं। इसीलिए मातृभाषा में बालक सहजता व सरलता अनुभव करता है, जिस भाषा में हम षिक्षा पाते है वह माध्यम भाषा बन जाती है। मातृभाषा भावभिव्यक्ति एवं विचारों के आदान प्रदान का सरल माध्यम होती हैं। तथा सीखने का आसान साधन होती है। प्रांरभिक षिक्षा का माध्यम व आधारषिला मातृभाषा ही होती हैं।

बहुभाषिक कक्षा (डनसजपसपदहनंस ब्सें त्ववउ) –

बहुभाषिक कक्षा से अभिप्राय है, कि जब एक कक्षा में विभिन्न भाषाओ को बोलने वाले बच्चे पढ़ते है तो वह बहुभाषिक कक्षा कहा जाता हैं। भारतीय संविधान की आठ वीं अनुसूची में 22 भाषांए षामिल है, जो कि निम्नलिखित है–

ैण्छवण	स्ंदहनंहम
1	असनिया
2	उड़िया
3	उर्दू
4	कन्नड

ज्ंइसम 3ण्7ण्1.

5	कश्मीरी
6	कोंकणी
7	गुजराती
8	डोंगरी
9	तमिल
10	तेलगू
11	नेपाली
12	पंजाबी
13	बांग्ला
14	बोडो
15	मणिपुरी
16	मराठी
17	मलयालम
18	मैथिली
19	संथाली
20	संस्कृत
21	सिंधी
22	हिन्दी

उदाहरण हैदराबाद एक मैट्रोपॉलीटन षहर है। जिस कारण यहा भारत के विभिन्न राज्यो से लोग यहा पर रहते है। यहाँ तेलगू तथा उर्दू मातृभाषा है, हिन्दी व अंग्रेजी जानने वाले भी बहुत कम लोग रहते है। अतः यहा यह सभी भाषाऐं में पढ़ाई होती है। हिन्दी यहाँ दूसरी व तीसरी भाषा के तौर पर पढ़ाई जाती है। इस षहर में बहुभाषिक कक्षा का होना साधारण बात है।

अधिकतर षहरी क्षेत्रों में हमें बहुभाषिक कक्षाएं मिलती है भारत की बहुभाषिक स्थिति के अनुरूप बच्चों के मानसिक स्तर के अनुसार त्रिभाषा–सूत्र बनाया गया है, जिसके अनुसार बच्चो को विद्यालय स्तर पर भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना है। त्रिभाषा–सूत्र के अनुसार – माध्यमिक स्तर पर बालक को कम से कम तीन भाषाएं पढ़नी होगी जो निम्नलिखित है –

1. मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा की षिक्षा
2. केन्द्र की राजभाषा हिन्दी या सहराज भाषा अंग्रेजी
3. एक भारतीय भाषा या विदेषी भाषा जो षिक्षा के माध्यम से अलग हो

3.8 भाषा, समाजिक और संस्कृतिक भिन्नता–

भाषा मनुष्यों में बातचीत करने का माध्यम है।भाषा संस्कृति का अंग होता है, इसलिए भाषा का विकास, संस्कृति का ही विकास है।

''पावलोव (च्ंअसवअद्ध के अनुसार''–"स्थूल चिंतन पषु में भी होता और विचार–प्रक्रिया के निम्नतम धरातल पर पशू एवं मानव मे अंतर नहीं है। मनुष्य भाषा की रचना दो प्रमुख कारणों से कर

सका। प्रथम, मनुष्य के जीवन की परिस्थितियाँ पषुओं से भिन्न थी। दूसरा, मनुष्य की शारीरिक विषेताएं है, जिन्हें वह ध्वनि–संकतो को रचने और उनका व्यवहार करने में सक्षम हुआ।"

किसी ध्वनि–विषेष से किसी वस्तु अथवा कार्य का संबंध जोड़ना, यह व्यवहार पशु तथा मनुष्य, दोनो में देखा जाता है। यहीं भाषा की उत्पत्ति आरम्भ होती है। मनुष्य के 'मनुष्य' होने की पहली षर्त है – "भाषा"। भाषा से मानव मनुष्यत्व को प्राप्त करता है। भाषा अपने आप को पहचानने का एक उत्तम साधन है।

आज अगर किसी समाज को भाषाहीन कर दिया जाए या उसे दूसरी भाषा दे दी जाए तो इससे हम उसकी अस्मिता को प्रभावित करते है। अतः भाषा ही वह सर्वश्रेष्ठ तत्व है, जिसके द्वारा हम मानव मूल्यों का सृजन करते है। मानव अपने ही द्वारा र्निमित मूल्यों को अपने से भी बढ़ा मानता है तथा उसको रक्षा के लिए हमेषा प्रतिबद्ध रहता है। भाषा, संरचना पर आधारित होती है, इसलिए भाषा तंत्र का स्वरूप संरचनात्मक होता है।भाषा–तंत्र सदैव समकालिक होता है। भाषा के बोलते ही उसके विन्यस्त होने का अनुभव होता है, इसलिए घ्वनि सिद्धांत भाषा का आधार भूत संरचनात्मक सिद्धांत है।

भाषा व्यवहार में विषमरूपी होती है तथा शषा प्रयोग के अनेक विकल्पन (टंतपंजपवदे) मिलते है। विकल्पन, न तो यादृच्छिक होते है और न ही किसी त्रुटि के परिणाम। भाषा–विकल्पन सामाजिक अर्थ का प्रकाषक भी है तथा भाषा विकास का प्रभावषाली कारक भी है। नियम सापेक्ष्य होने के कारण यह विकल्पन भाषिक–व्यवस्था के भीतर एक 'उपव्यवस्था' का निर्माण करता है। अतः भाषा अपने आमूर्त तथा कल्पित रूप मे ही एक समरूप भाषा व्यवस्था की धारणा को सामने लाती है। भाषा मे जितने भी प्रकार के भाषा–भेद दिखाई पड़ते है इन सभी से संबंध एक व्याकरण भी दिखाई पड़ता है। इन सभी से संबंद्ध एक व्याकरण भी दिखाई पड़ता है। इस संदर्भ मे चित्र 1.0 देखें–

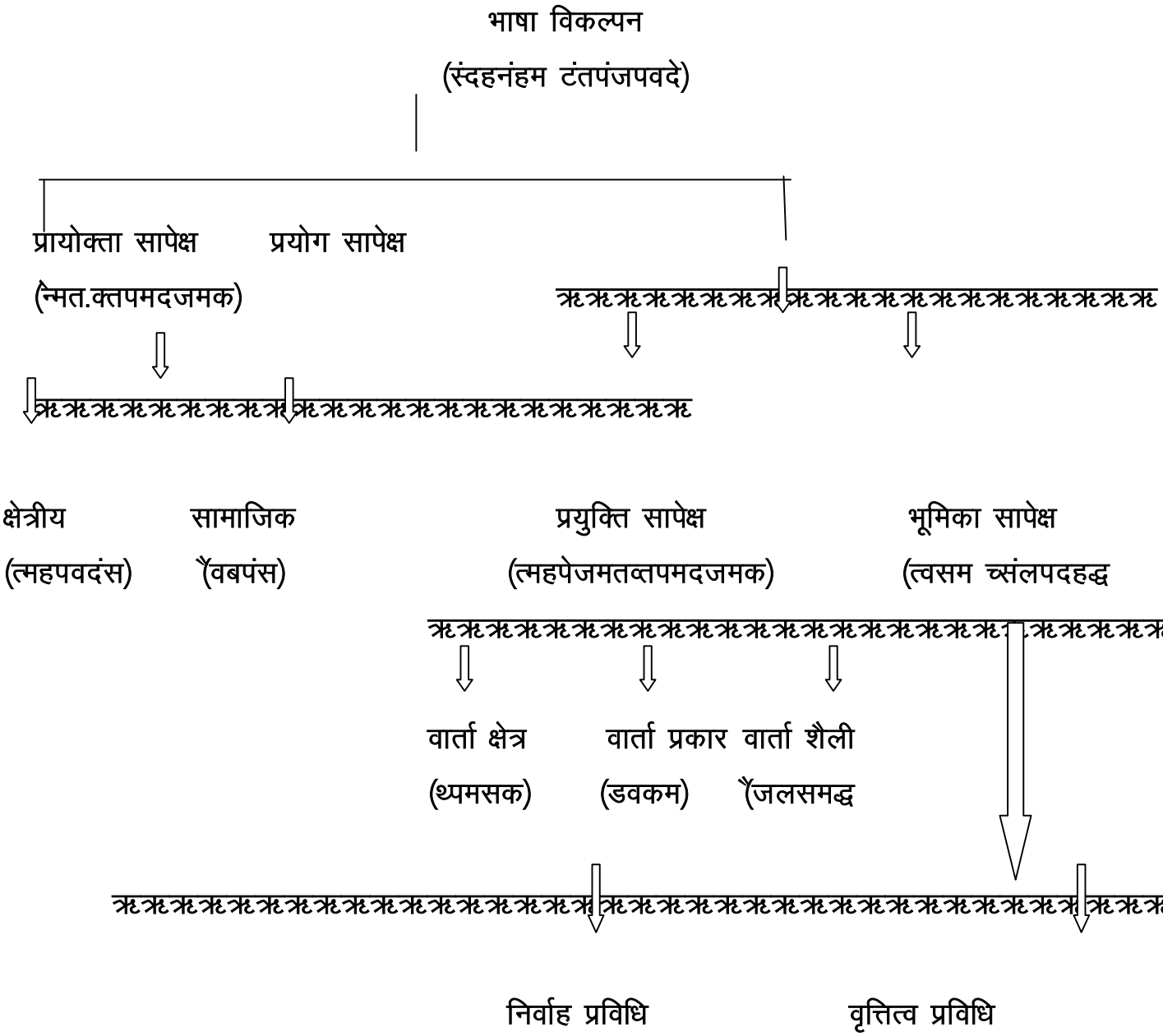
भाषा विकल्पन
(स्ंदहनंहम टंतपंजपवदे)
प्रायोक्ता सापेक्ष
(न्मत.क्तपमदजमक)
प्रयोग सापेक्ष
क्षेत्रीय
(त्महपवदंस)
सामाजिक
(वबपंस)
प्रयुक्ति सापेक्ष
(त्महपेजमतव्तपमदजमक)
भूमिका सापेक्ष
(त्वसम च्संलपदहद्ध
वार्ता क्षेत्र
(थ्पमसक)
वार्ता प्रकार
(डवकम)
वार्ता शैली
(जलसमद्ध
निर्वाह प्रविधि
वृत्तित्व प्रविधि

यह तो सर्व विदित है कि प्रत्येक भाषा–क्षेत्र का अपना एक भिन्न समाज होता है। तथा मनुष्य अपने आस–पास के समाज से ही भाषा सीखता है। यही भाषा उसके परिवेष तथा समाज के भीतर ही प्रभावी होती है। अतः भाषा–प्रेम समाज सापेक्ष होता है। इसी कारण भाषा का अध्ययन समाज के संदर्भ में ही पूर्ण होता है।

- भाषा ही मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने के सबसे बड़ा प्रमाण है।
- भाषा से ही मनुष्य की गति एवं प्रगति होती है।
- भाषा के सहयोग से भी समाज का निर्माण होता है।
- भाषा संप्रेषण का सषक्त माध्यम होने के साथ ही संस्कृति की संवाहक भी होती है।
- वस्तुतः 'भाषा' संस्कृत की भाषा धातु से उत्पन्न है। उसका अभिप्राय है–"व्यक्त वाणी"।
- भाषा से हमारा आषय मनुष्य की व्यवस्थित ध्वन्यात्मक भाषा से होता है। इस व्यवस्था में बात–चीत के साथ–साथ इतिहास तथा संस्कृति को भी समृद्ध है।
- भाषा एक सामाजिक संपत्ति है।
- भाषा का प्रयोग मनुष्य परस्पर विचार विनिमय के लिए करता है। यही भाषा उसके इतिहास और संस्कृति को समृद्ध बनवाती है। मनुष्य की भाषा से ही सारे विचार भली भांति प्रकट होते हैं। इसीलिए मानव–भाषा को ही 'व्यक्त भाषा' कहा जाता है तथा अन्य दूसरी भाषाओं की 'अव्यक्त भाषा' कहा जाता है।

3.8.1 उच्चारण ; ।बबमदजेद्ध.

समाजिकसंरचना, भाषासंरचना, या भाषा व्यवहार को निर्धारित एवं नियंत्रित करती है। इस रूप में भाषा और समाज में वक्ता–श्रोता की आयु, क्षेत्र, सामाजिक वर्ग आदि भेद, भाषा के व्यवहार में भी भेद लाते है। अतः भिन्नता के निम्न तीन प्रारूप हैं–

1. आयु–बच्चो का भाषा प्रयोग, वयस्को से भिन्न्न होता है।
2. क्षेत्र–राजस्थान या दिल्ली में रहने वालो की हिन्दी पटना या उत्तरप्रदेष की हिन्दी से भिन्न होती है।
3. सामाजिक वर्ग– उच्चवर्ग का भाषा प्रयोग निम्न वर्ग से भिन्न होता है।

इन भेदो में षब्दोका चयन, वाक्यों का चयन सामाजिक नियमो से बँधे होते है।वही इसके विपरीत हम पाते है कि भाषीय–संरचना, सामाजिक–संरचना या सामाजिक व्यवहार को निर्धारित करती है।

उदाहरण – आदरवष किसी के लिए 'आप' प्रयोग किया जाता है। यहाँसामाजिक संरचना भाषा को नियंत्रित करती है।यही कारण है कि हम 'तू', 'तूम' के बजाए 'आप' को प्रयोग करते है। यह सिद्ध होता है कि भाषा–संरचना हमारे सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करती है।
अतः भाषा और समाज का परस्पर संबंध अटूट है। किसी भी राष्ट्र के सास्कृतिक विकास के लिए भाषा और समाज आवष्यक है।

- 'भाषा' का प्रयोग मानव समुदाय करता है जो कि एक समाज के रूप में अपनी एक विषेष संस्कृति के साथ विकासषील होता है।
- सस्कृति एवं भाषा से ही मनुष्य के सामाजिक स्तर का संज्ञान होता है।
- बिना समाज के संस्कृति की सत्ता असंभव है तथा भाषा, संस्कृति का सत्ता के लिए एक अनिवार्यता है। भाषा संस्कृति के अनुरूप ही बनती सँवरती है। भाषा समाज का प्रयोग और संस्कृति की संरचना का परिचय देता है।

3.8.2 बहुभाषीय कक्षा के लिए सम्प्रेषण में अंतर –

वैश्वीकरण ने विभिन्न समुदायों को एक दूसरे के सम्पर्क में रहने के लिए बाध्य कर दिया है और हमे बहुभाषीय सम्प्रेषण को समझने के लिए मजबूर कर दिया है। परिवर्तन, प्रवासीय समुदाय, अर्न्तदेशीय संबंध पलायन एवं डिजिटल सम्प्रेषण जैसे परिवर्तन ने ओर अधिक मात्रा में बहुभाषीय संवाद स्थापित किये है। जिस प्रकार से लोग भाषा से संबंध स्थापित करते है, यह देखा जाता है कि जिस प्रकार अलग–अलग भाषाओं में दक्षता हासिल करते है भाषा ग्रहण करने और दक्षता हासिल करने का जो पारम्परिक मॉडल है वर्तमान अनुभवी को समझाने में वह अक्षम है या क्षमता नहीं रखता है।

- स्कूल का पहला सरोकार बच्चे की भाषा क्षमता का विकास से है। अभिव्यक्ति तथा साक्षरता संबंधी क्षमता भाषा को रचने, सोचने और संप्रेषण में उपयोग की क्षमता शामिल है।
- बहुभाषी कक्षा में संचार भावी शिक्षकों को आवश्यक संप्रेषण और कक्षा साक्षरता के साथ्ज्ञ जोड़कर द्विभाषिकता की नीति का पालन करने के लिए प्रेरित करती है, यह शिक्षार्थियों की अपनी भाषा के साथ अन्य भाषाओं की भी महत्व देती है। यह सीखने के माहौल में कई अलग–अलग स्तरों पर कई लोगों के साथ बातचीत करने के लिए एक उपयोगी एवं समद्ध मार्गदर्शन है।

- कक्षा कक्ष समुदाय में छात्रों और शिक्षकों के बीच अंतरक्रिया की कक्षा कक्ष गतिशीलता कहते है। इसमें एक सकारात्मक कक्षा का माहौल बनाने की सार्थक्ता रहती है। इससे छात्र सहजता के साथ छात्रों एवं शिक्षकों के साथ सम्प्रेषण स्थापित कर पाते है। तथा इसमें सभी की भागीदारी रहती है। यह एक प्राकृतिक परिस्थिति नहीं है इसीलिए इसका निर्माण योजनापूर्ण तरीके से करना चाहिए।
- अनुशासन– शिक्षक को कक्षा के आरम्भ से ही छात्र अपेक्षित व्यवहार के बारे में जानकारी दे देनी चाहिए। यह शिक्षकों के लिए बहुत सहायक होात है जब उन्हें कोई चर्चा अथवा प्रतिपुष्टी लेनी होती है।
- अभिप्रेरणाः– छात्र तभी प्रेरित होते है जब कक्षा कक्ष की गतिशीलता का मुख्य केन्द्र उनके लक्ष्य एवं रूचित के अनुरूप हो। इन कक्षाओं में इतना लचीलापन होने चाहिए कि वह सब की समायोजित कर सब की सहभागिता को सुनिश्चित कर सके।

3.8.3 द्विभाषी एवं बहुभाषी बच्चे –

शैष्ववास्था में बच्चों को दो भाषाएं सीखनी पड़ती हैं।जिसमें एक है मातृभाषा या घर की भाषा तथा एक अन्य भाषा, अतः जब बच्चे वो भाषाओं को बोलते एवं समझते है तो वह द्विभाषी कहलाते है। घर की भाषा या मातृभाषा तो इसके अंतर्गत घर की भाषा, बड़े कुनबे की भाषा, आस–पड़ोस की भाषा आदि आती है, जो बच्चा स्वाभाविक रूप से अपने घर और समाज के वातावरण से ग्रहण कर लेता है। बच्चों में भाषा की जन्मजात क्षमता होती हैं। अधिकार बच्चे, स्कूल की षिक्षा की शुरूआत से पहले ही भाषा की जटिलताओं और नियमों को आत्मसात कर पूर्ण भाषिक क्षमता रखते है। वे न केवल उन भाषाओं को सही–सही बोल लेते है, बल्कि उनका उचित प्रयोग भी कर रहे होते है।

भाषाएँ एक प्रकार से स्मृतिकोष का भी काम करती है, जिसमें अपने सहवक्ताओं से विरासत में मिले संकेतों के साथ अपने जीवन काल में बनाए संकेत भी शामिल होते हैं। ये वे माध्यम भी है जिनमें अधिकतर ज्ञान का निर्माण होता है, इसलिए इनका मनुष्य के विचार और उसकी अस्मिता से गहरा संबंध होता है। प्रभावी समझ एवं भाषाओं के प्रयोग के माध्यम से बच्चे विचारों, व्यक्तियों और वस्तुओं तथा अपने आसपास के संसार से अपने आपको जोड़ पाते हैं।

बहुभाषी बच्चे वह होते है जो दो से अधिक भाषाओं को बोलते एवं समझते हो। बहुभाषिकता, बच्चों की अस्मिता का निर्माण करती है, जो कि भारत के भाषा परिदृष्य का विषिष्ट लक्षण है, उसका संसाधन के रूप में प्रयोग, उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाना तथा उसे लक्ष्य के रूप में रखना रचनात्मक भाषा षिक्षक का कार्य हैं। यह केवल उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं है, अपितु इससे यह भी सुनिष्चित हो सकता है, कि हर बच्चा स्वीकार्य और संरक्षित महसूस करे और भाषिक पृष्ठभूमि के आाधार पर किसी को पीछे न छोड़ा जाए।

बहुभाषिकता से संज्ञानात्मक लाभ होते है। त्रिभाषा–फॉर्मूला भारत की भाषा–स्थिति की चुनौतियों और अवसरों को संबोधित करने का एक प्रयास हैं। यह एक रणनीति है जिसे कई भाषाएँ सीखने का मार्ग प्रषस्त होता है। इसे कार्यरूप एवं भावरूप दोनों ही में अपनाने की आवष्यकता है। इसका प्राथमिक उद्ेष्य भारत में बहुभाषिकता और राष्ट्रीय सद्भाव का प्रसार हैं।

3.8.4 षिक्षकों के लिए निहितार्थ :– द्विभाषा के संदर्भ में वह बच्चे आते हैं, जिनकी घर तथा विद्यालय में एक से अधिक भाषा पर पहुँच है। छब्ब् 2000 के अनुसार यह तीन मजबूत सिद्धांतों के आधार पर दिया गया है।

- उपयुक्त अधिगम की चुनौतियाँ रखना
- विद्यार्थियों की विविध अधिगम आवष्यकताओं की प्रतिक्रिया/जबाब देना
- अधिगम में सक्षम अवरोधों पर काबू पाना एवं विद्यार्थियों का समूह एवं एकल मूल्यांकन

प्राथमिक राष्ट्रीय रणनीति मोडल के तीन वृत्तों का समावेष इन तीन सिद्धांतों की कार्यप्रणाली को दर्षाता है।

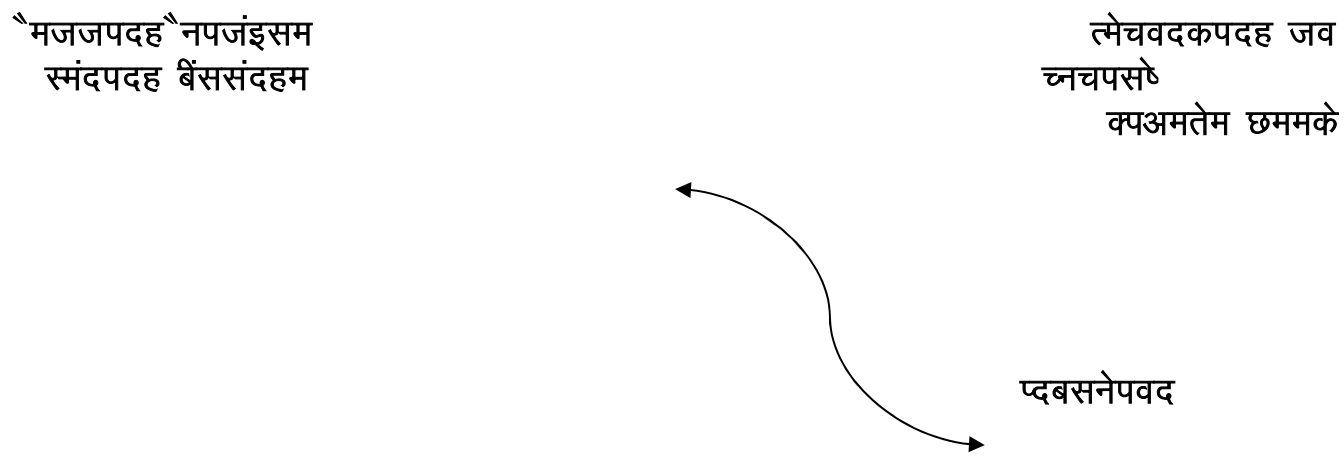

एकल विद्यार्थियों के लिए षिक्षकों को षिक्षण सामग्री को अनुकूल बनाना पड़ेगा। विषेष चुनाव हेतु उपयुक्त अधिगम उद्देष्य, षिक्षण शैली एवं अभिगम रणनीति षिक्षकों सूचित व्यवसायिकता के साथ निहित है जो कि षिक्षित साहयकों एवं अन्य पेषेवर या व्यवसाय तथा माता–पिता एवं बालक के साथ कार्य करते हैं।

हमारी षिक्षण–प्रणाली को अधिगम के लिए सही स्थितियाँ प्रदान करनी चाहिए जो कि समानता के अवसर प्रदान करने का समर्थन कर सके। षिक्षक के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वह बच्चों कि सहज भाषायी क्षमता को पहचाने और याद रखे कि भाषायें सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से बनती हैं तथा हमारी दैनिक व्यवहार से बदलती हैं। षिक्षा में भाषाओं के लिए आदर्ष यही है कि उनका इसी संसाधन के आधार पर विकास हो और अकादमिक भाषा के रूप में इसे विकसित करने के लिए समृध किय जाए। यह षिक्षक का कार्य है कि वह, जिन बच्चों में भाषा संबंधी अक्षमतायें हों, उनके लिए मानक सांकेतिक भाषा अपनायी जाए। इससे बच्चों का सतत् एवं पूर्ण भाषा विकास हो सकेगा। विद्यार्थियों की भाषिक क्षमता की पहचान से उनका स्वयं तथा अपनी सांसारिक जड़ों के प्रति विष्वास बढ़ेगा।

छात्रों में द्विभाषा तथा बहुभाषीय क्षमता से संज्ञानात्मक वृद्धि, सामाजिक सहिष्णुता, विस्तृत चिंतन और बौद्धिक उपलब्धियों के स्तर को बढ़ा देता है। सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर बहुभाषिकता एक ऐसा संसाधन है जो अतुलनीय है। बहुभाषिय भाषा षिक्षण के लिए षिक्षक को स्वयं बहुभाषिय होना आवष्यक है। इसके लिए उसे रणनीति तैयार कर पढ़ाना चाहिए। षिक्षकों को प्राथमिक स्तर पर स्कूली षिक्षा के माध्यम से करानी चाहिए। इस स्तर पर बच्चों की भाषाओं को बिना सुधारे उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए। कक्षा तीन के बाद मौखिक और लिखित माध्यम से उच्च स्तरीय संवाद कौषल के प्रयास होने चाहिए। कक्षा चार के बाद समृध और रूचिकर अवसर दिये जाने चाहिए, तो बच्चे स्वयं इसे भाषा के मानक रूप में ग्रहण कर लेंगे।

भाषा षिक्षण केवल भाषा की कक्षा तक सीमित नहीं होता। अन्य सभी विषयों की कक्षाओं में भी भाषा के प्रयोग द्वारा होती हैं। इसीलिए विद्यार्थियों को कुछ विषयों में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि वह अलग–अलग पुस्तकों का अध्ययन करें। उन भाषाओं में बातचीत करें, इंटरनेट से अंग्रेजी सामग्री एकत्रित करें, भाषा को लेकर पाठ्यचर्या में ऐसी नीति अपनाये

जिससे विद्यालयों में बहुभाषिकता को बढ़ावा मिले। कहानी, कविता, गीतों और नाटकों के माध्यम से बच्चों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर से जोंड़े। इन सब अनुभवों से छात्र दूसरों के प्रति संवेदनषील बनें।

3.10 सारांष ;नउउंतलद्ध.

- भाषा विकास बालक के मानसिक विका का एक पक्ष है। भाषा विकास के जिन रूपों से गुजरता है वह हैं– (क) वाक्षक्ति या बोलने का पूर्वरूप, (ख) समझने योग्य वाक्षक्ति का विकास, (ग) शब्द–भण्डार में वृद्धि (घ) उत्तरों की लम्बाई में वृद्धि।
- वाक्षक्ति का विकास क्रमानुसार निम्नलिखित चरणों में होकर गुजरता है–

  1. रोना या चीखना– यह क्रिया जन्म से ही होने लगती है। धीरे–धीरे एक वर्ष के अंत तक अपनी आवष्यकताओं और इच्छाओं का रोकर या चीखकर व्यक्त करता है।

  2. अस्पष्ट ध्वनियाँ– यह तीसरे और बारहवें माह की अवस्था है। बच्चा पा–पा, बा–बा, दा–दा, मा–मा, आदि ध्वनियों का उच्चारण आरम्भ कर देता है।

  3. भाव–संकेत– यह सम्पूर्ण शारीरिक भाषा कहलाती है क्योंकि बालक शारीरिक हाव–भाव से अपनी इच्छा को प्रकट करता है।

  4. बोलना– यह बारह से अट्ठारह माह के बीच की अवस्था है। इसमें बालक पहले एक शब्द का वाक्य बोलना आरम्भ करता है।

- समझने योग्य वाणी का विकास दूसरे और तीसरे वर्ष होता है। बालक इस आयु में सरल एवं छोटे–छोटे वाक्य बोलने लगता है और सुनकर दोहराने लगता है।

शब्द भंडार में वृद्धि निम्न प्रकार होती है– 4, 5, 6, 7, 8 और 10 वर्ष की आयु का शब्द–भंडार क्रमषः 5,600ः 9,600ः 14,700ः 21,200ः 26,300ः और 34,300 होता है।

डॉ. मेक्कार्थी के अनुसार छठी श्रेणी के बच्चे का शब्द–भंडार लगभग 50,000 शब्द होता है। उसके शब्द भंडार में निम्न प्रकार के शब्दों का समावेष होता है– ;पद्ध 6 से 7 वर्ष– षिष्टाचार एवं खाने–पीने सम्बन्धी शब्द।

;पपद्ध 7 से 8 वर्ष – समय सूचक शब्द, साधारण संख्याओं का अर्थः

;पपपद्ध 10 से 11 वर्ष – षुद्ध उच्चारण , उपयुक्त शब्दों द्वारा विचार व्यक्त करना

;पअद्ध 11 से 12 वर्ष – शपथ शब्द, गुप्त भाषा के शब्द तथा संकेत शब्द।

उत्तरों की लम्बाई के क्रमानुसार वृद्धि होती है। 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14 वर्ष के बच्चों द्वारा बोले गये वाक्यों में प्रतिवाक्य शब्दों की औसत संख्या क्रमषः 10.2, 10.9, 11.1, 12.8, 13.7 तथा 13.9 पायी गयी है।

बालिकाओं का भाषा–विकास, बालको की अपेक्षा तीव्र और शुद्ध रूप में होता है।

- **भाषा –विकास को प्रभावित करने वाले कारक–**

  1. शब्द–अर्थ सहचर्य
  2. अधिगम एवं अनुकरण
  3. अभिप्रेरणा
  4. सामाजिक आर्थिक स्थिति
  5. बुद्धि
  6. विभिन्न भाषाओं का प्रयोग
  7. परिपक्वता

- **भाषा –विकास का शैक्षिक अभिप्राय–** मानव–जीवन में विचारों तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में भाषा का प्रमुख स्थान है। इसलिए अभिभावकों, षिक्षकों, विद्यालयीय प्रषासनों का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वे इस ओर सचित रहें। उचित भाषा–विकास के लिए आवष्यक है कि बच्चों के साथ बातचीत की जाय, अपनी भाषा और उच्चारण की ओर ध्यान रखा जाय, पत्र–पत्रिकायें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, विद्यालय में वाद–विवाद शषाण, नाटक आदि क्रिया–कलापों पर बल दिया जाय और प्रत्येक बालक को उनमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

3.10 अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

- ग्रहणीय कौशलों को विस्तारपूर्वक समझाइये।
- अभिव्यंजनात्मक कौशल क्या है?
- पठन एवं लेखन कौशलों के स्त्रोत एवं सामग्री की व्याख्या कीजिए।
- भाषा–विकास के विभिन्न चरणों की विवेचना कीजिए।
- भाषा–विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का उल्लेख कीजिए।
- मातृभाषा एवं माध्यम भाषा में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

- भाषा का संस्कृति एवं समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है।
- बहुभाषिक कक्षा में शिक्षक की भूमिका की स्पष्ट कीजिए।
- द्विभाषी एवं बहुभाषी बच्चों में अन्तर स्पष्ट करें।
- शिक्षकों के लिए भाषा–विकास के शैक्षिक अभिप्राय क्या है?

3.11 नियत कार्य

- भाषा–विकास क्या है? इसके चार प्रमुख कौशलों का उल्लेख करते हुए बच्चों में भाषा–विकास कैसे किया जा सकता है?
- किसी भी भाषा के शिक्षण के लिए भाषायी दक्षताओं का विस्तृत ज्ञान होना क्यों आवश्यक है? उदाहरण सहित चर्चा कीजिए।
- मल्टीमीडिया भाषायी कौशलों के विकास में किस प्रकार महत्वपूर्ण हो सकता है? अपने विचार प्रस्तुत करें।
- लेखन कौशल द्वारा 200 शब्दों में इस विषय पर अपने विचार लिखिए–

  मेरे प्रिय शिक्षक

  या

  मेरी प्रिय पुस्तक

3.12 सन्दर्भ सूची

- बाला, शशि (2010). **हिन्दी शिक्षण विधियाँ**, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- शर्मा, रामनाथ एवं शर्मा, रचना (1996). **उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान**, अटलान्टिक पब्लिशर, नई दिल्ली।
- एन.सी.ई.आर.टी.(2006). **राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा**, 2005, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
- शुक्ला, ओ.पी. **शिक्षा मनोविज्ञान**, भारत बुक सेन्टर, लेखनऊ।
- सुलेमान, मुहम्मद (2002). **उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान**, मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली।

- चतुर्वेदी, शिखा, **हिन्दी शिक्षण**, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- तिवारी, पी.एल. (1992). **हिन्दी शिक्षण**, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- श्रीवास्तव, अखिलेश (2013). **विकासात्मक मनोविज्ञान**, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली।

बी. एड. प्रथम वर्ष
प्रथम प्रष्न पत्र
बाल्यवस्था, बाल विकास एवं अधिगम
खण्ड 3
संज्ञान एवं संज्ञानात्मक विकास
इकाई 1
अवधान

संरचना

1.1 परिचय

1.2 उद्देष्य

1.3 अवधान का अर्थ व प्रकृति

1.3.1 अवधान की विषेषताएँ

1.3.2 अवधान के निर्धारक कारक

1.3.3 अवधान के प्रकार

1.4 व्यवधान

1.5 अवधान का विभाजन

1.6 अवधान का विस्तार

1.7 संवेदना एवं प्रत्यक्षीकरण

1.8 स्मृति अर्थ एंव प्रकार

1.9 विस्मृति अर्थ एंव कारण

1.10 इकाई सारांषः याद रखने योग्य बातें

1.11 अपनी प्रगति की जॉच करें

1.12 गृहकार्य

1.13 चर्चा के विन्दु

1.14 गतिविधि

संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ. क्रांति वर्मा

1.1 प्रस्तावना– संज्ञान एक मानसिक प्रक्रिया है जो ज्ञानार्जन ओर समझ से संबंधित है इस प्रक्रिया में चिन्तन, स्मृति, निर्णय क्षमता, समस्या समाधान, कल्पना व प्रत्यक्षीकरण योजना सम्मिलित है। संज्ञान का तात्पर्य एक क्रम में सूचना ग्रहण करना, विष्लेषण करना, निष्चय करना व संचित करना इत्यादि है। ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से व्यक्ति द्वारा बाह्म वातावरण का ज्ञान संज्ञान है। जीवन की प्रत्येक क्रिया चाहे वह किसी के विषय में चिन्तन हो या तर्क स्मृति हो या अवधान व्यक्ति अपनी बुद्धि एवं विवेक के आधार पर किसी कार्य के परिणाम तक पहुचता है।

संज्ञानात्मक विकास का तात्पर्य बच्चों के सीखने और सूचनाएँ एकत्रित करने के तरीके से है इसमें अवधान, संवेदना, अनुभूति एवं स्मृति सम्मिलित हैं। बच्चा जैसे–जैसे बड़ा होता है। वैसे–वैसे उसकी मानसिक योग्यतायें और क्षमतायें बढती जाती हैं और वह ऐसी समस्याओं की जिन्हें बचपन में नही सुलझा पाता था आसानी से सुलझाने लगता है। संज्ञानात्मक विकास का अर्थ बालक की सभी मानसिक योग्यतायें एवं क्षमतायें हैं। जिनसे वह अपने परिवर्तनषील वातावरण से समायोजन करता है।

1.2 उद्देष्य –

- छात्र अवधान का अर्थ व प्रकृति जान सकेंगे।
- छात्र अवधान के निर्धारक तत्वों को समझ सकेंगे।
- छात्र संवेदना ओर अनुभूति के नियमों को जान सकेंगे।
- छात्र स्मृति के अर्थ एवं प्रकारों को समझेंगे।
- छात्र विस्मृति के सिद्धांतों एवं उसकी षैक्षणिक उपयोगिता को जानेंगे।

1.3 अवधान का अर्थ व प्रकृति– वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों में से किसी एक उद्दीपक पर ध्यान केन्द्रित करने की प्रक्रिया अवधान कहलाती है।

मैक्डूगल के अनुसार – "अवधान केवल उस इच्छा को कहते हैं जिसका प्रभाव ज्ञान प्रक्रिया पर रहता है।"

रॉस के अनुसारः– "अवधान विचार की वस्तु को मन के समक्ष स्पष्ट रूप से प्रकट करने की प्रक्रिया है।"

परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अवधान हमेषा ग्रहण किया जाता है। व्यक्ति हर समय अवधान में केन्द्रित रहता है।

जब हम यह कहते हैं कि अमुक छात्र अपना अवधान केन्द्रित नहीं कर रहा है इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह अवधान केन्द्रित तो है परन्तु वह अध्यापक की बात पर ध्यान नहीं दे रहा है। कई व्यक्ति बातें करते रहते हैं हम में से ऐसे भी व्यक्ति हैं जो समूह चर्चा पर ध्यान नहीं देते। वे अपनी अवस्था में केन्द्रित रहते हैं अवधान में ज्ञानेन्द्रियों का प्रभाव पड़ता है। अवधान की स्थिति भी सदैव एक सी नहीं होती कभी एक वस्तु पर अवधान केन्द्रित होता है तो कभी दूसरी वस्तु पर। यदि हमें एक साथ कई वस्तुओं पर विचार करना पड़े तो उस अवस्था में किया गया अवधान अस्थिर होगा।

डम्बिल के अनुसार – "अवधान अन्य वस्तुओं की अपेक्षा एक वस्तु पर चेतना का केन्द्रीकरण होता है।" अवधान में उद्दीपक चयन की प्रक्रिया सम्मिलित होती है क्योंकि एक समय पर व्यक्ति प्रस्तुत उद्दीपकों में से कुछ विषिष्ट उद्दीपक का ही चयन करते हैं तथा उन्हें चेतना के केन्द्र में लाते हैं।

1.3.1 अवधान की विषेषताएँ –

- एक मानसिक प्रक्रिया– किसी वस्तु या उदेद्ष्य की प्राप्ति के लिए उस पर अवधान करना एक मानसिक प्रक्रिया है।
- चेतना का केन्द्रीकरण– अवधान में एक वस्तु पर चेतना का केन्द्रीकरण होता है।
- अस्थिर स्वभाव– अवधान किसी वस्तु या पदार्थ पर बहुत कम समय के लिए टिकता है।
- उद्देष्यपूर्णता– व्यक्ति उसी वस्तु या पदार्थ पर अवधान केन्द्रित करता है जिसमें उद्देष्य की पूर्ति होती है।
- सीमित विस्तार– एक सामान्य व्यक्ति का अवधान विस्तार प्रायः 7±2 तक होता है।
- चयनात्मकता– वातावरण में उपस्थित अनेक उद्दीपकों में से व्यक्ति का अवधान केवल एक विषेष उद्दीपक पर केन्द्रित होता है।
- शारीरिक समायोजन– जब व्यक्ति किसी एक वस्तु पर अवधान केन्द्रित करता है तो उसकी माँसपेषियों का तनत्व, षरीर की मुद्रा तथा केन्द्रीय स्नायु – समायोजन कमी के अनुरूप हो जाते हैं।
- अन्वेषणात्मक– विष्लेषणात्मक एवं संष्लेषणात्मक प्रवृत्ति अवधान सदा नवीन वस्तुओं की खोज करता है नवीन वस्तुओं को खोजने पर व्यक्ति विष्लेषण व संष्लेषण करता है।
- मानसिक प्रक्रिया के तीन पक्ष – मानसिक प्रक्रिया के तीनों पक्षों ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक को अवधान में सम्मिलित किया गया है।

1.3.2 अवधान के निर्धारक कारक

अवधान के दो निर्धारक कारक हैं– बाहरी कारक एवं आन्तरिक कारक

(अ) बाहरी कारक – वातावरण संबंधी अनेक कारक अवधान को प्रभावित करते हैं जो निम्न है–

- तीव्रता – तीव्र ध्वनि व तीव्र प्रकाष शीघ्र ही व्यक्ति के अवधान को आकर्षित करती हैं।
- आकार – जैसे बड़े– बड़े पोस्टर हमारा अवधान आकर्षित करते हैं। छोटे आकार की अपेक्षा बड़े आकार की वस्तुएँ व्यक्ति का अवधान शीघ्र अपनी ओर आकर्षित करती हैं।
- नवीनता – नवीन वस्तुओं व नवीन भाषा की ओर अवधान शीघ्र केन्द्रित होता है।
- गति – वस्तु की गति हमारे अवधान को केन्द्रित करती है।

- परिवर्तन – परिस्थति में अचानक परिवर्तन से हमारा अवधान आकर्षित होता है।
- विषमता – दो वस्तुओं के समान गुणों में विषमता हमारे अवधान को आकर्षित करती है।
- पुनरावृत्ति – उत्तेजना की बारम्बारता व्यक्ति का अवधान अपनी ओर आकर्षित करता है।
- व्यक्तित्व रूप – वस्तुओं की निष्चित रूपरेखा व आकार हमारे अवधान को आकर्षित करती है।
- अवधि – अधिक उद्दीपन अवधि वाली वस्तुओं पर अवधान शीघ्रता से केन्द्रित होता है।

(ब) आंतरिक कारक – वे कारक जो व्यक्ति में विद्यमान होते हैं।

- रूचि – व्यक्ति अपनी रूचि की वस्तुओं, विषयों तथा पदार्थो की ओर शीघ्र अवधान देता है।
- उदाहरण – जिज्ञासा घटनाओं पर अवधानाकर्षित करती हैं
- पुर्वानुमान – बालक जिन तथ्यों को पूर्व से जानते हैं उन पर शीघ्रता से अवधान केन्द्रित होता है।
- स्वभाव – व्यक्ति विषेष स्वभाव के कारण विषेष विषयों पर अधिक अवधान देता है।
- आवश्यकताएँ – जो वस्तुएँ हमारी मौलिक आवष्यकताओं को पूरा करती हैं शीघ्र ही हमारे अवधान का केन्द्र बन जाती हैं।
- आदतें – आदत के कारण हमारा अवधान किसी कार्य या वस्तु की ओर स्वतः केन्द्रित हो जाता है।
- सार्थकता – जो उत्तेजनाएँ व्यक्ति को सार्थक लगती हैं। उन पर शीघ्र ही अवधान केन्द्रित हो जाता है।
- संवेग – भिन्न संवेगात्मक स्थितियों में हम वस्तुओं पर अलग ढ़ंग से अवधान देते हैं। जैसे प्रसन्न होने की स्थिति में व्यक्ति छोटी मोटी अनियमितताओं की ओर अवधान नहीं देता है क्रोधित होने की अवस्था में जरा सी भी अनियमितता हमारे अवधान से ओझल नहीं होती।

1.3.3 अवधान के प्रकार

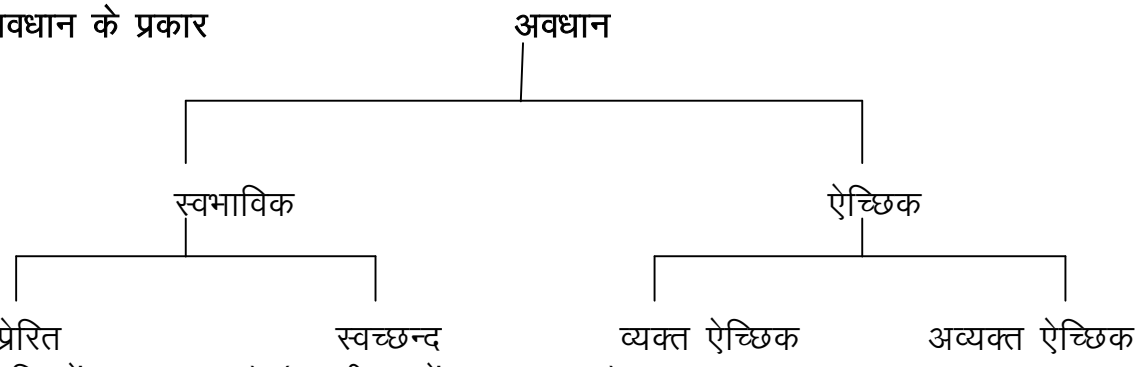

(मूल प्रवृत्तियों द्वारा जागृत) (स्थायी भावों द्वारा जागृत)

1. **स्वाभाविक अवधान–** यह अवधान बिना किसी इच्छा के अपने आप जागता है। इसमें हम किसी विषय या विचार की ओर अवधान देने के सचेत प्रयास नहीं करते। जैसे – माँ का रोते हुए बच्चे की ओर अवधान जाना। स्वाभाविक अवधान मूल प्रवृतियों द्वारा भी पैदा होता है, और स्थायी भावों द्वारा भी। मूल प्रवृत्तियों द्वारा जागृत अवधान केन्द्रित प्राकृतिक अवधान कहलाता है। जब किसी व्यक्ति को प्यास लगती है तो उसका अवधान बरबस ही पानी के गिलास की ओर खिचा चला जाता है। इस प्रकार के अवधान को प्रेरित प्राकृतिक अवधान कहते है। स्थायी भावों द्वारा जागृत ध्याान को 'स्वच्छन्द प्राकृतिक ध्यान' कहते है, यह अवधान उचित रूप से विकसित भावों का परिणाम होता है उस व्यक्ति, वस्तु या विचार के प्रति हमारा अवधान स्वच्छन्दता पूर्वक चला जाता है। जिसके द्वारा हमारी भावनाएँ सम्बन्धित हों।

2. **ऐच्छिक अवधान–** जिस अवधान में हमारी इच्छा कार्य करती है वह ऐच्छिक अवधान कहलाता है। इस प्रकार के अवधान में हमारे सामने लक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट रहता है और हम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हम उस ओर अवधान लगाने का प्रयास करते है। जैसे परीक्षा में प्रष्नों के उत्तर की ओर अवधान देना। रेल यात्रा आरम्भ करते समय रेलवे टाईम टेबल को देखना।

   ऐच्छिक अवधान को पुनः दो वर्गों में बांटा गया है अव्यक्त ऐच्छिक अवधान और व्यक्त ऐच्छिक अवधान।

(अ) अव्यक्त ऐच्छिक अवधान– इस प्रकार के अवधान में इच्छा की एक ही क्रिया पर्याप्त है जैसे गणित के प्रष्न करने पर षिक्षक का छात्र को दण्ड की चेतावनी देना ओर छात्र का सवाल पर अवधान देकर उसे सम्पूर्ण हल करना।

(ब) व्यक्त ऐच्छिक अवधान– इसमें इच्छा की पुनरावृत्ति क्रियाओं द्वारा अवधान प्राप्त किया जाता है। इसमें व्यक्ति को अवधान लगाने के लिये कठोर संघर्ष करना पड़ता है। जैसे परीक्षा के दिनों में कठिन व्यवधानों के बीच परीक्षा की तैयारी करना।

1.4 व्यवधान ;क्पेजतंबजपवदद्ध

जब हम किसी विषय या क्रिया की ओर ध्यान दे रहे होते हैं तो कभी बह्म वातावरण में हमारे भीतर कुछ ऐसा हो जाता है जिससे हमारे अवधान में बाधा पहुंचती है इसे व्यवधान कहते हैं।

एच.आर.भाटिया के अनुसार– "कोई भी ऐसा उद्दीपन व्यवधान कहलाता है जिसकी उपस्थिति अवधान प्रक्रिया में बाधा डालती हो या हमारा अवधान वांछित विषय से दूर ले जाती हो।

व्यवधान

बाह्म व्यवधान आंतरिक व्यवधान

बाह्म व्यवधान –ष्षोर, संगीत, अपर्याप्त प्रकाष, बैठने का असुविधाजनक स्थान, अनुचित तापमान, दोषपूर्ण षिक्षण विधियाँ, अध्यापक का त्रुटिपूर्ण स्वर।

आंतरिक व्यवधान– भावात्मक बाधाएँ, बुरा स्वास्थ, उकताहट, अभिप्रेरणा का अभाव, थकावट।

व्यवधान के बाह्म साधन व्यक्ति की मानसिक स्थिति तथा उसकी व्यक्तित्व सम्बन्धी विषेषताओं के अनुसार उस पर प्रभाव डालते हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी प्रकार के व्यवधान प्रत्येक व्यक्ति के अवधान में बाधा डालें। एक व्यवधान यदि व्यक्ति के अवधान में बाधा डालता है तो दूसरे व्यक्ति के अवधान को स्थिर रखने में सहायक भी हो सकता है। हममें से कई व्यक्ति अपनी पढाई में तब अधिक अवधान केन्द्रित कर सकते हैं जब रेडियो चल रहा हो।

बाह्म व्यवधान की अपेक्षा आन्तरिक व्यवधान व्यक्ति को अधिक प्रभावित करते हैं अतः षिक्षक को विद्यार्थियों के अवधान में विघ्न पैदा करने वाले तत्वों से छुटकारा पाने में विद्यार्थियों की पूर्ण सहायता करनी चाहिए और उनमें अवधान केन्द्रित करने तथा उसे वांछित समय तक स्थित रखने की आदत का विकास करना चाहिए।

1.5 अवधान का विभाजन– बहुत से ऐसे व्यक्ति होते हैं जो दो या तीन प्रकार के कार्यो को एक साथ कर सकते हैं। जिसके निम्न कारण हैं –

- दो भिन्न कार्यो को एक साथ करने में उनमें से एक के लिए अवधान देने की आवष्यकता नहीं होती है जैसे – चतुर बुनने वाली स्त्रियाँ एक समय में बुनना ओर पढना कर सकती हैं। इस प्रकार का बुनना उन्हें अभ्यास के द्वारा आता है, जिसमें उन्हें अवधान लगाने की आवष्यकता नहीं पढती।
- इसका कारण यह हो सकता है कि अवधान एक कार्य से दूसरे कार्य की ओर तेजी से परिवर्तित हो जाता है।
- तीसरा कारण यह है कि व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं की संख्या के साथ नहीं वरन एक साधारण संयुक्त वस्तु के साथ करते हुए प्रतीत होते है। कई वस्तुएँ या कई कार्य कई रूपों में न प्रतीत होकर एक इकाई के रूप में अवधान आकर्षित करते है।

1.6 अवधान का विस्तार

अधिगम अध्यापन प्रक्रिया में अवधान का विषेष महत्व है कक्षा में बालकों के अवधान को केन्द्रित करने के लिए निम्न उपायों का प्रयोग किया जा सकता है।

- उपयुक्त एवं षान्त वातावरण – बालकों का पढाई में अवधान केन्द्रित करने के लिए घर तथा विद्यालय दोनों का ही वातावरण षैक्षिक ओर कोलाहल रहित षान्तिपूर्ण वातावरण बनाये रखना चाहिये।

- पाठ की तैयारी – षिक्षक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए तथा पढाने से पूर्ण पाठ को अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए।
- विषय सामग्री में परिवर्तन –बालक एक ही विषय पर अधिक देर तक अवधान केन्द्रित नही कर पाते, अतः पाठ के बीच में पाठ से संबंधित रोचक प्रसंगों का प्रयोग करना चाहिए तथा समय सारणी में एक विषय को लगातार अधिक समय नहीं देना चाहिए।
- विभिन्न प्रकार की षिक्षण विधियों का प्रयोग – बालकों के अवधान को पढने में लगाने के लिए खेल पर आधारित षिक्षण पद्धतियों का उपयोग करना चाहिए जैसे– मान्टेसरी पद्धति, किण्डर गार्टन पद्धति। युवकों के अवधान को केन्द्रित करने के लिए प्रोजेक्ट पद्धति, समस्या समाधान पद्धति, निरिक्षण पद्धति, प्रयोगात्मक पद्धति आदि का प्रयोग किया जा सकता है।
- सहायक सामग्री का प्रयोग पढाते समय बीच–बीच में पाठ से संबंधित चार्ट ,मॉडल, फिल्म स्ट्रिप्स, स्लाइड्स आदि पर केन्द्रित किया जा सकता है।
- बालकों के प्रति षिक्षक का व्यवहार– कक्षा में विषय की और बालकों का अवधान केन्द्रित करने के लिए, उनसे षिक्षक को प्रेम, सहानुभूतिपूर्ण तथा षिष्ठता पूर्ण व्यवहार करना चाहिए।
- बालक के पूर्वज्ञान से नये ज्ञान का सम्बन्ध स्थापित करना– कक्षा में पढाते समय बालक के अवधान को केन्द्रित रखने के लिये, नयी विषय वस्तु को पहले पढाई गई विषय–वस्तु से संबंधित कर देना चाहिए।
- बालक के स्वयं के प्रयास को प्रोत्साहन– षिक्षक को कक्षा में बालकों को सक्रिय बनाये रखने के लिए बीच–बीच में प्रष्न पूछते रहना चाहिए।
- बालकों की प्रवृत्तियों का ज्ञान– बालकों की मूलप्रवृत्तियों संवेगों आदि को अवधान में रखकर षिक्षण का आयोजन करके षिक्षण, बालकों के अवधान को केन्द्रित कर सकता है।
- व्यक्तिगत भिन्नता को अवधान में रखना– सभी बालक षारीरिक व मानसिक दृष्टि से भिन्न होते हैं विषय वस्तु पर अवधान केन्द्रित करवाने के लिए आवष्यक है कि षिक्षक इसे अवधान में रखते हुए षिक्षण का आयोजन करे।
- व्यवहारिक जीवन से सम्बन्ध – विषय पर अवधान केन्द्रित रखने के लिए षिक्षकों को चाहिए कि वे जो भी विषय पढायें उसे जीवन से सम्बन्धित करके पढायें।

1.7 संवेदना एवं प्रत्यक्षीकरण

संवेदना मस्तिष्क की एक प्रारम्भिक, सामान्य ओर सरलतम प्रक्रिया है। संवेदना की उत्पत्ति उत्तेजक, ज्ञानेन्द्रिय तथा मस्तिष्क पर निर्भर होती है। कोई ज्ञानेन्द्रिय जब किसी उत्तेजक से प्रभावित होती है तो उसमें संक्षोभ (क्पेजनतइंदबम) उत्पन्न हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियों में उत्पन्न इस संक्षोभ को नाडी आवेग कहते है। जब यह आवेग, ज्ञानवाही नाडी द्वारा मस्तिष्क में बोध केन्द्र तक पहुँचता है तब एक मानसिक क्रिया आरम्भ हो जाती है। इस प्रारम्भिक मानसिक क्रिया को ही संवेदना कहते है। जैसे – जब कोई ठंडी वस्तु त्वचा से

लगती है तो यह उत्तेजना का कार्य करती है ओर ठंडक की अनुभूति होना संवेदना है। इस प्रकार संवेदना, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त प्रारम्भिक ज्ञान होती है। संवेदना ज्ञान की पहली सीढी है इसमें उत्तेजना का आभास मात्र होता है। इसका पूर्वज्ञान या पूर्व अनुभव से कोई सम्बन्ध नहीं होता जैसे षिषु के कानों में कोई आवाज आती है वह उसे सुनता है किन्तु वह यह नहीं जानता कि आवाज किसकी है, कहाँ से आ रही है इस प्रकार की आवाज का कोई पूर्व अनुभव नहीं होता यही संवेदना है लेकिन जब वह अपने पूर्व ज्ञान द्वारा यह समझने लगता है कि आवाज किसकी है ओर कहाँ से आ रही है तो यह संवेदना न रहकर प्रत्यक्षीकरण हो जाता है।

क्रूज के अनुसार –"उत्तेजना के प्रति जीव की प्रथम प्रतिक्रिया ही संवेदना है।

संवेदना के प्रकार –

- दृष्टि–संवेदना– रंग रूप का ज्ञान
- ध्वनि–संवेदना– मधुर, ककेष, ऊँची, धीमी आवाज का ज्ञान
- घ्राण–संवेदना– सभी प्रकार की गंध का ज्ञान
- स्वाद–संवेदना– मीठा, तीखा आदि स्वाद का ज्ञान
- स्पर्ष–संवेदना– ठंडे, गर्म तथा दबाब का ज्ञान

संवेदना की विषेषताएँ –

• गुण – प्रत्येक संवेदना का अपना एक विषिष्ट गुण होता है जिसके कारण वे एक दूसरे से भिन्न होता है गुण – भेद दो प्रकार के होते हैं 1) सामान्य 2) विषिष्ट दृष्टि संवेदना ओर ध्वनि संवेदना में भिन्नता जातीय भिन्नता है क्योकि ये विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न होती है दो मनुष्यों की आवाज में भिन्नता विषिष्ट भिन्नता है क्योंकि ये एक ही ज्ञानेन्द्रिय से उत्पन्न होती है।

- तीव्रता– दो संवेदनायें समान रूप से तीव्र नहीं होती है जैसे कि सूर्य के प्रकाष की तीव्रता चन्द्रमा के प्रकाष से अधिक है
- अवधि– कुछ संवेदनाएँ अल्पकालीन जैसे सुई का चुभना तथा कुछ दीर्घकालीन जैसे ट्रेन के गुजरने की आवाज होती है।
- विस्तार– किसी उत्तेजक से ज्ञानेन्द्रियों का जितना क्षेत्र उत्तेजित होता है उसे संवेदना विस्तार कहते है जैसे पिन की नोक से उत्पन्न होने वाली स्पर्ष संवेदना का विस्तार कम ओर चाकू की नोक से उत्पन्न होने वाली स्पर्ष संवेदना का विस्तार अधिक होता है।
- स्पष्टता– तीव्र, विस्तृत तथा दीर्घकालीन संवेदना अधिक स्पष्ट होती है ओर क्षीण, सीमित तथा अल्पकालीन संवेदना कम स्पष्ट होती है।

प्रत्यक्षीकरण

प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है। संवेदना ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त किसी वस्तु का प्रथम अनुभव होता है एक ऐसी स्थिति आती है जब किसी संवेदना का अनुभव होते ही उसका अर्थ निकलने लगता है इस अर्थ को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। इसमे स्पष्ट है कि जब तक षिषु किसी वस्तु के अनुभव की व्याख्या नहीं कर पाता यह संवेदना कहलाती है जैसे ही वह अनुभव का अर्थ निकालने लगता है यह प्रत्यक्षीकरण का रूप धारण कर लेता हैं। इस प्रकार पूर्व अनुभव के आधार पर संवेदना की व्याख्या करना या उसमें अर्थ जोड़ना ही "प्रत्यक्षीकरण" हैं।

प्रत्यक्षीकरण = संवेदना + अर्थ

स्टेनगर के अनुसार– ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्म वस्तुओं या परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं।

कॉलिन्म और ड्रेवर के अनुसार– संवेदना द्वारा किसी वस्तु या परिस्थिति को तुरन्त समझ लेना प्रत्यक्षीकरण है।

- प्रत्यक्षीकरण में परिस्थिति का ज्ञान – प्रत्यक्षीकरण में हमें पूर्ण स्थिति का ज्ञान एक साथ होता है, जैसे हम किसी पेड़ को जड़, तना, शाखा, पत्ती के रूप में न देखकर पेड़ के रूप में देखते हैं।
- तुलना सदृषीकरण ओर पृथक्करण – प्रत्यक्षीकरण में तुलना सदृषीकरण और प्रथकरण का गुण पाया जाता है। जैसे जब हम सडक पर चलते हैं तो मोटर ओर साइकिल की ध्वनि का प्रत्यक्षीकरण कर पाते हैं।
- प्रत्यक्षीकरण में परिवर्तन – प्रत्यक्षीकरण का आधार परिवर्तन है। परिवर्तन के कारण ही हम किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण कर पाते हैं हमारे वातावरण में परिवर्तन हो जाने पर हमें उसका प्रत्यक्षीकरण अवष्य होता है जैसे कि जब हम गर्मी से आते हैं और ठण्डे कमरे में प्रवेष करते हैं तो गर्मी के प्रभाव को भूल जाते हैं और ठण्डक का अनुभव करने लगते है।
- प्रत्यक्षीकरण में चुनाव – एक समय में इस अनेक वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं किन्तु हम उनमें से केवल एक का चुनाव करके उस पर अपना अवधान केन्द्रित करते हैं। इस चुनाव में व्यक्ति की इच्छा, प्रेरणा, घटना की नवीनता और आकर्षण काफी सहायक होते हैं।
- प्रत्यक्षीकरण में संगठन– मस्तिष्क को एक समय में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनेक वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है ऐसी स्थिति में अधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं को मस्तिष्क एक समूह में संगठित कर लेता है। जैसे कि यदि कोई मनुष्य एक ही समय में वृक्षों ओर झाडियों को देखते है तो वह उसका वृक्षों के समूह के रूप में प्रत्यक्षीकरण करता है।
- प्रत्यक्षीकरण में अर्थ– प्रत्यक्षीकरण में कुछ न कुछ अर्थ अवष्य होता है जैसे कि सड़क पर जब हम कोई ध्वनि सुनते हैं तो जान जाते हैं कि साइकिल की घण्टी है या नहीं।
- अवधान का होना– प्रत्यक्षीकरण के लिये अवधान अत्यन्त आवष्यक है यदि एक स्थान पर कई वस्तुएँ रखी है तो जिस पर हमारा अवधान केन्द्रित हो जाता है उसी का हम प्रत्यक्षीरण करते हैं।

- प्रत्यक्षीकरण में अन्तर– दो व्यक्ति यदि किसी वस्तु या घटना को एक ही समय में देखते हैं तो उनकी अभिरूचियों, पूर्व के अनुभवों, षारीरिक दषा, अवधान की मात्रा आदि में अन्तर होने के कारण उनके प्रत्यक्षीकरण में विचार या साहचर्य का गुण होता है जब कोई व्यक्ति वस्तु या घटना का प्रत्यक्षीकरण करता है तो उसे संबंधित बातें याद आ जाती हैं। जैसे कच्चे आम का प्रत्यक्षीकरण करने से उसके खट्टेपन की याद आ जाती है।
- प्रत्यभिज्ञा– किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण में प्रत्यभिज्ञा या पहचानने की विषेषता होती है। जैसे कि पुस्तकों के ढेर का प्रत्यक्षीकरण करने पर उसमें रखी उस पुस्तक पर अवधान विषेष रूप से आ जाता है जिसे हम पहले देख चुके हैं।

संवेदना एवं प्रत्यक्षीकरण में अन्तर–

क्र.	संवेदना	प्रत्यक्षीकरण
1	संवेदना ज्ञान प्राप्ति की पहली सीढी है।	प्रत्यक्षीकरण ज्ञान प्राप्ति की दूसरी सीढी है।
2	संवेदना का पूर्ण अनुभव से कोई सम्बन्ध नहीं।	प्रत्यक्षीकरण में पूर्ण अनुभव का विषेष महत्व है।
3	संवेदना द्वारा प्राप्त ज्ञान अस्पष्ट और अनिषचित होता है।	प्रत्यक्षीकरण द्वारा प्राप्त ज्ञान स्पष्ट और निषचित होता है।
4	संवेदना में मानसिक क्रिया का रूप सरल ओर प्रारम्भिक होता है।	प्रत्यक्षीकरण में मानसिक क्रिया का रूप जटिल ओर विकसित होता है।
5	संवेदना की मानसिक क्रिया में केवल एक तत्व रहता है	प्रत्यक्षीकरण की मानसिक क्रिया में दो तत्व रहते हैं किसी वस्तु को देखना ओर उसका अर्थ लगाना।
6	संवेदना अमूर्त मानसिक क्रिया है।	प्रत्यक्षीकरण मूर्त मानसिक क्रिया है।
7	संवेदना के लिए वस्तु की उपस्थिति अनिवार्य है।	प्रत्यक्षीकरण स्मरणात्मक प्रक्रिया है अतः वस्तु की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है।

संवेदना और प्रत्यक्षीकरण का षिक्षा में महत्व –

(अ) ज्ञानेन्द्रियों का स्वास्थ– संवेदना ओर प्रत्यक्षीकरण दोनों मानसिक ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से होती हैं यदि ज्ञानेन्द्रियाँ स्वास्थ नहीं हैं तो बालक का ज्ञान प्रभावित होगा। इसलिए तो बालक की ज्ञानेन्द्रियों के स्वास्थ का पूर्ण ध्यान रखना अभिभावक तथा षिक्षक दोनों का ही परम कर्तव्य है जैसे कि यदि बालक को कम सुनाई देता है तो षिक्षक कक्षा में तेज व स्पष्ट आवाज में पढाए।

(ब) ज्ञानेन्द्रिय षिक्षण– ज्ञानेन्द्रियों को सही प्रयोग के लिये बालकों का प्रषिक्षित होना अत्यंत आवष्यक है। ज्ञानेन्द्रियों के प्रषिक्षित होने पर ही वह सभी कार्यो को अच्छी तरह से करने में सफल होगा। इसलिएवर्तमान समय में बालक की प्रारम्भिक षिक्षा में उसकी ज्ञानेन्द्रियों को भली–भाँति प्रषिक्षित करने पर बल दिया जा रहा है।
(स) निरीक्षण षक्ति का विकास – निरीक्षण एक मानसिक प्रक्रम है जिसमें हम किसी वस्तु को अच्छी तरह से समझने के लिए उसके भिन्न अंगो का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करते हैं। प्रत्यक्षीकरण के विकास के लिए निरीक्षण षक्ति का विकास अत्यन्त आवष्यक है। किन्डर गार्टन एवं मान्टेसरी पद्धतियों मे निरीक्षण षक्ति के विकास पर अधिक बल दिया जाता है।
(द) पूर्व अर्जित ज्ञान पर बल– प्रत्यक्षीकरण पूर्व ज्ञान पर आधारित है इसलिए अध्यापक को चाहिए कि वे नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान के आधार पर ही प्रदान करें।
(य) षैक्षिण पर्यटन– प्रत्यक्षीकरण के विकास के लिए छात्रों को षैक्षिक महत्व के स्थलों को देखने का अवसर प्रदान करें।
(र) भिन्न षिक्षण सामग्री का प्रयोग– पाठ को षिक्षण–सहायक सामग्री की सहायता से उपयुक्त उदाहरणों द्वारा समझाने से प्रत्यक्षीकरण क्षमता का विकास होता है।

1.8 स्मृति अर्थ एंव प्रकार

हम किसी वस्तु को छूते, देखते, सुनते या सूँघते हैं तब ज्ञानवाहक तन्तु उस अनुभव को मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्र में पहुँचा देते हैं यह अनुभव कुछ समय तो चेतन मन में रहता है किन्तु बाद में वह अचेतन मस्तिष्क में चला जाता है ओर हम उसे भूल जाते हैं उस अनुभव को अचेतन मन में संचित रखने ओर आवष्यकता पढ़ने पर चेतन मन में लाने की प्रक्रिया को स्मृति कहते हैं किसी वस्तु को देखकर उसकी प्रतिमा मस्तिष्क में चिन्हित हो जाती है या यों कहें कि उस वस्तु के चिन्ह मस्तिष्क में बन जाते हैं हम किसी नये नगर में जाते हैं उस नगर का नक्षा अपने मस्तिष्क में बैठाने के लिए हम किसी बिन्दु को अपना आधार बना लेते हैं ओर फिर इस नगर में घूमकर विभिन्न स्थानों के चिन्ह मस्तिष्क में अंकित कर लेते हैं इसका परिणाम यह होता है कि पुनः उस नगर में जाने पर नगर की गलियां तक परिचित सी जान पडती हैं अतः मस्तिष्क की वह क्रिया जिनके द्वारा हम अपने पूर्व अनुभवों से लाभ उठाते हैं स्मृति कहलाती है स्मृति मानव की संचय षक्ति है स्मृति एक मनोवैज्ञानिक क्रिया है इसे सम्पन्न करने के लिए मस्तिष्क तथा षरीर दोनों को ही श्रम करना पडता है। हम जो कुछ भी सीखते हैं वह सदा साथ नहीं रखते उसका काफी अंष हमारे अवचेतन में चला जाता है आवष्यकता पडने पर अचेतन से चेतन में, अनुभवों को लाने की क्रिया स्मृति कहलाती है।

मैक्डूगल के अनुसार– स्मृति का तात्पर्य है, अतीत की घटनाओं की कल्पना करना एवं यह पहचान लेना कि वह अतीत कालीन अनुभव है।
वुडवर्थ के अनुसार– पहले सीखी जा चुकी बात का स्मरण करना ही स्मृति है।
स्टाउट के अनुसार– स्मृति एक आदर्ष पुनरावृति है जिसमें अतीत काल के अनुभव उसी क्रम तथा ढंग से जागृत हौते हैं जैसे पहले हुए थै

स्मृति के अंग –

अ) सीखना –हम जिस बात को स्मरण करना चाहते हैं उसे पहले सीखना पडता है। इसलिए हम किसी वस्तु, कार्य या पाठ को सीखने के लिए उसे बार–बार दोहराते हैं उसका अर्थ समझते हैं ओर इसकी वस्तुओं, कार्यो या पाठों से संबंधित करते हैं। इस प्रकार सीखी हुई बातों का स्मरण करके पूर्ण करके पूर्ण ज्ञान का नवीन ज्ञान से साहचर्य स्थापित करते है।
ब) धारण–सीखी हुई बात को मस्तिष्क में संचित रखना ही धारण है। सीखी हुई बात कितने समय तक संचित रह सकती है यह व्यक्ति की धारण षक्ति पर निर्भर करता है।

- मस्तिष्क – अधिक विकसित होने पर धारण षक्ति अधिक होती है।
- स्वास्थ – अस्वस्थ होने पर धारण षक्ति कमजोर होती है।
- रूचि – विषय रूचिपूर्ण होने पर अधिक समय तक धारण किया जा सकता है।
- चिंतन –चिन्तन क्रिया में बालक अवधानपूर्वक विचार करता है जिसमें मस्तिष्क उन्हे अच्छी तरह से धारण कर लेता है।

3) पुनः स्मरण –सीखी हुई बातों को अचेतन मन में चेतन मन से लाना पुनः स्मरण है जो बात जितनी अच्छी तरह से धारण की जाती है उतनी ही सरलता से पुनः स्मरण किया जा सकता है।

4) पहचान –पूर्व अनुभवों को जानना ही पहचान है या वर्तमान काल मे उस वस्तु से परिचित होना जिससे कि अतीत काल में परिचित हो चुके हैं जैसे कि जब हम अपने पुराने अध्यापक को देखते हैं तो उसे पहचान जाते हैं कि वे हमें क्या ओर किस प्रकार पढाते थे।

अच्छी स्मृति की विषेषताएँ –

- षीघ्र याद होना या सीखना –जो बालक किसी बात को एक बार पढकर या सुनकर सीख जाता है उसकी स्मृति अच्छी मानी जाती है।
- उत्तम धारण षक्ति –जो बालक याद की गई बात को अधिक दिनों तक याद रख सकता है उसकी स्मृति अच्छी मानी जाती है।
- षीघ्र पुनः स्मरण – जिस बालक को सीखी गई बात षीघ्र याद आ जाए उसकी स्मृति को अच्छा माना जाता है।
- षीघ्र व पुनः स्मरण –अच्छी स्मृति के लिए किसी बात को षीघ्रएवं स्पष्ट रूप से पहचानना आवष्यक है। जैसे कि परीक्षा में उत्तर देते समय कई विचार हमारे हद्रय में आते हैं लेकिन सही उत्तर लिखने के लिए उसमें से उपयुक्त विचार की पहचान जरूरी है।
- अनावश्यक बातों का विस्मरण –अनावष्यक बातों को भूल जाना अच्छी स्मृति की विषेषता है अनावष्यक बातें पुनः स्मरण, धारण व पहचान में बाधा उत्पन्न करती हैं।

उपादेयता– अच्छी स्मृति वही है जो समय पर उपयोगी सिद्ध हो परीक्षा देते समय यदि पहले याद की हुई बातें क्रमानुसार याद आती है तो स्मृति को अच्छा कहा जाता है।

स्मृति के प्रकार

- **तात्कालिक स्मृति–**किसी तथ्य को याद करके तत्काल सुना देना।
- **स्थायी स्मृति–**जब याद किए तथ्य अधिक समय तक याद रहें।
- **वैयक्तिक स्मृति–**बीते हुए समय अनुभवों का पुनः स्मरण।
- **अव्यक्तिगत अनुभव–**समाचार पत्र, पत्रिकाओं एवं पुस्तकों आदि से प्राप्त अनुभवों का स्मरण।
- **सक्रिय स्मृति–**याद किये तथ्यों का पुनः स्मरण करके प्रष्नों के उत्तर लिखना।
- **निषक्रिय स्मृति–**जब पूर्व अनुभवों का अनायाम पुनः स्मरण कर लेना जैसे– आम को देखते ही खट्टेपन का स्मरण
- **यांत्रिक स्मृति–**बिना समझे रटना और पुनः स्मरण करना जैसे रटी हुई कविता का पुनः स्मरण।
- **ताक्रिक स्मृति–**विषय–वस्तु को समझकर याद करना।
- **इन्द्रिय अनुभव स्मृति–**किसी वस्तु या विचार को ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव के फलस्वरूप पुनः स्मरण करके पहचानना। जैसे– बंद आँखो में वस्तु को छूकर पहचानना।

शारीरिक स्मृति – कार्य को बार–बार करने पर अंग का अभ्यस्त हो जाना जैसे टाइप करते समय उँगलियों का ठीक बटन पर पढ़ना।

स्मृति के नीयम–

आदत का नियम– इस नियमानुसार जब किसी विचार को बार–बार दोहराया जाता है तो मस्तिष्क में गहरी छाप बन जाती है। इन विचारों को पुर्नस्मरण करने के लिये विचार शक्ति का प्रयोग नहीं करना पड़ता। जैसे रटी हुई कविता सुनाना।

प्रषक्ति का नियम– सीखने की प्रक्रिया में विषेष अनुभवों का याद करने के लिये विषेष प्रयत्न नहीं करना पड़ते।

विचार साहचर्य का नियम– एक विचार किसी दूसरे विचार जिसका हम पहले अनुभव कर चुके हैं स्मरण दिलाता है विचार साहचर्य के कारण ही हम पूर्व अनुभवों का सरलता से पुनः स्मरण कर लेते हैं।

विचार सहाचर्य के नियम–

1. समीपता का नियमः– दो वस्तुओं, घटनाओं या अनुभवों का ज्ञान एक साथ ग्रहण करने पर एक के स्मरण करने पर दूसरा स्वतः याद आना। जैसे– चाय देखकर बिस्कट की याद आना।

2. समानता का नियमः– दो या अधिक वस्तुओं, व्यक्तियों विचारों या तथ्यों में समानता होने पर एक का स्मरण होने पर दूसरा स्मरित होगा। जैसे किसी बीमार को देखकर अपनी बीमारी याद आना।

समानता का नियमः– जब दो विचार या वस्तुएँ एक–दूसरे से असमान होती हैं तो उनका परस्पर संबंध हो जाता है एक का स्मरण होते ही दूसरे का स्मरण हो जाता है एक का स्मरण होते ही दूसरे का स्मरण हो जाता है। जैसे दुःख के दिनों में सुख के दिनों की याद आना।

- **रूचि का नियम–**जिन बातों मे बालकों की जितनी अधिक रूचि होती है, उन्हें उतनी ही सरलता से उनका स्मरण होता है। जैसे बालक की विज्ञान विषय में रूचि होने पर विज्ञान के नियम का स्मरण होना।

विचार साहचर्य के गौण नियम–

- **प्राथमिकता का नियम–**सबसे पहले प्राप्त होने वाले अनुभव मस्तिष्क में अधिक दिनों तक संरक्षित रहते हैं। और सरलता से पुनः स्मरण किया जा सकता है। जैसे– बचपन में प्राप्त होने वाले अनुभव अजीवन बने रहते हैं।
- **नवीनता का नियम–**जो अनुभव जितने नवीन होते हैं वे उतनी ही सरलता से स्मरण हो आते हैं जैसे परीक्षा के समय छात्र का अन्त समय तक पढ़ना तथा प्रष्न पत्र का मिलते ही कुछ समय पहले पढ़ी हुई बात तुरन्त याद आ जाती हैं
- **आवृत्ति का नियम–**जो अनुभव बार–बार होते हैं वे सरलता से स्मरण हो जाते हैं जैसे छात्र जिस पाठ को प्रतिदिन दोहराते हैं वह उन्हें शीघ्र स्मरण हो जाता है।

स्मरण करने की विधियाँ–

- **पूर्ण विधि**–इस विधि में पूरे पाठ को आरम्भ से अन्त तक एक ही बार में पढ़कर स्मरण किया जाता है।
- **खण्ड विधि**–इस विधि में पाठ को कई खण्डों में बाँट दिया जाता है ओर क्रमानुसार एक–एक करके खण्डों को याद किया जाता है।
- **मिश्रित विधि**–इस विधि में पहले पूरे पाठ को पढ़ते हैं फिर खण्डों में बाँटकर याद करते हैं।
- **प्रगतिषील विधि**–इस विधि में पाठ को कई खण्डों में बाँट लिया जाता है फिर पहले प्रथम खण्ड को याद करते हैं फिर पहले व दूसरे खण्ड को याद करते हैं, फिर पहले, दूसरे व तीसरे खण्ड को याद करते हैं। इस प्रकार जैसे–जैसे स्मरण करने के कार्य में प्रगति होती जाती है वैसे–वैसे नया खण्ड जोड़कर पिछले खण्डों के साथ याद करते जाते हैं।
- **निरन्तर विधि**–इस विधि में बिना बीच में रूके पाठ को लगातार दोहराया जाता है।
- **सान्तर विधि**–इसमें बीच–बीच में रूककर पाठ को दोहराया जाता है।

- **सक्रिय विधि**–इसमें छात्र पाठ को बोल–बोलकर याद करते हैं।

- **निषक्रिय विधि**–इसमें विषय सामग्री को मन ही मन पढ़कर याद किया जाता है।
- **रटने की विधि**–इसमें बिना विचारे विषय वस्तु को रट लिया जाता है।
- **विचार साहचर्य विधि**–इस विधि में स्मरण की जाने वाली बात का सम्बन्ध किसी ज्ञात बात से कर दिया जाता है जिसमें स्मरण शीघ्र होता है ओर लम्बे समय तक याद रहता है।

1.9 विस्मृति अर्थ एंव कारण

व्यक्ति के अभियोजनात्मक व्यवहार और षिक्षा में स्मृति का महत्वपूर्ण स्थान होता है स्मृति के साथ विस्मृति भी महत्वपूर्ण है। विस्मृति मन से अनावष्यक व व्यर्थ बातों को निकालने में सहायक होती है। इसके पष्चात् ही मन, आवष्यक एवं उपयोगी बातों को ग्रहण करने में सफल होता है। इस प्रकार स्मरण के लिये विस्मरण का होना आवष्यक है।

मन के अनुसार– "स्मरण के समान विस्मरण भी सीखने की प्रक्रिया का आवष्यक पक्ष है क्योंकि जब हम सही बातों को याद करते हैं तब हम गलत बातों को भूल जाते हैं"

ड्रेबर के अनुसार–"विस्मृति का अर्थ है– किसी समय प्रयास करने पर भी किसी पूर्व अनुभव का स्मरण करने में असफलता"

व्यक्ति अपने वातावरण से प्रतिक्रिया करता है जिसके फलस्वरूप उसे नये अनुभव प्राप्त होते हैं। ये अनुभव व्यक्ति के मस्तिष्क में स्मृति चिन्ह के रूप में अंकित हो जाते हैं इन अनभवों को पुर्नस्मरण करना स्मृति कहलाती है परन्तु कभी–कभी हम उन अनुभवों का पुर्नस्मरण नहीं कर पाते इस क्रिया को विस्मृति कहते हैं।

विस्मृति के प्रकार –विस्मृति दो प्रकार की होती हैं।

सामान्य विस्मृति –प्रत्येक व्यक्ति भूलता है कोई भी व्यक्ति स्मरण की गई विषय वस्तु को अन्नतः काल तक स्मरण नहीं रख सकता। मस्तिष्क की रचना तथा बाह्य कारकों के प्रभाव आधीन ऐसा होता है। व्यक्ति की अनेक कार्यो में रूचि, उनसे सम्बन्धित वरीयता में भिन्नता, उद्देष्य में परिर्वतन, समय का बीतना, परस्पर विरोधी अथवा समान कार्यो का एक–दूसरे के बाद करना आदि कारणों से विस्मृति प्रत्येक व्यक्ति के सामान्य जीवन का एक विषिष्ट अनुभव होता हैं यदि एक स्थिति में स्मरण की गई विषय वस्तु का लम्बे काल तक प्रयोग न किया जाए तो समय अन्तराल के साथ अधिगमित सामग्री की विस्मृति होने लगती हैं। किसी कार्य का उससे पहले किए गए अथवा बाद में सीखे गए कार्य में बाधा डालना अथवा एक साथ कोई दो कार्य करना विस्मृति को पैदा करते है। इन तत्वों के कारण होने वाली विस्मृति को सामान्य विस्मृति कहा जाता है।

आसामान्य विस्मृति –इस प्रकार की विस्मृति मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है ऐसी विस्मृति में दमन रक्षात्मक यान्त्रिक तन्त्र तथा अचेत मन का विषेष योग रहता है। फ्रायड का मत है कि हम भूलते है क्योंकि हम भूलना चाहते है व्यक्ति बाहरी एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के खतरों की स्थिति में भूलता है। बाहरी खतरे की स्थिति में वह यर्थात को नकारता है तथा आन्तरिक खतरे की स्थिति में वह दमन का सहारा लेता है और परिणाम स्वरूप दुखद प्रतिफलों से जुडी स्मृतियों को भूल जाता है इस प्रकार के भूलने को असामान्य विस्मृति कहते है।

विस्मरण के कारण–

(अ) सैद्धान्तिक कारण–विस्मरण क्यों होता है? इसका उत्तर देने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिकों ने परीक्षण करके विभिन्न सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं। इनमें से प्रमुख निम्न हैं–

• **अनाभ्यास का नियम**–इस सिद्धान्त के समर्थक एबिंगहॉस हैं, इनका विचार है कि यदि याद की हुई विषय–वस्तु का यदि बहुत दिनों तक अभ्यास नहीं किया जाता तो वह भूलने लगते हैं। यह सिद्धांत पूर्णतया सत्य नहीं है, क्योंकि बहुत सी घटनाएँ होती हैं जिनका व्यक्ति अभ्यास नहीं करता किन्तु उसे वह जीवन भर याद रहती है।

• **बाधा का सिद्धांत**–इस सिद्धांत का प्रतिपादन मुलर, पिलपेकर, वुडवर्थ आदि मनोवैज्ञानिकों ने किया। इनके अनुसार किसी विषयवस्तु को सीखने के बाद कोई दूसरी मानसिक क्रिया की जाती है तो पहले सीखी हुई वस्तु के स्मृति चिह्न निर्बल होते जाते हैं ओर धीर–धीरे उस विषय वस्तु को भूल जाते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार सीखने और पुर्नस्मरण के मध्य कोई मानसिक क्रिया की जाती है तो वह पहले सीखी हुई विषय–वस्तु के पुर्नस्मरण में बाधा पहुंचती है।

• **दमन का सिद्धांत**–इस सिद्धांत का प्रतिपादन फ्रायड ने किया है। इनके अनुसार व्यक्ति अपना जन्म,दुखद, अप्रिय अनुभूतियों को स्वेच्छापूर्वक पुनः स्मरण नहीं करना चाहता है। इस प्रकार की अनुभूतियां चेतन मन से अचेन मन में दमित हो जाती है। और वह उन्हें भूल जाता है।

(ब) विस्मरण के सामान्य कारण–

• **विषय सामग्री का स्वरूप**– विषय सामग्री सार्थक, आनन्दायक ओर सरल होने पर विस्मरण की क्रिया कम होती है।

• **विषय वस्तु का परिणाम**–छोट विषय को देर में तथा बड़े विषय को जल्दी भूलते हैं।

• **सीखने की मात्रा**–अधिक मात्रा में सीखे हुए विषय का विस्मरण तेजी से होता है।

• **सीखने के दोषपूर्ण विषय**–दोषपूर्ण विधि द्वारा सीखी हुई वस्तु थोड़े समय में ही भूल जाते हैं।

• **रूचि और ध्यान का अभाव**–जिस विषय को सीखने में रूचि ओर ध्यान नहीं होता उसे जल्दी भूलते हैं।

• **समय–अवधान**–सीखने और पुनस्मरण की क्रिया के बीच समय जितना अधिक होता है विस्मरण की क्रिया उतनी ही अधिक होती है।

• **सीखने वाले की आयु एवं बुद्धि**–प्रोढ़ एवं प्रखर बुद्धि वाले व्यक्ति में विस्मरण की क्रिया धीमी गति से होती है।

• **पुर्नरावृति का अभाव**–यदि याद की गई विषय वस्तु को दोहराया जाये तो भूलने लगते हैं।

• **संवेगात्मक असन्तुलन**–भय, क्रोध, चिन्ता, घबराहट आदि में सवेंगात्मक असन्तुलन उत्पन्न होता है जिससे पूर्व याद की गई बातें याद नहीं आती हैं।

• **स्मरण न रखने की इच्छा**–जिस बात को हम याद नहीं रखना चाहते भूल जाते हैं।

• **मस्तिष्क की चोट**–मस्तिष्क पर घातक चोट लग जाने से व्यक्ति की स्मरण शक्ति कमजोर पड़ जाती है।

• **मादक वस्तुओं का सेवन**–मादक वस्तुएं व्यक्ति की स्मरण शक्ति को कमजोर करती हैं।

विस्मरण का निराकरण –विस्मरण के निराकरण के लिए सामान्यताः इन सिद्धातों का पालन करना चाहिए –

• **अवधान केन्द्रित होता**––जो कुछ भी याद किया जाये उस पर ध्यान गहन रूप से इस आष्य के साथ केन्द्रित किया जाये कि वह विषय याद करना है।

• **साहचर्य**– जो अनुभव पहले से अर्जित किये जा चुके हैं नवीन ज्ञान तथा अनुभवों के साथ इसका साहचर्य सम्बन्धित किया जाये इसके साथ ही अनेक प्रतिमाओं जैसे दृष्य, श्रृम, संवेदनषील, सम्प्रक का निर्माण किया जाए।

• **लय तथा पाठ**– स्मरण का मुख्य अंग लय तथा पाठ है

• **समय विभाजक** – पाठय सामग्री की प्रकृति के अनुसार स्मरण करने के लिए समय का विभाजक कर देना चाहिए ।

• **विश्राम** – प्रत्येक विषय को याद कर लेने के पष्चात् अध्यापक को चाहिये कि वह छात्रों को विश्राम दे।

1.10 इकाई सारांषः याद रखने योग्य बातें

वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों में से किसी एक उद्दीपक पर अवधान केन्द्रित करने की प्रक्रिया अवधान कहलाती है।

जब हम किसी विषय या क्रिया की ओर ध्याान दे रहे होते हैं तो कभी बह्म वातावरण में हमारे भीतर कुछ ऐसा हो जाता है जिससे हमारे अवधान में बाधा पहुंचती है इसे व्यवधान कहते हैं।

- संवेदना ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त किसी वस्तु का प्रथम अनुभव होता है एक ऐसी स्थिति आती है जब किसी संवेदना का अनुभव होते ही उसका अर्थ निकलने लगता है इस अर्थ को प्रत्यक्षीकरण कहते है।
- स्मृति का तात्पर्य है, अतीत की घटनाओं की कल्पना करना एवं यह पहचान लेना कि वह अतीत कालीनअनुभव है। अच्छी स्मृति वही है जो समय पर उपयोगी सिद्ध हो परीक्षा देते समय यदि पहले याद की हुई बातें क्रमानुसार याद आती है तो स्मृति को अच्छा कहा जाता है।
- स्मृति के साथ विस्मृति भी महत्वपूर्ण है। विस्मृति मन से अनावष्यक व व्यर्थ बातों को निकालने में सहायक होती है। इसके पष्चात् ही मन, आवष्यक एवं उपयोगी बातों को ग्रहण करने में सफल होता है। इस प्रकार स्मरण के लिये विस्मरण का होना आवष्यक है।
- व्यक्ति अपने वातावरण से प्रतिक्रिया करता है जिसके फलस्वरूप उसे नये अनुभव प्राप्त होते हैं। ये अनुभव व्यक्ति के मस्तिष्क में स्मृति चिन्ह के रूप में अंकित हो जाते हैं इन अनभवों को पुर्नस्मरण करना स्मृति कहलाती है परन्तु कभी–कभी हम उन अनुभवों का पुर्नस्मरण नहीं कर पाते इस क्रिया को विस्मृति कहते हैं।

1.11 अपनी प्रगति की जॉच करें

प्रष्न अ. अवधान के निर्धारक कारक कौन से है?
प्रष्न व. अवधान का विस्तार किस प्रकार किया जा सकता है?
प्रष्न स. संवेदना की विषेषताएँ कौन –कौन सी है?
प्रष्न द. स्मृति के प्रकार कौन–कौन से है?
प्रष्न य. विस्मरण के कारण कौन–कौन से है?

1.12 गृहकार्य

- **विस्मरण के निराकरण के उपाय बताइए।**

1.13 चर्चा के विन्दु

स्मृति किस प्रकार आपकी उपलब्धि को प्रभावित करती है.....
.....
.....
.....

1.14 गतिविधि

स्मृति परीक्षण के लिए आगे दिया गया चित्र बच्चों को दिखाएँ और फिर उनसे अग्रलिखित सवाल पूछे–

क. फूल कितने हैं?
ख. हाथ किधर ईषारा कर रहा है?
ग. सेव किधर से खाया गया है?
घ. घडी में कितने बजे है?
ड. चित्र में कितने पॉव हैं?
च. हाथी के कान कैसे हैं? छोटे या बडे।
छ. चित्र में लिखे अंको में कौन सा अलग है?
ज. क्या बल्व जल रहा है?

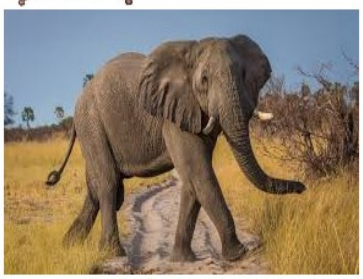

1678

आप प्राप्तांकों का अर्थ निम्न प्रकार से निकाल सकते हैं–

0–3 अंक = अभ्यास की जरुरत है
4–5 अंक = सम्मान जनक
6–7 अंक = बहुत अच्छा
8–9 अंक = उत्कृष्ठ
10 अंक = सर्वोत्तम स्मृति

संदर्भ ग्रंथ सूची –

ष्षर्मा, पूजा (2015), षैक्षिक समाज मनोविज्ञान, ए.के एन्टरप्राइजेज, जयपुर
सिंह, रतन (2012), सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेषन्स नईदिल्ली

मिश्रा, महेन्द्र कुमार (2007), समाज मनोविज्ञान और षिक्षक अवधारणा क्लासिक कलैक्षन, जयपुर
विक्र, जसवन्त कौर (2011), अधिगमकर्ता, अधिगम एवं संज्ञान, ट्विन्टी फस्ट सेन्चुरी पब्लिकेषन्स, पटियाला।
षुक्ला, ओ.पी, षिक्षा मनोविज्ञान, प्रकाषक भारत बुक सेन्टर लखनऊ
भटनागर, सुरेष (2010), षिक्षा मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
यादव, सियाराम (2010), अधिगमकर्ता का विकास एवं षिक्षण अधिगम प्रक्रिया, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
मंगल, एस.के, मंगल, उमा (2014), विद्यार्थी, अधिगम एवं संज्ञान, टंडन पब्लिकेषन्स, लूधियाना

खण्ड 3 बाल्यवस्था, बाल विकास एवं अधिगम
इकाई 2 मानसिक योग्यता एवं संज्ञानात्मक विकास

संरचना

1.1 परिचय
1.2 उद्देष्य

1.3 मानसिक योग्यता का प्रत्यय एंव वर्गीकरण
1.4 संज्ञानात्मक विकास का प्रत्यय
1.5 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के स्तर
1.6 संज्ञानात्मक विकास की षैक्षिक उपयोगिता
1.7 इकाई सारांषः याद रखने योग्य बातें
1.8 अपनी प्रगति की जॉच करें
1.9 गतिविधि

संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ. क्राति वर्मा

सहायक व्याख्याता

बी.एड.

1.1 परिचय (प्दजतवकनबजपवद)

संज्ञानात्मक विकास से अभिप्राय संज्ञान भण्डार में वृद्धि एवं उसके उपयोग से होता है। मानसिक क्षमताओं का विकास, उनका उपयोग एवं वातावरण में समायोजन की क्षमता का दूसरा नाम ही संज्ञानात्मक विकास है। संज्ञानात्मक विकास की प्रथम अवस्था बाल्यकाल की होती है। षिषु का प्रारम्भिक मानसिक विकास खिलौनों, माता–पिता तथा परिवार के सदस्यों के सम्पर्क में आने से होता है। संज्ञानात्मक विकास की द्वितीय अवस्था पूर्व बाल्यकाल होती है। इस अवस्था में गत्यात्मक अनुक्रियाओं का स्थान शब्द ले लेते हैं। प्राथमिक संप्रत्यय विकसित होने लगते हैं। संज्ञानात्मक विकास की तृतीय अवस्था उत्तर बाल्यवस्था होती है। यह मानसिक विकास की स्थूल व्यावहारिक अवस्था;ब्वदतमजम व्चमतजपवदंस `जंहमद्ध होती है। इस अवस्था में वह विभिन्न परिस्थतियों, पदार्थों तथा घटनाओं के पारम्परिक संबधों को समझ सकता है। संज्ञानात्मक विकास की चतुर्थ अवस्था किषोरावस्था होती है। यह अवस्था बालकों के विकास की उच्चतम अवस्था है। इस अवस्था में बालक तर्क द्वारा अपने पक्ष का समर्थन प्रभावकारी ढंग से करना सीख लेता है,

तथा दूसरों के पक्ष अथवा विपक्ष संबधीं विचारों को भी समझने लगता है। वह अपने विचारों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने के योग्य हो जाता है। चिन्हों, प्रतिमाओं तथा संप्रत्ययों के पर्याप्त विकास के साथ–साथ बालक इन का प्रयोग समस्या–समाधान में भी करने लगता हैं। पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएँ इन्द्रियजनित गामक अवस्था, पूर्व संक्रियात्मक अवस्था, मूर्त सक्रियात्मक अवस्था एवं अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था बताई हैं।

1.2 उद्देष्य (व्हरमबजपअमे)

- छात्र संज्ञानात्मक विकास का अर्थ व प्रकृति जान सकेंगे।
- छात्र मानसिक योग्यता के वर्गीकरण को समझ सकेंगे।
- छात्र पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत को जान सकेंगे।
- छात्र पियाजे के सिद्धांत की शैक्षिक उपयोगिता को समझेंगे।
- छात्र मानसिक योग्यता के आधार पर वर्गीकरण कर सकेंगे।

1.3 मानसिक योग्यता का प्रत्यय एंव वर्गीकरण (ब्वदबमचज वि डमदजंस ।इपसपजल)

सभी मनुष्य एक जैसे नहीं होते उनमें व्यक्तिगत भिन्नताएँ पाई जाती हैं। एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों में आसानी से ये भिन्नता देख सकता है। कुछ विद्यार्थी बहुत जल्दी सीख जाते हैं, और कई विद्यार्थी बहुत देर बाद सीखते हैं। बालक की वह योग्यता जिसमें वह रूचि, अभिवृत्ति, प्राप्त ज्ञान एवं कौषल में दूसरे बालकों से भिन्न होते हैं, मानसिक योग्यता कहलाती है। मानसिक योग्यता के कारण एक बालक दूसरे बालक की अपेक्षा किसी विषिष्ट स्थिति के प्रति अधिक प्रभावषाली अनुक्रिया करता है।

"वह योग्यता जिसके द्वारा बालक नवीन आवष्यकताओं क अनुसार चिन्तन करता है जीवन की नई समस्याओं के अनुसार अपने आपकों ढालता है मानसिक योग्यता कहलाती है।"

"नई एवं परिवर्तित परिस्थितियों को समझने तथा उनके अनुसार समायोजित करने की योग्यता को मानसिक योग्यता कहते हैं।"
"मानसिक योग्यता व्यक्ति की वह संयुक्त "

मानसिक योग्यता के प्रकार–

1. अमूर्त मानसिक योग्यता– अमूर्त मानसिक योग्यता का संबंध सूक्ष्म चिंतन तथा मनन से होता है। मानसिक योग्यता का यह रूप समस्याओं तथा अनुभवों को प्रतिमाओं तथा चिन्हों की सहायता से अधिक स्पष्ट करता है। कवि, साहित्यकार तथा चित्रकार आदि अपने भावों का प्रकाषन इसी मानसिक योग्यता के माध्यम से करते हैं। मानसिक योग्यता के इस प्रकार में चिन्हों, प्रतीकों, प्रतिमाओं, अकों तथा शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाता है। शब्दों, प्रतीकों तथा अकों के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की कला अमूर्त योग्यता की देन है। विद्यालय में गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल तथा कला आदि विषयों के पठन में मानसिक योग्यता के इस रूप को विकसित करना आवष्यक है। इस प्रकार की मानसिक योग्यता का

प्रमुख लक्षण है, शीघ्र तथा सफल अभिबोध करना तथा प्रत्यक्ष में उपस्थित विषय के अमूर्त गुणों को समझना एवं उनके आपसी संबधों को जानना। अमूर्त मानसिक योग्यता के तीन प्रमुख व्यवहारिक लक्षण निम्न हैं–

- विभिन्न प्रकार के कार्य करने की क्षमता जो व्यक्ति अनेक प्रकार के कार्य करते हैं उसकी अनेक कार्यों को करने की क्षमता से अमूर्त मानसिक योग्यता के विषय में जाना जा सकता है।
- कार्य करने की गति– जो व्यक्ति अमूर्त गुणों वाले कार्यों को जितनी शीघ्रता से करता है उनमें अमूर्त मानसिक योग्यता उतनी ही अधिक आंकी जाती है।
- आकांक्षा स्तर– आंकाक्षा स्तर व्यक्ति की अमूर्त मानसिक योग्यता होता है। उच्च आकांक्षा स्तर के व्यक्ति शीघ्र ही तात्कालीन विषय का प्रत्यक्षीकरण कर उसे सम्पन्न करते हैं तथा अपने आगामी प्रयासों में उच्च प्राप्ति के उद्देष्य निष्चित करते हैं।

2. मूर्त मानसिक योग्यता– मूर्त मानसिक योग्यता का सम्बन्ध वातावरण में उपस्थित वस्तुओं, पदार्थों की समझने तथा उनके अनुरूप कार्य करने से होता है। इसे यान्त्रिक या गत्यात्मक मानसिक योग्यता भी कहा जाता है। इस मानसिक योग्यता का प्रयोग वातावरण की स्थूल वस्तुओं के अनुप्रयोग तथा उन्हें समझने में किया जाता है, जैसे मिस्त्रीगिरी का काम अथवा कलपुर्जों की जांच पड़ताल करना।

नृत्य, खेल एवं तैराकी आदि ऐसी क्रियायें हैं जहाँ मूर्तबुद्धि का योगदान अधिक रहता है।

3. सामाजिक मानसिक योग्यता– सामाजिक योग्यता व्यक्ति की वह योग्यता है, जिसका संबंध सामाजिक समायोजन से होता है। यह योग्यता व्यक्ति को सामाजिक संबंध बनाने, उनमें निरन्तरता लाने तथा समाज में समायोजन करने में सहायता करती है। व्यक्तित्व गुणों की दृष्टि में स्वभाव, सहयोग, सम्बन्धों में ईमानदारी, मनोवृत्तियाँ सहनषीलता, वस्तुनिष्ठता, निर्णय लेना तथा हास्य स्वभाव सामाजिक, मानसिक योग्यता की ओर संकेत करते हैं। राजनीति में नेतागण इसी मानसिक योग्यता का उपयोग कर लोकप्रिय बनते हैं।

1.4.1 संज्ञानात्मक विकास

संज्ञानात्मक विकास से अभिप्राय संज्ञान भण्डार में वृद्धि एवं उसके उपयोग से होता है। मानसिक क्षमताओं का विकास, उनका उपयोग एवं वातावरण में समायोजन की क्षमता का दूसरा नाम ही संज्ञानात्मक विकास है। संज्ञानात्मक विकास में प्रत्यक्ष–बोध, अधिगम, स्मृति, चिन्तन तर्क तथा अन्य मानसिक क्षमताएँ सम्मिलित रहती है। इसमें भाषा विकास, चिन्हों, संप्रत्ययों तथा प्रतिमानों का अधिगम, विकास तथा उपयोग भी जुड़ा रहता है। मानसिक विकास स्वतन्त्र रूप से कुछ नहीं है। वह तो शरीर के अन्य विकास स्तरों का योग एवं अभिव्यक्ति है। बालक की क्रिया –प्रतिक्रिया से उत्पन्न व्यवहार के द्वारा ही बालक के मानसिक विकास का पता चलता है। मानसिक विकास में प्रतिमानित (च्ंजजमउमक) अनुक्रियायें निहित होती है। इसमें सहयोग (ेवबपंजपवद) तथा प्रतिक्रिया (त्मंबजपवद) द्वारा व्यवहार का प्रकाषन होता है। इन अनुक्रियाओं में संवेदना (मदेंजपवद), प्रतिबोध (च्मतममचजपवद), स्मृति (डमउवतल), कल्पना (प्उंहपदंजपवद) तथा तर्क (त्मेंवदपदह) आदि मानसिक व्यवहार का प्रकाषन करती हैं। जैसे–जैसे बालक के व्यवहार प्रतिमानों के प्रगति होती है वैसे– वैसे व्यवहार की प्रतिक्रियाओं से मानसिक विकास परिलक्षित होने लगता है। आयु के साथ–साथ चिन्तन में

लोच आने लगती है। सम्बोध अथवा प्रत्यय (ब्वदबमचजे) का विकास होने लगता है समाज के सम्पर्क से ही शषा तथा संबध विकसित होते हैं जो बालक का मानसिक विकास करके उसे सामाजिक बनाते हैं।

व्यापक अर्थ में मानसिक विकास में समझने, स्मरण करने, ध्यान केन्द्रित करने, निरीक्षण विचार, तर्क, समस्या समाधान आदि को लिया जाता है।

मानसिक विकास के मान–दण्ड

मानसिक विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुसंधान हुए हैं। इन अनुसंधानो का सार यह है कि मानसिक प्रक्रिया जटिल होती है। इन जटिल प्रक्रियाओं के आधार पर किसी संकल्पना का निर्माण करना सम्भव नहीं है। अतः ये कुछ मुख्य मापदण्ड हैं जिनसे मानसिक विकास का पता चलता है।

1. **बुद्धि(प्दजमससपहमदबम) में वृद्धिः** वुद्धि का विकास कितने अंषों तक हुआ है उसका मापन बुद्धि परीक्षणों द्वारा होता है। टर्मल ने अमूर्त चिन्तन की योग्यता को बुद्धि कहा है। बुद्धि के दो रूप हैं (अ)आनुवांषिक संभाव्य योग्यता (ब) अर्जित बुद्धि योग्यता ।

बालक के मानसिक विकास की गति इन बातों पर विषेष रूप से निर्भर है

1. बच्चों के विकास का ढंग,
2. परिवेष तथा परिस्थितियां,
3. परिवेष में मनोविज्ञानक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ,
4. मानसिक विकास का मूल्यांकन करने के लिए प्रयुक्त परिणाम का रूप।

2. **मानसिक क्रियाओं में वृद्धि** – मानसिक क्रियाओं में वृद्धि होने से ही मानसिक विकास का अनुमान लगाया जाता है। पन्द्रह वर्ष की आयु को मानसिक परिपक्वता का आधार मानकर बाकी वर्षों में मानसिक स्तर को पहचाना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक वृद्धि की सीमा विभिन्न आयु वर्षों में होने लगती है। मानसिक क्रियाओं की वृद्धि के ज्ञान के लिये शब्द ज्ञान, उपमायें, रिक्त–पूर्ति, विपरीत षब्दों के परीक्षणों का उपयोग अधिक किया गया है।

3. **भाषा विकास–** मानसिक विकास का पता भाषा विकास से भी चलता है। परिपक्वता तथा अधिगम के परिणामस्वरूप भाषा का विकास होता है। भाषा के द्वारा ही अर्जित गाह्य शक्ति तथा नवीन क्रियाओं को सीखने की क्षमता विकसित होती है। प्रारम्भिक वर्षों की अपेक्षा बाद के वर्षों में बालक जटिल वाक्य रचना तथा अधिक शब्दों को सीखता है।

4. **संकल्पनात्मक विकास–** मानसिक विकास प्रतिबोध (च्मतबमचजपवद) द्वारा भी होता है। संकल्पना के निर्माण का महत्व मानसिक विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है। बाल्यावस्था तक बालक मांस–पेषियों पर नियन्त्रण तथा पदार्थों को देखने में स्थिरता को विकसित करता है। विद्यालय पूर्व अवस्था में बालक का विचार उसकी अपनी सीमाओं तक रहता है।

5. **अन्य तत्व–** संवेदना, निरीक्षण, स्मरण, चिन्तन, निर्णय प्रत्यक्षीकरण, ध्यान, तर्क, सीखना आदि मानसिक तत्वों को भी मानसिक विकास के मापदण्ड या पक्षों के अन्तर्गत रखा गया है।

बालक जो कुछ भी चिन्तन करता है, उसका आधार प्रत्यय होता है। पियाजे(च्यंहमज) ने दो जार लिए। एक में मोटे मोती भरे और दूसरे में छोटे मोती, फिर उसने छोटे बालकों से पूछा कि किस जार में ज्यादा मोती है। बच्चों ने बडें मातियों वाले जार में ज्यादा मोती बतायें । स्पष्ट है कि जार की सतह को देखकर ही बच्चों ने ऐसा अनुमान लगाया। उनमें लम्बाई, चौडाई तथा ऊँचाई का प्रत्यय तो विकसित हुआ, परन्तु तर्क का विकास नहीं हो पाया। बडे बच्चों ने सही उत्तर दिया।

1. शैषवावस्था में मानसिक विकास : शैषवावस्था में मानसिक विकास का प्रमुख साधन ज्ञानेन्द्रिया (मदेम व्तहंदे) है। षिषु अपने वातावरण की प्रत्येक वस्तु को देखता और उसे जानने का प्रयत्न करता है। षिषु खिलौनों तथा परिवार के सदस्यों के सम्पर्क में ही आता है। वह अपने खिलौनो तथा परिवार के सदस्यों को पहचानता है। इस अवस्था में मानसिक विकास की गति तीव्र होती है। तीन वर्ष तक की अवस्था से मानव जीवन की आधार–षिला का निर्माण हो चुकता है, ऐसा मनोविष्लेषणवादियों का कथन है। 6 वर्ष की अवस्था से स्मरण शक्ति विकसित होने लगती है। जिज्ञासा (ब्वतपवेपजल) भी उत्पन्न हो जाती है। जिसके परिणामस्वरूप वह अपने सम्पर्क में आने वाली वस्तुओं के बारे में माता–पिता से प्रष्न करना आरम्भ कर देता है। बर्ट (ठनतज) ने 1928 में एक अध्ययन किया। उसने बताया कि 3 वर्ष का षिषु 4 से 5 मिनट तक, 4 वर्ष का षिषु 5–6 मिनट तक अपना ध्यान किसी वस्तु पर केन्द्रित कर सकता है। षिषुओ का ज्ञान स्थूल वस्तुओं के बारे में ही होता है। जिज्ञासा के कारण तर्क–षक्ति का विकास भी होने लगता है।

ष्षैषवस्था में मानसिक विकास इस प्रकार होता हैः

- भूख का अनुभव, हाथ पैर हिलाना, चौंकना आदि।
- दूसरे महीने में वस्तुओं पर ध्यान केन्द्रित करना, तेज रोषनी के प्रति प्रतिक्रिया, क्रोध आदि प्रकट करना।
- चौथे महीने में वस्तुओं को पकडना, मुस्कराना, क्रोध करना।
- छठे महीने में वस्तु को मुंह में रखना, नाम सुनकर समझना, सहारे से बैठना, ध्वनि निकालना।
- आठवें महीने में वस्तु हाथ से छीनने पर रोना, अपनी रूचि की वस्तु या खिलौना चुन कर उठाना, घुटनों के बल चलना।
- दसवें महीने में छोटे –छोटे शब्द बोलना,चलना।
- दूसरे साल में दो शब्दों के वाक्य बोलना, लकीर खींचना।
- तीसरे वर्ष में नाम बताना, गिनती दोहराना, अन्तर समझना।
- बाद में धीरे–धीरे ठंडी –गर्म वस्तुओं का ज्ञान रंगभेद, आदि का ज्ञान होने लगता है।

2. **बाल्यकाल में मानसिक विकास** : बाल्यावस्था में मानसिक विकास की स्थिति तीव्र होती है। इस अवस्था में बालक में सहज प्रवृत्तियों (त्मसिमगंबजपवदे) तथा मूलप्रवृत्तियों (प्देजपदबजे) का विकास हो जाता है। वह अपनी जिज्ञासा शाँत करने के लिए अनेक प्रकार के प्रष्न अपने अभिभावकों से करता है। उसकी रूचि विस्तार पाने लगती है। छोटी–छोटी रोचक कहानियां पढने में उसकी रूचि बढ जाती है। यात्रा करने तथा इतिहास पढने में समय लगता है। सूक्ष्म चिन्तन का आरम्भ हो जाता है। समस्या पर चिन्तन करके कारण तथा निदान खोजने का प्रयत्न करता है। स्मरण शक्ति बढ जाती है। रटने की योग्यता का विकास हो जाता है।

इस अवस्था में 6 वर्ष के बालक को दायें–बायें का ज्ञान, 13–14 वस्तुओं को गिनना, समस्या का समाधान करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। 7 वर्ष के बालक में दो वस्तुओं का अन्तर करने की शक्ति विकसित हो जाती है। 8 वर्ष की आयु में वह 16–17 शब्दों के वाक्यों को दोहरा सकता है। 9 वर्ष की आयु में वह दिन, समय–तारीख बता सकता सकता है। सिक्कों का ज्ञान प्राप्त कर लेता हे। ओर 5–6 तुकांत शब्दों को बताने में सफलता प्राप्त कर लेता हे। 10 वर्ष की अवस्था में वह छोटे–छोटे वाक्यों की त्रुटियों को दोहराने लगता है। 3 मिनट में वह 60–70 शब्दों को दोहरा सकता है। 11 वर्ष की आयु में समानता, भिन्नता, तुलना, नर–नारी, पषु–पक्षी आदि में भेद कर सकता है। 12 वर्ष की अवस्था में वह किसी बात का कारण बता सकता है तथा अपनी ओर से व्याख्या कर सकता है।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास इस प्रकार होता हैः

- विद्यालय में प्रवेष लेने के कारण घर के अतिरिक्त मानसिक विकास के अवसर मिलते हैं।
- उसमें बाह्य चिन्तन के अवसर मिलते हैं।
- जिज्ञासा का विकास नई–नई चीजों को देखकर होता है।
- पढने लिखने की रूचि विकसित होती है।
- रचनात्मक शक्ति का विकास होता है।
- निर्णय, तक शक्ति बढती है। कल्पना का विकास होता है।

3. किषोरावस्था में मानसिक विकास– किषोरावस्था में बालक का मानसिक विकास उचित परामर्ष की अपेक्षा रखता है। अध्यापकों तथा अभिभावकों को इस अवस्था में होने वाले किषोर के मानसिक विकास की जानकारी प्राप्त करके उसे दिषाबोध देने का महत्वपूर्ण दायित्व निर्वाह करना चाहिए। किषोरों में मानसिक विकास का परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है–

- किषोरावस्था में किसी वस्तु या विषय के प्रति ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता विकसित हो जाती है। वह अमूर्त चिन्तन कर सकता है। बाल्यकाल की चंचलता समाप्त हो जाती है। उसके ध्यान की अवधारणा में बाह्य परिस्थितियों की बाधा कम पड़ती है।
- किषोर की स्मरण शक्ति विकसित हो जाती है। स्थायी स्मरण योग्यता बढ़ जाती है। लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा रटन्त शक्ति बढ़ जाती है।

- इस अवस्था में कल्पना–षक्ति विकसित हो जाती है। इन कल्पना शक्तियों के आधार पर ही वह अपनी आंतरिक शक्तियों का विकास करता है। दिवास्पप्न में भी वृद्धि होती है। कल्पना का विकास लड़कों में लड़कियों की अपेक्षा अधिक होता है।
- तर्क शक्ति के विकास के कारण किषोर तर्क के अभाव में किसी बात को स्वीकार नहीं करता। प्रत्येक समस्या के विषय में उसमें प्रष्न करने की प्रवृत्ति का विकास भी होता है।

किषोरावस्था में रूचि का विकास तेजी से होता है और उनकी रूचि विषिष्ट रूचियों की ओर विकसित हो जाती है। ये रूचियाँ अनेक प्रकार की हो सकती है।

- इस अवस्था में लड़के तथा लड़कियों के खेल की रूचि भी भिन्न हो जाती है। लड़के सामूहिक खेल खेलने में रूचि रखते हैं, जैसे फुटबाल, कबड्डी आदि। लड़कियाँ नाचने–गाने, ड्रामा, संगीत आदि में अधिक रूचि लेती है।
- किषोरावस्था में शरीर के प्रदर्षन की भावना भी विकसित होने लगती है। लड़के अपने शरीर को मांसल बनाते हैं एवं लड़कियाँ श्रृंगार–सामग्री का अधिक अच्छी तरह से उपयोग करने लगती हैं।
- स्वतन्त्र पठन की रूचि भी विकसित हो जाती है। लड़के वैज्ञानिक साहित्य, हास्य, देष–प्रेम, रोमांच तथा यौन साहित्य पढ़ने का प्रयत्न करते हैं। लड़कियाँ प्रेम कहानियाँ तथा लुक छिप कर यौन साहित्य भी पढ़ती है। लड़कों को समाचार–पत्रों में खेल के स्तम्भ पढ़ने में भी रूचि हो जाती है।
- किषोरावस्था में सिनेमा देखने, रेडियों से हास्य वार्तायें, झलकियां, फिल्मी गाने आदि सुनने का शौक बढ़ जाता है। लड़के साहित्य, स्टट चलचित्र देखने में अधिक रूचि लेते हैं तो लड़कियाँ रोमांस–पूर्ण सुखान्त एवं धार्मिक चित्र देखना पसन्द करती है। रेडियो पर भी उनकी रूचि हास्य, रोमांस तथा मनोरंजनात्मक कार्यक्रम सुनने की रहती है।
- किषोरावस्था में बातचीत के विषय का भी निर्धारण होता है। लड़कों की बातचीत का आधार खेल तथा सिनेमा होता है। वे सामाजिक कार्यों में भी रूचित लेने लगते हैं। लड़कियों के विषय में भी लड़के बातचीत किया करते हैं। लड़कियां अपनी सहेलियों से व्यक्तिगत समस्याओं क्रियाओं के विषय में बातचीत करती हैं। लड़के खेत तथा यात्रा सम्बन्धी बातों में अधिक रूचि लेते हैं।
- इस अवस्था में किषोर अपने भविष्य की योजनायें बनाने लगते हैं। आमतौर पर यह देखा गया है कि निर्धन परिवारों के किषोर अपने माता–पिता का व्यवसाय अपनाने में रूचि नहीं रखते। धनी परिवारों के किषोर माता–पिता अपनाने में रूचि रखते हैं। सामान्यतया डाक्टरी, इन्जीनियरिंग वकालत, प्रषासनिक व्यवसायों के ग्रहण करने की दिषा में किषोर प्रयत्नषील रहते हैं। लड़कियों की रूचि डाक्टर, नर्स लेखिका, अध्यापिका, सामाजिक कार्यकत्री, अभिनेत्री आदि बनने की होती है।

संज्ञानात्मक विकास के स्तर–

अ. शैषवकाल (जन्म से 2 वर्ष)– संज्ञानात्मक विकास की प्रथम अवस्था बाल्यकाल की होती है। षिषु का प्रारम्भिक मानसिक विकास खिलौनों, माता–पिता तथा परिवार के सदस्यों के सम्पर्क में आने से होता है। शैषवकाल में मानसिक विकास सांवेदनिक अनुभवों तथा गत्यात्मक क्रियाओं के माध्यम से होता है। वह अपने संवेदिक अनुभवों तथा शारीरिक क्रियाओं में समन्वय स्थापित कर आसपास के वातावरण के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करता है तथा अपने ज्ञान में वृद्धि करता है। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति के द्वार होते हैं तथा संवेदनिक स्नायु अनुभवों को संग्रहित करने का माध्यम पियाजे ने इसे इन्द्रिय गामक अवस्था कहा है तथा स्पष्ट किया है कि 3 मास का बालक स्वयं को दूसरों से भिन्न प्रत्यक्ष करने लगता है। जैसे–जैसे वह बड़ा होता है वातावरण को जानने तथा समझने की उसकी जिज्ञासा तथा योग्यता बढ़ती जाती है। 10 मास का षिषु क्रियाएँ करने में दूसरों का अनुकरण करने लगता है। एक वर्ष का बालक मात्र 4 शब्द बोलता है जबकि दो वर्ष के बालक का शब्द भण्डार 200 शब्दों से अधिक हो जाता है।

षिषुओं का संज्ञानात्मक विकास निम्न बातों पर निर्भर करता है

(अ) बालक के पालन–पोषण की रीतियाँ, प्रवधियाँ तथा माता–पिता द्वारा अपनाए गए पालन–पोषण के प्रतिमान।

(ब) वातावरण से सम्बंधित परिस्थितियाँ।

(स) बालक के वातावरण के मनोवैज्ञानक तथा सामाजिक कारण।

व. पूर्व बाल्यकाल (2–6वर्ष)– इस अवस्था में गत्यात्मक अनुक्रियाओं का स्थान शब्द ले लेते हैं। प्राथमिक संप्रत्यय विकसित होने लगते हैं। इस अवस्था में बालक सजीव व निर्जीव पदार्थों में अन्तर करना सीखता है। इस अवस्था में संप्रत्यय निर्माण में वृद्धि होती है तथा निर्मित संप्रत्यय स्थायी बनते चले जाते हैं। वह उनका सामान्यीकरण भी करने लगता है। पियाजे के अनुसार पूर्व बाल्यकाल की समाप्ति तक बालकों में अन्तदृष्टि विकसित होने लगती है। व सरल व साधारण समस्याओं के समाधान खोजने का प्रयत्न करने लगते हैं।

यहाँ बालकों में भाषा–विकास बड़ी तीव्र गति से होता है। 6–7 वर्ष का बालक लगभग 21000 शब्दों का प्रयोग कर सकता है। वह छोटी–छोटी घटनाओं का वर्णन विस्तृत रूप से जटिल वाक्यों का प्रयोग कर सकता है।

स. उत्तर बाल्यवस्था– (6–12 वर्ष)– यह मानसिक विकास की स्थूल व्यावहारिक अवस्था;ब्वदतमजम व्चमतजपवदंस`जंहमद्ध होती है। इस अवस्था में वह विभिन्न परिस्थतियों, पदार्थों तथा घटनाओं के पारम्परिक संबधों को समझ सकता है। तब निर्मित संप्रत्यय स्थायी हाने के साथ–साथ आपस में सम्बंधित तथा संगठित होने लगते हैं। बालक अब वस्तुओं तथा पदार्थों को विभिन्न श्रेणियों में तथा सह–श्रेणियों में विभाजित करने की योग्यता का प्रयोग करने लगता है। वह घटनाओं तथा दूसरों के विचारों का भिन्न दृष्टिकोणों से मूल्यांकन करने का प्रयत्न करने लगता है।

द. किषोरवस्था– संज्ञानात्मक विकास की यह औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था है जो 12 से 18 वर्ष तक होती है। यह अवस्था बालकों के विकास की उच्चतम अवस्था है। इस अवस्था को मुख्य विषेषतायें इस प्रकार से हैं–

बालक का अधिकतम बौद्धिक विकास उसी अवस्था में होता है। चिन्तन का केन्द्र स्थूल चिन्तन के स्थान पर अमूर्त चिन्तन बन जाता है।

- कल्पना शक्ति का विकास असीमित हो जाता है।
- बालक तर्क द्वारा अपने पक्ष का समर्थन प्रभावकारी ढंग से करना सीख लेता है, तथा दूसरों के पक्ष अथवा विपक्ष संबधीं विचारों को भी समझने लगता है।
- वह अपने विचारों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने के योग्य हो जाता है।
- चिन्हों, प्रतिमाओं तथा संप्रत्ययों के पर्याप्त विकास के साथ–साथ बालक इन का प्रयोग समस्या–समाधान में भी करने लगता है।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के स्तर–

जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते हैं तो उनका संज्ञानात्मक विकास कैसे आगे बढ़ता है यह जानने क लिए पियाजे ने स्वंय के बच्चों को खोज का विषय बनाया। इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप उन्होंने जिन विचारों का प्रतिपादन किया, उन्हें पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है।

पियाजे की सैद्धान्तिक अवधारणायें–

पियाजे ने मानव मस्तिष्क के संज्ञानात्मक प्रणाली की संरचना, कार्यप्रणाली ओर विकास को समझने हेतु एक उचित प्रारूप विकसित किया जिसके अनुसार हमारे शरीर के शारीरिक अगों की तरह हमारे मस्तिष्क के दो पहलू होते हैं।

(अ) संज्ञानात्मक संरचना

(ब) संज्ञानात्मक कार्यप्रणाली

(अ) संज्ञानात्मक संरचना– मानव षिषु कुछ जन्मजात प्रवृत्तियों तथा सहज प्रवृत्तियों जैसे– चूसना, देखना, पहुँचना तथा पकड़ना को लेकर पैदा होता है। इस प्रकार षिषु के पास प्रारम्भ में संज्ञानात्मक संरचना के रूप में ये चार प्रकार की संज्ञानात्मक योग्यतायें/क्षमतायें पाई जाती हैं। पियाजे ने इन योग्यताओं की शीमाजै;बीमउेंद्ध नाम दिया तथा इन्हें संज्ञानात्मक विकास का मूलाधार बताया। बालक जैसे–जैसे बड़े होता है जन्म अनुभवों के आधार पर अन्य शीमाज जुड़ते चले जाते हैं।

(ब) संज्ञानात्मक कार्यप्रणाली–बालक की वृद्धि एवं विकास की यात्रा ठीक ढंग से चलती रहे यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने वातावरण से किस प्रकार समायोजित होता है वातावरण से समायोजन में दो क्रियायें आत्मसातीकरण ;ेपउपसंजपवदद्ध तथा समायोजीकरण ;ेपउपसंजपवदद्ध में बालक अपने परिवेषजन्य परिस्थितियों से निपटने हेतु अपनी संज्ञानात्मक संरचना में पहले से उपस्थित शीमाज की सहायता लेता है। बालक द्वारा नये खिलौने को भी मुँह से रखकर चूसना आत्मसातीकरण है। क्योंकि पुराने खिलौने से वह ऐसे ही खेलता था।

इस तरह आत्मसातीकरण प्रक्रिया बालक से यह अपेक्षा करती है कि उसके पास पूर्व संज्ञानात्मक संरचना के रूप में जो कुछ भी है वह उसी से किसी नवीन परिस्थति का समाना करे। इस परिस्थिति मे बालक को नये शीमाज की जरूरत नहीं होती किन्तु जब नया खिलौना इतना बड़ा हो कि न तो बालक हाथ से पकड़ सके और मुहँ में रख सके तब बालक को वर्तमानसंज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन की जरूरत होगी और वह अपने सोचने व कार्य करने के ढंग से परिवर्तन लाएगा। अब बालक खिलौने को चूसने के बजाय उसे धक्का देकर खेलना चाहेगा। इसी का समायोजीकरण कहा जाता है। बालक जैसे–जैसे बड़ा होता है उसके सामने अनेक समस्यायें आती हैं इनके समाधान में आत्मसातीकरण एवं समायोजीकरण प्रक्रियायें उसकी मदद करती हैं, और बालक का संज्ञानात्मक विकास होता चला जाता है पियाजे ने इस विभाग को चार चरणों में वर्गीकृत किया है–

1. इन्द्रियजनित गामक अवस्था ;मदेवतल डवजवत ैजंहमद्ध. इस अवस्था जन्म से 2 वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में बालक की मानसिक क्रियायें उनकी इन्द्रिय जनित गामक क्रियायों द्वारा ही सम्पन्न होती हैं। उसे भूख लगने पर वह रोता है। खिलौने के लिए वह इषारा करता है। किसी वस्तु का अस्तित्व बच्चे के सामने तभी तक है जब तक वह उसके सामने है। खिलौना छुपाकर जब हम उसे कहते हैं चिड़िया ले गई तो वह मान लेता है। 2 वर्ष का होने तक वह यह समझने लगता है कि वस्तुओं का स्वंय का अस्तित्व होता है।

2. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था ;च्तम.व्वमतंजपवदंस ैजंहमद्ध. इस अवस्था का समय 2 से 7 वर्ष होता है। इसमें अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा होती है। बालक अपने परिवेष की वस्तुओं को पहचानने व भेद करने लगता है उनमें सम्प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। लेकिन अधूरी होती है वे सभी पुरूषों को पापा व सभी स्त्रियों को मम्मी कहकर पुकारते हैं। 5 वर्ष का होने पर व बुआ, दादी, चाचा, चाची, दादा, में भेद करना सीख जाता है। आरम्भ में वे सजीव व निर्जीव में भेद नहीं कर पाते बालिका की गुड़िया को भी गर्मी व सर्दी लगती है। अवस्था के अंत तक सजीव व निर्जीव में भेद करने योग्य हो जाते है। इस अवस्था के आरम्भ में बालक काफी ज्यादा आत्म केन्द्रित होता है उन्हें लगता है मम्मी–पापा ,दादा–दादी, खेल–खिलौने सब उनके हैं। अवस्था के अन्त तक वस्तुओं का लेन–देनसीख जाता है।अवस्था के आरम्भ में वे कल्पना शील होते हैं। इस आयु के बच्चों में दो क्षमताओं का अभाव पाया जाता है।

(अ) विपरीत सोचने की शक्ति का अभाव

(ब) वस्तुओं को उनकी संख्या व परिमाण के संदर्भ में सही रूप से समझने की शक्ति

पहले योग्यता के अभाव में वह यह समझने में असफल रहता है कि उसके घर से स्कूल उतनी ही दूर है जितना कि स्कूल से उसका घर।

3. मूर्त सक्रियात्मक अवस्था–इस अवस्था का समय काल 7 वर्ष से 11 वर्ष के बीच होता है। जिसमें निम्न बातें देखने को मिलती हैं।

- उनमें वस्तुओं को पहचानने, उनका विभेदीकरण करने की क्षमता विकसित हो जाती है।
- वे वस्तुओं के बीच समानता, सम्बन्ध, असमानता, दूरी और विसंगतता को समझने लगते हैं। जिससे वे बता पाते हैं कि 9 सेब से 3 सेब कितने अधिक हैं।

4. अमूर्त सक्रियात्मक अवस्था–इस अवस्था का समय 11 वर्ष से 15 वर्ष के बीच होता है। इसकी निम्न विषेषताऐं हैं–

- विचारने, सोचने, तर्क करने, अवलोकन, प्रयोग आदि के द्वारा उचित निष्कर्ष की पर्याप्त क्षमता विकसित हो जाती है
- चिन्तन अब अमूर्त हो जाता है। जैसे– कल्पना करो कि ;ाब्द्धएक त्रिभुज है तार में विद्युत प्रवाहित हो रही हैं आदि बातों को विद्यमान न होने पर भी समझा जा सकता है।
- समस्या समाधान योग्यता का उचित विकास हो जाता है।
- प्रयास एवं त्रुटि विधि के स्थान पर बौद्धिक शक्तियों के प्रयोग द्वारा सीखने की आदत विकसित हो जाती है।

पियाजे के सिद्धांत की शैक्षिक उपयोगिता का योगदान–

- व्यक्ति की बुद्धि का मापन उसकी समायोजन क्षमता के आधार पर ही किया जा सकता है। पियाजे ने बुद्धि को एक गतिमान प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया जिसके द्वारा विषेष परिस्थति में समायोजन क्षमता के रूप में विषेष भूमिका निभाई जाती है जैसे–जैसे बालक बड़ा होता है उसकी समायोजन क्षमता बढ़ती जाती है, और बौद्धिक विकास में प्रगति होती रहती है।
- पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त ने बालक के विनाम में अभिप्रेरकों व अभिप्रेरणा के महत्व को अच्छी तरह उजागर किया। अपनी एक अवधारण संतुलनीकरण के माध्यम से पियाजे ने यह बताने की कोषिष की कि हम अपनी क्षमताओं ओर अपने वातावरण की माँगों के बीच संतुलन बनाये रखने की हर संभव कोषिष करते रहते हैं।
- पियाजे का सिद्धान्त पाठ्यक्रम नियोजन तथा अध्ययन क्रम की संरचना हेतु हमें काफी महत्वपूर्ण ज्ञान तथा परामर्ष देता है। बालकों के लिये जो भी पाठ्यक्रम बनाया जाये वह उनके परिपक्वन स्तर तथा मानसिक योग्यताओं से मेल खाता हुआ होना चाहिए। जैसे कि पहली व दूसरी कक्षा के विद्यार्थियों को भूगोल पढ़ाना ठीक नहीं क्योंकि उनके संज्ञानात्मक विकास में अभी देष, राज्य व शहर की अवधारणा विकसित नहीं हुई है जिसकी आवष्यकता उन्हें विष्व की भौगोलिक जानकारी हेतु चाहिए।
- पियाजे का सिद्धांत अध्यापकों तथा माता–पिता को बालकों की संज्ञानात्मक संरचना ओर कार्यप्रणाली में आयु की वृद्धि के साथ होने वाले परिवर्तनों से परिचय कराता है
- पियाजे का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से यह संकेत देता है कि बालाकों को जो भी अधिगम अनुभव प्रदान किये जाये व कुछ अर्थों में नवीन तथा चुनौतीपूर्ण होने चाहिए ताकि बालकों को समायोजीकरण की प्रक्रिया को अपनाकर कुछ नया सीखने का मौका मिले साथ ही इन अनुभवों का बालकों के पूर्व ज्ञान तथा अनुभवों से उचित सम्बन्ध बने रहना काफी आवष्यक है ताकि विद्यार्थियों द्वारा नये अनुभवों का अच्छी तरह आत्मसातीकरण करके ग्रहण करने में सुविधा हो।

- पियाजे का सिद्धान्त बालाकों के संज्ञानात्मक विकास हेतु भौतिक तथा सामाजिक वातावरण संबंधीं अनुभवो को काफी आवष्यक ठहराता है।
- पियाजे का सिद्धान्त छोटे बच्चों की षिक्षा (नर्सरी तथा किन्डरगार्डन स्तर) के सन्दर्भ में निम्न सुझाव प्रस्तुत करता है।

  (अ) नर्सरी तथा किन्डरगार्डन स्तर के बालाकों का चिन्तन मूर्त होता है अतः उन्हें नयी बातें समझाने क लिए मूर्त वस्तुओं की सहायता लेनी चाहिए जैसे यदि बच्चों को 1/4 नामक भिन्न से परिचित कराना है तो सेब को 4 बराबर भागों में विभाजित कर एक भाग 1/4 से संबोधित कर समझाना उचित है।

  (ब) अध्यापक को चाहिये स्वयं विद्यार्थियों को सभी कुछ बताने की चेष्टा न करें बल्कि बालकों के लिए ऐसी अधिगम परिस्थतियाँ साधन बालाकों को उपलब्ध कराएं।
- पियाजे का सिद्धान्त यह भी बताता है कि इन्द्रियजनित गामक अवस्था के बाद भी कुछ बालकों को षिक्षण अधिगम प्रक्रिया शाब्दिक संप्रेषण के साथ अषाब्दिक संप्रेषण की भी आवष्यकता होती है
- पियाजे ने अपने सिद्धान्त के द्वारा इस बात पर भी जोर दिया कि बालाको को दिए जाने बाले अधिगम अनुभव उनकी संज्ञानात्मक संरचना के अनुसार तय किए जाने चाहिए जिसमें बाल केन्द्रित षिक्षा का उद्‌भव हुआ।

1.7 इकाई सारांषः याद रखने योग्य बातें

- संज्ञानात्मक विकास से अभिप्राय संज्ञान भण्डार में वृद्धि एवं उसके उपयोग से होता है। मानसिक क्षमताओं का विकास, उनका उपयोग एवं वातावरण में समायोजन की क्षमता का दूसरा नाम ही संज्ञानात्मक विकास है।
- सभी मनुष्य एक जैसे नहीं होते उनमें व्यक्तिगत भिन्नताएँ पाई जाती हैं। एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों में आसानी से ये भिन्नता देख सकता है। कुछ विद्यार्थी बहुत जल्दी सीख जाते हैं, और कई विद्यार्थी बहुत देर बाद सीखते हैं। बालक की वह योग्यता जिसमें वह रूचि, अभिवृत्ति, प्राप्त ज्ञान एवं कौषल में दूसरे बालकों से भिन्न होते हैं, मानसिक योग्यता कहलाती है।
- पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएँ इन्द्रियजनित गामक अवस्था, पूर्व संक्रियात्मक अवस्था, मूर्त सक्रियात्मक अवस्था एवं अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था बताई हैं।
- अमूर्त मानसिक योग्यता का संबंध सूक्ष्म चिंतन तथा मनन से होता है। मानसिक योग्यता का यह रूप समस्याओं तथा अनुभवों को प्रतिमाओं तथा चिन्हों की सहायता से अधिक स्पष्ट करता है। कवि, साहित्यकार तथा चित्रकार आदि अपने भावों का प्रकाषन इसी मानसिक योग्यता के माध्यम से करते हैं।
- मूर्त मानसिक योग्यता का सम्बन्ध वातावरण में उपस्थित वस्तुओं, पदार्थों की समझने तथा उनके अनुरूप कार्य करने से होता है।

- सामाजिक योग्यता व्यक्ति की वह योग्यता है, जिसका संबंध सामाजिक समायोजन से होता है। यह योग्यता व्यक्ति को सामाजिक संबंध बनाने, उनमें निरन्तरता लाने तथा समाज में समायोजन करने में सहायता करती है।

1.8 अपनी प्रगति की जॉच करें

प्रष्न– मानसिक योग्यता का क्या अर्थ है?
प्रष्न– संज्ञानात्मक विकास के स्तर कौन से है?
प्रष्न– मानसिक योग्यता के प्रकार कौन से है?
प्रष्न– पियाजे के सिद्धांत की षैक्षिक उपयोगिता क्या है?

1.9 गतिविधि

1.10 चर्चा के विन्दु

मानसिक योग्यता किस प्रकार आपकी उपलब्धि को प्रभावित करती है.....

.....
.....
.....
.....
.....

संदर्भ ग्रंथ सूची –

षर्मा, पूजा (2015), षैक्षिक समाज मनोविज्ञान, ए. के एन्टरप्राइजेज, जयपुर

सिंह, रतन (2012), सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेषन्स नईदिल्ली

मिश्रा, महैन्द्र कुमार (2007), समाज मनोविज्ञान और षिक्षक अवधारणा क्लासिक कलैक्षन, जयपुर

विक्र, जसवन्त कौर (2011), अधिगमकर्ता, अधिगम एवं संज्ञान, ट्विन्टी फस्ट सेन्चुरी पब्लिकेषन्स, पटियाला।

षुक्ला, ओ.पी, षिक्षा मनोविज्ञान, प्रकाषक भारत बुक सेन्टर लखनऊ

भटनागर, सुरेष (2010), षिक्षा मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ

यादव, सियाराम (2010), अधिगमकर्ता का विकास एवं षिक्षण अधिगम प्रक्रिया, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

मंगल, एस.के, मंगल, उमा (2014), विद्यार्थी, अधिगम एवं संज्ञान, टंडन पब्लिकेषन्स, लुधियाना

बी. एड. प्रथम वर्ष
प्रथम प्रष्न पत्र
बाल्यवस्था, बाल विकास एवं अधिगम
खण्ड 3
संज्ञान एवं संज्ञानात्मक विकास
इकाई 3
व्यक्तिगत भिन्नता एवं संज्ञानात्मक विकास

संरचना

1.1 परिचय

1.2 उद्देष्य

1.3 व्यक्तिगत भिन्नता का अर्थ

1.4 बुद्धि
1.5 बहुबुद्धि

1.6 सृजनात्मकता
1.7 अभिरूचि
1.8 अभिक्षमता
1.9 इकाई सारांषः याद रखने योग्य बातें

1.10 अपनी प्रगति की जॉच करें

1.11 गृहकार्य

1.12 चर्चा के विन्दु
1.13 गतिविधि
संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ. क्राति वर्मा

सहायक व्याख्याता

बी.एड.

1.1 परिचय

व्यक्तिगत भेद के ज्ञान के अभाव में बालक का सर्वागींण विकास सम्भव नहीं है क्योंकि बालकों के षारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक विकास की भिन्नता षिक्षा को बहुत अधिक प्रभावित करती है। व्यक्तिगत भेद के कारण ही प्रत्येक बालक का व्यक्तित्व

अलग–अलग हो जाता है जो उसके प्रत्येक क्रियाकलाप को प्रभावित करता है। अतः षिक्षक के लिए व्यक्तिगत भेद का ज्ञान नितान्त आवष्यक है। साधारण जीवन में यह देखा गया है कि कोई भी व्यक्ति सभी क्षेत्रों में एक सा निपुण नहीं होता। उच्च अमूर्त चिन्तन योग्यता वाला व्यक्ति सम्भवत सामाजिक जीवन की क्रियाओं में परेषानी अनुभव करे अथवा मूर्त यान्त्रिक क्रियाओं में निपुण व्यक्ति, चिन्तन सम्बन्धी क्रियाएं उतनी सफलता से नहीं कर सकता। सभीबालकों को सृजन के अवसर मिलने चाहिए। ऐसे अवसरों की व्यवस्था कक्षागत स्थितियों में होनी चाहिए। इस प्रकार के अवसरों में बालकों में भिन्नता, गत्यात्मकता स्वतन्त्रता तथा साहस के गुणों के विकास के प्रयत्न करने चाहिए। षिक्षा का उददेष्य बालकों की सामान्य योग्यताओं का विकास कर षैक्षिक उपलब्धि बढाना होता है तथा विषिष्ट योग्यताओं का पता लगा कर उन्हैं विकसित करना भी होता है, जिससे व्यक्ति विषेष योग्यताओं के क्षेत्र में उन्नति कर विषिष्टता पा सके।

1.2 उद्देष्य

- छात्र व्यक्तिगत भिन्नता का अर्थ जान सकेगें।
- छात्र बुद्धि के प्रकारों को समझ सकेगें।
- छात्र सृजनात्मकता का अर्थ जान सकेगें।
- छात्र अभिरूचि के प्रकारों को समझ सकेगें।
- छात्र अभिक्षमता के महत्व को समझ सकेगें।

1.3 व्यक्तिगत भिन्नता का अर्थ

भिन्नता प्रकृति का स्वाभाविक गुण हैं इसीलिए संसार में कोई भी दो व्यक्ति ऐसे नहीं मिलेंगे जो पूर्णतया एक जैसे हों इसे व्यक्तिगत भेद के रूप में जाना जाता है। एक ही आयु के दो बच्चों की षारिरिक वृद्धि, बौद्धिक क्षमताओं, रूचियों, व्यवहारों एवं सांवेगिक स्थितियों में भिन्नता होती है। वर्तमान समय में व्यक्तिगत भेद के ज्ञान के अभाव में समुचित षिक्षा व्यवस्था सम्भव नहीं है क्योंकि बालकों के षारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक विकास की भिन्नता षिक्षा को बहुत अधिक प्रभावित करती है। व्यक्तिगत भेद के कारण ही प्रत्येक बालक का व्यक्तित्व अलग–अलग हो जाता है जो उसके प्रत्येक क्रिया कलाप को प्रभावित करता है। अतः षिक्षक के लिए व्यक्तिगत भेद का ज्ञान नितान्त आवष्यक है।

स्किनर के अनुसार –"आज व्यक्तिगत भिन्नता के अन्तर्गत मनुष्य के वे सभी पहलू आते हैं जो किसी प्रकार मापे जा सकते हैं"

टायलर के अनुसार–"षरीर के आकार, रूप, कार्य, गति की क्षमताओं, बुद्धि, ज्ञान, उपलब्धि, रूचि, अभिवृत्ति एवं व्यक्तित्व के लक्षणों में पायी जाने वाली मापनीय भिन्नता व्यक्तिगत भेद को दर्षाती है।"

व्यक्तिगत भेद के रूप या प्रकार

- **षारीरिक भेद–** शारीरिक दृष्टि से व्यक्तियों में रंग, रूप, ऊचांई, भार, बनाबट, यौन–भेद, एवं शारीरिक परिवक्वता आदि में अन्तर होता है।

- **मानसिक भेद–** कुछ व्यक्ति बहुत प्रतिभाषाली होते है। कुछ बुद्धिमान कुछ सामान्य बुद्धि वाले तथा कुछ मन्दबुद्धि एवं मूर्ख होते हैं। इनके साथ ही एक ही व्यक्ति में भी विभिन्न अवस्थाओं में अलग– अलग मानसिक योग्यता पायी जाती है। इनकी जांच बुद्धि परीक्षाओं द्वारा की जाती है इसी मानसिक भेद के कारण ही एक ही कक्षा में एक ही पाठ्यक्रम को उसी अध्यापक द्वारा पढ़ाये जाने पर भी विभिन्न बालकों की उपलब्धियाँ भिन्न होती हैं।
- **संवेगात्मक भेद–** संवेगात्मक भिन्नता के कारण कुछ व्यक्ति उदार, विनम्र तथा कुछ कठोर एवं कंकेष स्वभाव वाले होते हैं। कुछ सदैव प्रसन्नचित्त तथा कुछ हमेषा उदास एवं शान्त रहते हैं।
- **रूचि सम्बन्धी भेद–** सभी व्यक्तियों की रूचियाँ एक जैसी नहीं होती है। कुछ पढने–लिखने में रूचि रखते हैं। तो कुछ खेलने में, कुछ संगीत में, तो कुछ को घूमनें फिरने मे आनन्द आता है। इस रूचि संबंधि भेद के कारण उनके स्वभाव एवं व्यक्तित्व में भी अन्तर आ जाता है।
- **वैचारिक भिन्नता–** किसी भी मुद्दा जैसे षैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं नैतिक आदि पर व्यक्तियों के विचारों मे भिन्नता होती है। यह व्यक्तियों के विचारों में भिन्नता होती है। यह व्यक्तियों के आयु, लिंग, वषानुक्रम तथा वातावरण की भिन्नता के कारण होता है।
- **सीखने एवं करने में भेद–** कुछ व्यक्ति किसी कार्य को जल्दी सीख जाते हैं तथा कुछ बहुत अधिक प्रयास करने के बाद सीखते हैं साथ ही कई वयक्ति किसी कार्य को कुषलता एवं सुचारू रूप से कर लेता है तो दूसरे व्यक्ति को ऐसा करने में कठिनाई होती है।
- **चारित्रिक एवं अन्य विषिष्ट योग्यताओं में भेद–** पारिवारिक संस्कार, षिक्षा, संगीत, एवं मानसिक विकास के माध्यम से व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है। जिसमें भिन्नता होती है इसके साथ ही अलग–अलग व्यक्तियों में अलग–अलग विषिष्ट योग्यताएँ मिलती हैं जैसे कोई अच्छा कारीगर होता है कोई अच्छा डॉक्टर, अच्छा अध्यापक या व्यवसायी आदि।
- **व्यक्तित्व भेद–** भिन्न लक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व के भिन्न–भिन्न प्रकार होते हैं। इनमें प्रमुख है अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी तथा उमयमुखी। व्यक्तित्व की इस भिन्नता के कारण व्यक्तित्व भेद होता है।

व्यक्तित्व भेद के कारण

- **वंशानुक्रम–** व्यक्ति में अन्तर्निहित अधिकांष विषेषताएँ या गुण धर्म जैसे रंग–रूप, कद, शारीरिक गठन, बुद्धि, अभिरूचि, आदि अपने पूर्वजों माता–पिता, दादा–दादी एवं नाना–नानी आदि से प्राप्त होते हैं ये विषेषताएँ जन्मजात होती हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्तिगत भेद का प्रमुख कारण वंषानुक्रम ओर उसका प्रभाव होता है दो व्यक्तियों की अनुवंषिकता या वंषानुक्रम में जितनी निकटतम होती है उनके जन्मजात गुणों एवं क्षमताओं मे उतनी ही समानता होती है। लेकिन माता–पिता से प्राप्त वंषसूत्रों एवं पित्रकों का संयोग भिन्न तरीकों से होने के कारण व्यक्तिगत भेद होता है।

- **वातावरण–** वातावरण मुख्यतः दो प्रकार का होता है प्राकृतिक और समाजिक। इन्हीं से व्यक्ति का पूरा विकास होता है। वंषानुक्रम व्यक्ति को किसी दिषा में विकसित होने के लिए अपेक्षित क्षमता प्रदान करता है तथा वातावरण उस क्षमता के विकसित होने के लिए अवसर एवं सुविधाएं प्रदान करता है, वंषानुसार और वातावरण दोनो व्यक्तिगत भिन्नता के निर्णायक होते हैं। इनके संयुक्त प्रभाव में ही व्यक्ति के स्वभाव रूचि, योग्यता तथा क्षमता आदि का निर्धारण होता है।
- **बुद्धि एवं आयु–** बुद्धि को जन्मजात गुण माना जाता है किन्तु इनका समुचित विकास उपर्युक्त वातावरण या परिवेष में ही सम्भव होता है। बुद्धि में अंतर होने के कारण व्यक्तियों में भिन्नता पाई जाती है आयु के अन्तर के कारण भी व्यक्तियों में असमानता दिखाई जाती पड़ती है। लिंग–लिंग भेद के कारण बालक बालिकाओं में भिन्नता पाई जाती है। लड़कियों का शारीरिक एवं मानसिक विकास लड़कों की अपेक्षा जल्दी हो जाता है। लड़कियाँ कोमल स्वभाव की स्नेहमयी एवं लज्जाषील होती है, जबकि लड़के साहसी, कठोर एवं उग्र स्वभाव के होते हैं।
- **आर्थिक दषा–** बालकों के माता–पिता या परिवार की आर्थिक स्थिति का उनके विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है आर्थिक स्थिति खराव होने पर बालक का समुचित शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास नहीं हो पाता है। एक ही माता पिता के दो बच्चों को अलग अलग आर्थिक स्थितियों में पालने पर उनमें बहुत अन्तर आ जाता है। अतः आर्थिक स्थिति के कारण भी व्यक्तिगत भेद उत्पन्न होते है।
- **षिक्षा व्यवस्था–** एक विद्यालय दूसरे विद्यालय से शैक्षिक स्तर अनुषासन सुविधाओं आदि में भिन्न होता है। इसका बालकों के व्यक्तित्व विकास, चरित्र निर्माण एवं आदतों के विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसी बात को ध्यान में रखकर अभिभावक अपने बच्चों के लिए उपर्युक्त विद्यालय का चयन करते हैं। अतः षिक्षा की अलग–अलग व्यवस्था होने के कारण भी व्यक्तिगत भेद उत्पन्न होता है।
- **जाति प्रजाति एवं राष्ट्रीयता –**एक जाति एवं प्रजाति का व्यक्ति रूप, रंग, एवं बुद्धि में दूसरी जाति के व्यक्ति से भिन्न होता है। जिस प्रकार इंग्लैण्ड का व्यक्ति अफीका के व्यक्ति से रूप, रंग, कद एवं बुद्धि में बिल्कुल अलग होता है।

व्यक्तिगत भेद का शैक्षिक दृष्टि से महत्व

हम जानते है कि एक बालक दूसरे बालक से अनेक बातों में भिन्न होता है अतः प्रत्येक बालक की षिक्षा व्यवस्था भी अलग अलग ढ़ंग से होनी चाहिए किन्तु हम इन्है एक जैसा समझकर षिक्षा देते है जो अपने आप में ही एक बहुत बड़ी बिडम्बना है। बालकों के सर्वागींण विकास के लिए षिक्षको को व्यक्तिगत भेदों का ज्ञान होना चाहिए साथ ही षिक्षा व्यवस्था एवं षिक्षण पद्धति में भी परिवर्तन आवष्यक है। शैक्षिक दृष्टिकोण से व्यक्तिगत भिन्नता महत्वपूर्ण होती है बालकों के सर्वागींण विकास हैतु षिक्षा व्यवस्था में निम्न परिवर्तन होने चाहिए।

1.4 बुद्धि

व्यक्ति को किसी विषेष समय पर विषेष स्थिति में, विषेष ढंग से क्रिया करने में बुद्धि सहायता करती है। साधारण जीवन में यह देखा गया है कि कोई भी व्यक्ति सभी क्षेत्रों में एक सा निपुण नहीं होता। उच्च अमूर्त चिन्तन योग्यता वाला व्यक्ति सम्भवत सामाजिक जीवन की

क्रियाओं में परेषानी अनुभव करे अथवा मूर्त यान्त्रिक क्रियाओं में निपुण व्यक्ति, चिन्तन सम्बन्धी क्रियाएं उतनी सफलता से नहीं कर सकता। इसी आधार पर बुद्धि के तीन प्रकार है।–

अ. अमूर्त बुद्धि– अमूर्त बुद्धि का सम्बन्ध सूक्ष्म चिन्तन तथा मनन से होता है, बुद्धि का यह रूप समस्याओं तथा अनुभवों को प्रतिमाओं तथा चिन्हों की सहायता से अधिक स्पष्ट करताहै कवि, साहित्यकार तथा चित्रकार आदि अपने भावों का प्रकाषन इसी बुद्धि के माध्यम से करते हैं।ष्षब्दों, प्रतीकों तथा अंकों के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की कला अमूर्त अथवा वाचिक बुद्धि की देन है विद्यालय में गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल तथा कला आदि विषयों के पढने में बुद्धि के इस रूप को विकसित करना आवष्यक होता है। इस प्रकार की बुद्धि का प्रमुख लक्षण है तथा सकल अभिबोध करना तथा प्रत्यक्ष में उपस्थित विषय के अमूर्त गुणों को समझना एवं उनके आपसी सम्बन्धों को जानना। अमूर्त बुद्धि के तीन व्यवहारिक लक्षण निम्न है।

- विभिन्न प्रकार के कार्य करने की क्षमता– जो व्यक्ति अनेक प्रकार के कार्य करते है उनकी अनेक कार्यो को करने की क्षमता से अमूर्त बुद्धि के विषय में जाना जा सकता है।
- कार्य करने की गति – जो व्यक्ति अमूर्त गुणों वाले कार्यो में जितनी षीघ्रता से करता है इसमें अमूर्त बुद्धि उतनी ही अधिक आंकी जाती है।
- आकाक्षां स्तर– आकांक्षा स्तर व्यक्ति की अमूर्त बुद्धि का सूचक होता है उच्च आकाक्षां स्तर के व्यक्तिष्षीघ्र ही तात्कालीन विषय अथवा क्रिया के अमूर्त गुणों का प्रत्यक्ष कर लेते है उन्हैं सम्पन्न करते हैं तथा अपने आगामी प्रयासों में उच्च प्राप्ति के उददेष्य निष्चित करते हैं।

व. मूर्त बुद्धि– मूर्त बुद्धि का सम्बन्ध वातावरण में उपस्थित वस्तुओं पदार्थो को समझने तथा उनके अनुरूप कार्य करने से होता है, इसे यान्त्रिक बुद्धि भी कहा जाता है। इस बुद्धि का प्रयोग वातातरण की स्थूल वस्तुओं के अनुप्रयोग तथा इन्हैं समझने में किया जाता है जैसे मिस्त्रीगिरी का काम अथवा कल पुर्जो की जांच पडताल करना नृत्य, खेल तथा तेराकी ऐसी क्रियाएं हैं जहां मूर्तबुद्धि का येागदान अधिक रहता है।

स. सामाजिक बुद्धि– यह बुद्धि व्यक्ति को सामाजिक सम्बध बनाने, उनमें निरन्तरता लाने, स्थायी करने तथा समाज में समायोजन करने में सहायता करती है। व्यक्तित्व गुणों की दृष्टि से स्व भाव, सहयोग, सम्बन्धों में ईमानदारी, मनोवृत्तियों, सहनषीलता, वस्तुनिष्टता, निर्णय लेना तथा हास्य, स्वभाव आदि कारक सामाजिक बुद्धि की ओर संकेत करते हैं।

बुद्धि का वितरण

बुद्धि का सम्बन्ध किसी विषेष जाति, प्रजाति अथवा सांस्कृतिक समूह के प्रखर अथवा मन्द होने से नहीं है किसी भी समाज, जाति अथवा प्रजाति के सामान्य रूप से वितरित जनसंख्या के लगभग 70 प्रतिषत व्यक्ति सामान्य बुद्धि वर्ग में आते है प्रखर बुद्धि एंव मन्द बुद्धि व्यक्ति अनुपातिक रूप से प्रत्येक जाति, प्रजाति अथवा सांस्कृतिक सामाजिक समूह में होत हैंष्षौकले एंव जेनसन का विचार है कि बौद्धिक योग्यता के विकास में 80 प्रतिषत योगदान वंषानुक्रम तथा 20 प्रतिषत पर्यावरण का होता है। स्त्रियों एंव पुरूषों में बौद्धिक योग्यता की दृष्टि से श्रेष्ठता निर्धारित करना एक कठिन

कार्य है अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि वाचिक योग्यता, प्रत्यक्षीकरण योग्यता, कलात्मक एंव हस्तकला योग्यता में स्त्रियां पुरूषों में बौद्धिक योग्यता की दृष्टि से श्रेष्ठता वाचिक येाग्यता, प्रत्यक्षीकरण योग्यता, कलात्मक एंव हस्तकला योगयता में स्त्रियॉ पुरूषों की अपेक्षा अधिक प्रवीण होती हैं। बुद्धि परीक्षणें द्वारा व्यक्तिगत भिन्नता का अध्ययन किया जाता है जिसके आधार पर मन्द , सामान्य एंव प्रकार बुद्धि बालकों को अलग किया जाता है और उनके स्तरानुसार षिक्षण विधि का चयन किया जाता है ।

1.5 बहुबुद्धि– बहुबुद्धि का प्रत्यय हावर्ड गार्डनर ने प्रस्तुत किया। इनके अनुसार बुद्धि कोई एक तत्व नहीं है बल्कि भिन्न प्रकार का बुद्धियों का समूह है। किसी भी समस्या का समाधान खोजने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की बुद्धियॉ आपस में अतंक्रिया करते हुए साथ –साथ कार्य करती हैं, बहुबुद्धि में भिन्न प्रकार की बुद्धियॉ सम्मिलित हैं–

भाषा बुद्धि– यह बुद्धि अपने विचारों को प्रकट करने तथा दूसरे व्यक्तियों के विचारों को समझने की क्षमता है जिन व्यक्तियों में यह बुद्धि होती है वे षब्दों के भिन्न –भिन्न कार्यो के प्रति संवेदनषील होते है अपने मन्द में भाषा के विबों का निर्माण कर सकते हैं लेखकों तथा कवियों में यह बुद्धि अधिक मात्रा में होती है।

तार्किक गणितीय बुद्धि– इस प्रकार की बुद्धि की अधिक मात्रा रखने वाले व्यक्ति तार्किक व आलोचनात्मक चिंतन कर सकते हैं। वे अमूर्त तर्क कर लेते हैं ओर गणितीय समस्याओं के हल के लिए प्रतीकों का प्रयोग अच्छी प्रकार से कर लेते है। वैज्ञानिकों तथा नोबेल पुस्कार विजेताओं में इस प्रकार की बुद्धि अधिक पाई जाने की संभावना रहती है ।

दैषिक बुद्धि– यह मानसिक बिबों को बनाने उनका उपयोग करने तथा उनमें मानसिक धरातल पर परिभाषित करने की योग्यता है। इस बुद्रि को धारण करने वाला व्यक्ति सरलता से दैषिक सूचनाओं को अपने मस्तिक में रख सकता है, विमान चालक, नाविक , मूर्तिकार, चित्राकार, बास्तुकार, षल्यचिकित्सक आदि में इस बुद्धि के अधिक पाये जाने की संभावना होती है।

संगीतात्मक बुद्धि– सांगितिक अभिरचनाओं को उत्पन्न करने, उनका सर्जन तथा प्रहस्तन करने की क्षमता सांगीतिक योग्यता कहलाती है। इस बुद्धि की उच्च मात्रा रखने वाले लोग ध्वनियों ओर स्पंदनों के सर्जन के प्रति अधिक संवेदनषील होते हैं।

षारीरिक – गति संवेदी बुद्धि– सम्पूर्ण षरीर अथवा उनके किसी अंग की लोच का उपयोग करना तथा उसमें सर्जनात्कता प्रदर्षित करना षारीरिक गतिसवेंदी योग्यता कही जाती है। नर्तकों, अभिनेताओं, अभिनेत्रियों, षिकारियों, षल्य चिकित्सकों में इस बुद्धि की अधिक मात्रा पाई जाती है।

अंतवैयिक्तिक बुद्धि– इस योग्यता दवारा व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों की अभिप्रेरणाओं, भावनाओं तथा व्यवहारों का सही बोध करते हुए उनके साथ मधुर संबध स्थापित करता है। मनोवैज्ञानिक, परामर्षदाता, राजनीतिक, सामाजिक कार्यकर्ता तथा धार्मिक नेता आदि में उच्च अर्न्तवैयक्तिक बुद्धि पाये जाने की संभावना होती है अतः इस योगयता के अर्न्तगत व्यक्ति अपनी षक्ति तथा कमजोरियों का ज्ञान ओर उस ज्ञान का दूसरे व्यक्तियेां के सामाजिक अतः क्रिया में उपयोग करने का ऐसा कौषल सम्मिलित है जिससे वह अन्य व्यक्तियों से प्रभावी संबंध स्थापित करता है। इस बुद्धि की अधिक मात्रा रखन वाले व्यक्ति अपनी पहचान मानव अस्तित्व ओर जीवन के मजे को समझने में अति संवेदनषील होते हैं दार्षनिक तथा आध्यात्मिक नेता आदि में इस प्रकार की उच्च बुद्धि देखी जा सकती है।

प्रकृतिवादी बुद्धि– इस बुद्धि का तात्पर्य प्राकृतिक पर्यावरण से हमारे सबंधों की पूर्ण ज्ञान में है विभिन्न पषु –पक्षियों तथा वनस्पतियों के सौंदर्य का बोध करने में तथा प्राकृतिक पर्यावरण में सूक्ष्म विभेद करने में यह बुद्धि सहायक होती हैं षिकारी, विमान चालक, पर्यटक, वनस्पति षास्त्री, प्राणीविज्ञानी आदि में प्रकृतिवादी बुद्धि अधिक मात्रा में होती है।

1.6 सृजनात्मकता

किसी जनसंख्या के व्यक्तियों में मात्रात्मक अन्तर होते है। सृजनात्मकता विचारों ओर कार्यों से सम्बंधित हो सकती है सृजनात्मकता का लक्षण किसी नई वस्तु, पदार्थ का निर्माण करता है जो भिन्न और उपयोगी हो। सृजनात्मकता एंव व्यक्तित्व भिन्नता में सबंध पाया जाता है। सृजनात्मकता का आधार चिन्तन है सभी बालकों को सृजन के अवसर मिलने चाहिए। ऐसे अवसरों की व्यवस्था कक्षागत स्थितियों में होनी चाीिहए। इस प्रकार के अवसरों में बालकों में भिन्नता, गत्यात्मकता स्वतन्त्रता तथा साहस के गुणों के विकास के प्रयत्न करने चाहिए।

सृजनषील व्यक्ति के गुण़

जो व्यक्ति तात्कालिक संदर्भ तथा परिस्थतियों के आधार पर उस से आगे जा कर चिन्तन मनन अभिव्यक्ति करने की योग्यता रखते हैं इनमें सृनात्मकता के गुण होते हैं।

जो व्यक्ति चिन्तन, तर्क, एवं कल्पना द्वारा विषम संदिग्ध तथा विचित्र लेकिन प्रयोगिक विचारों से सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं वे सृजनषील होते है ऐसे व्यक्ति विषम तथा संदिग्ध स्थितियों को चुनौती समझकर स्वीकार करते हैं तथा तल्लीनता के साथ कियाषील हो जाते हैं। सृजनषील व्यक्ति किसी सम्पूर्ण समस्या अथवा उसके किसी भाग की पुनःव्याख्या करने की येागयता रखते हैं।

सृजनषील व्यक्तियों का एक विषेष गुण होता है इसमे व्यक्तियों विचारों में तर्क , चिन्तन तथा प्रमाणों के आधार पर परिवर्तन करना है।

सृजनात्मकता के घटक

संवेदनषीलता– सृजनषील व्यक्ति विलक्षण तत्वों विषयों विचारों तथा असाधारण स्थितियों के प्रति संवेदनषील हैाते हैं। परिवर्तन के प्रति इसकी संवेदनषीलता सामान्य व्यक्तियेां की अपेक्षा अधिक होती है।

नवीनता– प्रायः साधारण दिखने वाले कारकों में भी सृजनषील व्यक्ति नवीनता लाते हैं।

मौलिकता– मौलिकता सृजनात्कता का महत्वपूर्ण तत्व है।

विस्तारता– सृजनषील व्यक्ति में अपने अनुभवों की विस्तृत व्याख्या की क्षमता होती है।

समस्या समाधान में प्रवीणता– सृजनषील व्यक्ति अपने सहज स्वभाव के कारण समस्यायों के समाधान में दक्ष होते हैं।

पुर्नव्याख्या– सृजनषील व्यक्ति अपने अनुभवों को नए ढंग से नए रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं।

स्वतन्त्र निर्णय– सृजनषील व्यक्ति स्वभाव से क्रियाषील, आत्मविष्वासी तथा आत्मनिर्भर होते है इसलिए वे अपने निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र होते है।

1.7 अभिरूचि

अभिरूचि व्यक्ति का किसी विषेष कार्य के प्रति झुकाव अथवा उनमें तल्लीन होने की प्रवृति है यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक स्थिर गुण है। व्यक्तित्व के इस गुण

के कारण व्यक्ति किसी विषेष पदार्थ अथवा स्थिति के प्रति अनुक्रिया करता है तथा ऐसा करने में उसे संतुष्टि तथा सफलता की अनुपूर्ति होती है।

अभिरूचियों की महत्व –

ध्यान उदगम के लिए– ध्यान समस्त षिक्षण कार्यक्रमों का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है क्योंकि षिक्षण की सफलता बालकों के ध्यान एवं रूचि पर निर्भर करती है।

योग्यताओं के विकास में सहायक– अभिरूचि येागयता से संबधित होती है साधारणत लोग उन्हीं कार्यों में रूचि लेते है जिन के लिए उनमें योग्यता होती है।

विद्यार्थियों का वर्गीकरण – अभिरूचियों विद्यालय में पाठयक्रम तथा पाठय सहगामी उददेष्यों की पूर्ति हैतु बालकों के समरूप समूहों के निर्माण में सहायता करती है।

षैक्षिक उपलब्धियॉ– षैक्षिक व गैरषैक्षिक उपलब्धियों को बढाने में रूचियॉ मदद करती हैं।

पाठय विषयों का चुनाव– अभिरूचियोंष्षैक्षिक व व्यावसायिक अध्ययन क्षेत्रों अथवा विषयों का चुनाव प्रषिक्षण व व्यवस्थापन में पथ प्रदर्षन करती है।

सफलता तथा सन्तुष्टि प्रदान करना– रूचियॉ चयन किए गए षैक्षिक विषयों, नोकरी अथवा वयवसाय में सफलता व सन्तुष्टि प्राप्त करने में व्यक्ति की मदद करती है।

रूचियों के प्रकार

विवेचित अभिरूचियॉ– वे अभिरूचियॉ जो व्यक्ति दृारा उसकी पसंद व नपसंद को प्रकट करती हैं जैसे मुझे टेनिस खेलना पसंद नहीं है। मुझे घूमना पसंद है।

अभिव्यक्त अभिरूचियॉ– जिन रूचियों का पता व्यक्ति के व्यवहार से लगाया जाता है उन्हैं अभिव्यक्त अभिरुचियों की श्रेणी में रखा जाता है।

मापित अभिरूचियॉ– मनोवैज्ञानिक परीक्षणों दवारा मापन की जान वाली अभिरूचियों को मापित अभिरूचियॉ कहते हैं।

जन्मजात रूचियॉ– इन रूचियों से अभिप्राय मूल प्रवृतियों से होता है। जैसे– सूखे व्यक्ति की भोजन में रूचि।

अर्जित रूचियॉ– भाव संवेदन से प्राप्त रूचियॉ अर्जित रूचियॉ कहलाती हैं कुषल अध्यात्मक कुछ क्षणों में ही भाप लेता है कि अमुक बालक में कमी कहॉ है,

1.8 अभिक्षमता

प्रत्येक व्यक्ति में सामान्य योग्यताओं के साथ–साथ कुछ विषेष योग्यताऍ तथा कार्य करने की क्षमताऍ विद्यमान होती हैं। षिक्षा का उददेष्य बालकों की सामान्य योग्यताओं का विकास कर षैक्षिक उपलब्धि बढाना होता है तथा विषिष्ट योग्यताओं का पता लगा कर उन्हैं विकसित करना भी होता है, जिससे व्यक्ति विषेष योग्यताओं के क्षेत्र में उन्नति कर विषिष्टता पा सके।

इन विषिष्ट योगयताओं में अभिक्षमता अथवा अभियोग्यता का नाम प्रमुख हैं,

अभिक्षमता एक विषिष्ट मानसिक क्षमता है जिसका संबंध विषेष प्रषिक्षण एंव निष्पादित से रहता है। अलग– अलग व्यक्तियों में अलग–अलग अभिक्षमता हो सकती है जैसे संगीत, चित्रकला, ललितकला, चिकित्सा तथा अभियान्त्रिकी आदि। अभिक्षमता के अभाव में प्रषिक्षण की कोई उपयोगिता नही होती अर्थात जिस वयक्ति में

संगीत या चित्रकला सम्बन्धी अभिक्षमता नहीं होती अच्छे से अच्छा प्रषिक्षण भी उनके लिए व्यर्थ है।

अभिक्षमता किसी व्यक्ति दवारा कोई विषेष कार्य अथवा व्यवसाय करने की योग्यता का संकेत होती है।

अभिक्षमता में पूर्वानुमान का गुण होता है अर्थात इसमें व्यक्ति का किसी विषेष क्षेत्र में सफलता से कार्य करने का अनुमान लगाया जा सकता है।

अभिक्षमता एक वर्तमान दषा है जिसका संबंध भविष्य से रहता है यह एक दषा अथवा गुणों का संग्रह होता है जो व्यक्ति में विषेष क्षमता होने का संकेत देता है लेकिन इसमें विष्वास से यह नहीं कहा जा सकता कि उस क्षमता को रखने वाला व्यक्ति बाद में उस विषष क्षेत्र में सफल होगा अथवा नहीं।

अभिक्षमता का आधार वंषानुक्रम होता है लेकिन इस के विकास में वातावरण का अत्यधिक प्रभाव रहता है।

अभिक्षमताएॅ सभी व्यक्यिों में समान रूप से विद्यमान नहीं होती इनमें व्यक्तिगत भेद पाये जाते हैं।

किन्हीं दों व्यक्यिों की अभिक्षमता में पाये जाने वाले षीलगुणों में अन्तर रहता है।

अभिक्षमता का संबंध सदैव किसी कार्य के सम्पादन की उपयुक्तता से रहता है

अभिक्षमता का सम्बन्ध वयक्ति की रुचि, येाग्यता, कार्य निष्पति की संतुष्टि से सदैव होता है।

अभिक्षमता का परीक्षण करके व्यक्तिगत भेदों का अध्ययन किया जा सकता है एक ही अंग विषय अथवा कौषल में व्यक्तियों के अभिक्षमता फलांक भिन्न हो सकते हैं। इनसे इनके भविष्य के कार्यक्रम सम्बन्धी पूर्व योजना तैयार की जा सकती है। व्यक्ति की अभिक्षमता के इस क्षेत्र अथवा विषय का पता लगाया जा सकता है जहॉ उसकी सफलता की सम्भावना अधिक होती है। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक वयवसाय के लिए उपयुक्त नहीं होता। उनकी अभिक्षमता का परीक्षण करके विद्यार्थियों को उपयुक्त अध्ययन कोर्स अथवा वयवसाय सम्बन्धी क्षेत्र के चुनाव में मार्गदर्षन किया जा सकता है।

1.9 इकाई सारांषः याद रखने योग्य बातें

- एक बालक दूसरे बालक से अनेक बातों में भिन्न होता है अतः प्रत्येक बालक की षिक्षा व्यवस्था भी अलग अलग ढ़ंग से होनी चाहिए किन्तु हम इन्है एक जैसा समझकर षिक्षा देते हैं जो अपने आप में ही एक बहुत बड़ी बिडम्बना है। बालकों के सर्वागींण विकास के लिए षिक्षकों को व्यक्तिगत भेदों का ज्ञान होना चाहिए साथ ही षिक्षा व्यवस्था एवं षिक्षण पद्धति में भी परिवर्तन आवष्यक है।
- कोई भी व्यक्ति सभी क्षेत्रों में एक सा निपुण नहीं होता। उच्च अमूर्त चिन्तन योग्यता वाला व्यक्ति सम्भवत; सामाजिक जीवन की क्रियाओं में परेषानी अनुभव करे अथवा मूर्त यान्त्रिक क्रियाओं में निपुण व्यक्ति, चिन्तन सम्बन्धी क्रियाएं उतनी सफलता से नहीं कर सकता।

- सभी बालकों को सृजन के अवसर मिलने चाहिए। ऐसे अवसरों की व्यवस्था कक्षागत स्थितियों में होनी चाहिए। इस प्रकार के अवसरों में बालकों में भिन्नता, गत्यात्मकता स्वतन्त्रता तथा साहस के गुणों के विकास के प्रयत्न करने चाहिए।
- अभिरूचि व्यक्ति का किसी विषेष कार्य के प्रति झुकाव अथवा उनमें तल्लीन होने की प्रवृति है यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक स्थिर गुण है। व्यक्तित्व के इस गुण के कारण व्यक्ति किसी विषेष पदार्थ अथवा स्थिति के प्रति अनुक्रिया करता है तथा ऐसा करने में उसे संतुष्टि तथा सफलता की अनुपूर्ति होती है।
- अभिक्षमता एक विषिष्ट मानसिक क्षमता है जिसका संबंध विषेष प्रषिक्षण एंव निष्पादन से रहता है। अलग– अलग व्यक्तियों में अलग– अलग अभिक्षमता हो सकती है जैसे संगीत, चित्रकला, ललितकला, चिकित्सा तथा अभियान्त्रिकी आदि। अभिक्षमता के अभाव में प्रषिक्षण की कोई उपयोगिता नही होती अर्थात जिस वयक्ति में संगीत या चित्रकला सम्बन्धी अभिक्षमता नहीं होती अच्छे से अच्छा प्रषिक्षण भी उनके लिए व्यर्थ है।

1.10 अपनी प्रगति की जॉच करें

- व्यक्तिगत भेद का शैक्षिक दृष्टि से क्या महत्व है?
- बुद्धि के कितने प्रकार होते हैं?
- सृजनषील व्यक्ति के गुण़ कौन–कौन से हैं?
- अभिक्षमता का क्या अर्थ है?

1.11 गृहकार्य

- व्यक्तिगत भेद के प्रकार लिखो।

1.12 चर्चा के विन्दु

व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर किस प्रकार षिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्यवस्था की जाए?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.13 गतिविधि

अपने तथा अपने मित्रों के अग्रलिखित गुणों में क्या भिन्नता है लिखिए।

नाम	गुणष	विवरण
सरला	षौक	सरला को गाना गाना पसंद है।

.....	पंसदीदा व्यंजन	.....
.....	पंसदीदा विषय	.....
.....	पंसदीदा स्थान	.....
.....	पंसदीदा रंग	.....
.....	पंसदीदा हीरो	.....
.....	पंसदीदा राजनेता	.....
.....	.....	.....

संदर्भ ग्रंथ सूची –

ष्षर्मा, पूजा (2015), षैक्षिक समाज मनोविज्ञान, ए. के एन्टरप्राइजेज, जयपुर

सिंह, रतन (2012), सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेगा पब्लिकेषन्स नईदिल्ली

मिश्रा, महैन्द्र कुमार (2007), समाज मनोविज्ञान और षिक्षक अवधारणा क्लासिक कलैक्षन, जयपुर

विक्र, जसवन्त कौर (2011), अधिगमकर्ता, अधिगम एवं संज्ञान, ट्विन्टी फस्ट सेन्चुरी पब्लिकेषन्स, पटियाला।

षुक्ला, ओ.पी, षिक्षा मनोविज्ञान, प्रकाषक भारत बुक सेन्टर लखनऊ

भटनागर, सुरेष (2010), षिक्षा मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ

यादव, सियाराम (2010), अधिगमकर्ता का विकास एवं षिक्षण अधिगम प्रक्रिया, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

मंगल, एस.के, मंगल, उमा (2014), विद्यार्थी, अधिगम एवं संज्ञान, टंडन पब्लिकेषन्स, लुधियाना

खण्ड–4
इकाई–1अधिगम : परिचय

अधिगम या सीखना ;स्मंतदपदहद्ध एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया हैं। व्यक्ति जन्म से ही सीखना आरंभ कर देता हैं। और मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता हैं। परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार सीखने की गति घटती–बढ़ती रहती हैं। अधिगम के लिये कोई स्थान विशेष निश्चित नहीं होता हैं। व्यक्ति कहीं भी किसी भी समय, किसी से भी, कुछ भी सीख सकता हैं।

अधिगम वातावरण के अनुसार होता हैं। व्यक्ति जिस प्रकार के वातावरण में रहता है, उसी प्रकार के अनुभव वह सीखता है वातावरण के साथ क्रिया प्रतिक्रिया करके अधिगम करता है। अधिगम वातावरण के साथ–साथ व्यक्ति की बुद्धि, रूचि, तत्परता आदि पर भी निर्भर करता हैं। निष्कर्षतः अधिगम, क्षेत्र की दृष्टि से अत्यन्त व्यापक होता हैं तथा व्यक्ति दिन–प्रतिदिन के व्यवहार में शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में कुछ न कुछ सीखता ही रहता हैं। तथा ज्ञान अभिवृत्तियों, कौशल, आदत के क्षेत्र में व्यापक रूप से विभिन्न अनुभव प्राप्त करते हुये अधिगम करता हैं।

परिभाषायेंः– **वुडवर्थः–** "नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने कि प्रक्रिया, सीखने की प्रक्रिया हैं।"

क्रो व क्रोः– सीखना या अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन हैं।

अधिगम की विशेषताएँ

1. अधिगम जीवनभर, चलने वाली प्रक्रिया हैं।
2. अधिगम व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाता है।
3. अर्जित व्यवहार की प्रकृति अपेक्षाकृत स्थायी होती है।
4. अधिगम विकास की एक सतत प्रक्रिया हैं व्यक्ति अपनी क्रियाओं एवं अनुभवों के कारण हमेशा कुछ न कुछ सीखता है।
5. अधिगम एक विवेकपूर्ण, उद्देश्यपूर्ण व सक्रिय प्रक्रिया हैं।
6. अधिगम वातावरणजन्य हैं तथा वातावरण से क्रिया–प्रतिक्रिया का परिणाम हैं।
7. अधिगम का अपना एक स्वरूप होता हैं।
8. अधिगम आवश्यकताओं की संतृष्टि हैं।
9. अधिगम अनुभवों का संगठन हैं।
10. सीखना, व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों हैं व्यक्ति बहुत सी बातों को स्वयं प्रयत्न करके सीखता है तथा बहुत सी बातों को वह दूसरों को देखकर व सुनकर सीखता हैं।
11. अधिगम सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में होता है किन्तु शिक्षण में सकारात्मक व्यवहार को विकसित करने पर बल दिया जाता हैं।

अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया हैं तथा किसी भी शिक्षा प्रणाली में अधिगम का महत्वपूर्ण स्थान हैं। एक सुव्यवस्थित एवं कुशल शिक्षा प्रणाली में अधिगम प्रभावशाली होना चाहिए। अधिगम का अर्थ है। सीखना अथवा व्यवहार–परिवर्तन अनुभव एवं प्रशिक्षण के द्वारा होता हैं।

अधिगम की प्रकृति

;छंजनतम व िस्मंतदपदहद्ध

अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया हैं इसके आधार पर अधिगम की प्रकृति की व्याख्या की जा सकती हैं–

1. अधिगम प्रक्रिया तथा परिणाम हैं ;स्मंतदपदह पे च्तवबमे ंदक च्तवकनबजद्ध– अधिगम प्रक्रिया द्वारा छात्र नये अनुभवों, व्यवहारों तथा तथ्यों, प्रत्ययों तथा सिद्धांतों को अर्जित करता हैं। यह अधिगम के परिणाम भी माने जाते हैं।

2. व्यवहार परिवर्तन अधिगम हैं ;स्मंतदपदह पे जीम डवकपपिबंजपवद व िठमींअपवनतद्ध– क्रियाओं तथा अनुभव से जो व्यवहार परिवर्तन होता है उसे अधिगम की संज्ञा दी जाती हैं।

3. अधिगम मानव की एक प्रकृति हैं ;स्मंतदपदह पे जीम जमदकमदबल व िभ्नउंद ठमींअपवनतद्ध– मानव में वस्तुओं के संबंध में उत्सुकता रहती है क्या तथा क्यों? प्रश्नों के उत्तर को जानने की इच्छा रहती है। इसी जानकारी को अधिगम कहते हैं।

4. अधिगम मानसिक क्षमताओं के विकास की एक प्रक्रिया हैं ;स्मंतदपदह पे ं चतवबमे व िउमदजंस कमअमसवचउमदजद्ध– ज्ञानात्मक भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का विकास अधिगम प्रक्रिया द्वारा किया जाता हैं। अधिगम के यही तीन उद्देश्य हैं।

5. अधिगम एक समस्या समाधान की प्रक्रिया हैं ;स्मंतदपदह पे ं चतवइसमउ .`वसअपदह चतवबमेद्ध– जीवन की समस्याओं का समाधान व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों की सहायता से करता हैं। पूर्व अनुभव व्यक्ति का अनुभव होता हैं। अधिगम समस्या समाधान में सहायक होता हैं।

6. अधिगम एक खोज की प्रक्रिया हैं ;स्मंतदपदह पे च्तवबमे व िकपेबवअमतलद्ध– सीखने की परिस्थितियों में व्यक्ति खोज करता हैं। जिससे उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि होती हैं। और नवीन बातों की उसे जानकारी होती हैं।

7. अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया हैं ;स्मंतदपदह पे ंद ंबजपअम च्तवबमेद्ध– अधिगम के लिये व्यक्ति को तत्पर तथा सक्रिय रहना होता हैं। क्रियाशील तथा तत्पर रहने पर बालक अधिक सीखता हैं।

8. अधिगम आवश्यकताओं की संतुष्टि मात्र हैं ;स्मंतदपदह पे जीम दममक तमकनबजपवदद्ध– व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि तथा तनाव को दूर करने के लिये जो क्रियायें करता हैं, उसे अधिगम कहते हैं। उद्दीपन अनुक्रिया का संबंध जीव की आवश्यकता पर निर्भर करता हैं।

9. अधिगम एक सतत प्रक्रिया हैं ;स्मंतदपदह पे ं बवदजपदनवने चतवबमेद्ध– अधिगम प्रक्रिया उद्दीपन अनुक्रिया संबंध से चिंतन प्रणाली तथा समस्या समाधान पर चलती हैं।

10. अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया भी हैं ;स्मंतदपदह पे ंसेव ं ैवबपंस च्तवबमेद्ध– बालक समाज, परिवार तथा अपनु बड़ों के कार्यों को देखकर समाज की अनेक बातों को सीख लेता हैं जिसे सामाजिक अधिगम ैवबपंस स्मंतदपदहद्ध कहते हैं। अधिगम प्रत्यक्षीकरण तथा नकल द्वारा होता हैं।

11. अधिगम एक समायोजन की प्रक्रिया हैं ;स्मंतदपदह पे ं च्तवबमे व िकनेजउमदजद्ध– अधिगम से व्यक्ति में समायोजन की क्षमताअें का विकास होता हैं। व्यक्ति अपने ज्ञान से परिस्थिति में समायोजन जल्दी कर लेता हैं।

अधिगम के परिप्रेक्ष्य में

घर ;भ्वउमद्ध

घर वह संस्था होती हैं, जहाँ व्यक्ति का जन्म होता हैं, और उसकी वहीं अंत होता है। घर पर ही उसका विकास होता हैं, घर ही वह स्थान होता है जहाँ व्यक्ति में संस्कारों की नींव रखी जाती हैं, व्यक्ति में चरित्र एवं आदत का निर्माण परिवार की परम्पराओं पर निर्भर करता हैं घर में प्रेम, सद्भाव, सहयोग से बालक में अच्छे गुण तथा चरित्र का निर्माण होता हैं, घर एक ऐसी संस्था होती हैं। जहाँ बालकों में सामाजिक अधिगम सक्रिय होता हैं। और बहुत से गुणों का विकास होता हैं। घर बालक के लिये शिक्षा का अनौपचारिक साधन होता हैं। घर समाज का प्रांभिक रूप है तो समाज में जीवन व्यतीत करने वाले उन गुणों की तैयारी भी करता हैं। अधिगम के माध्यम से बालक भावी जीवन के व्यवहार का निर्धारण घर पर ही करता हैं। प्रेम, दया, घृणा, सहयोग, ममता, सहनशीलता सहायता आदि स्थायी मूल्यों का विकास घर पर संभव है। घरों के सदस्यों के व्यवहारों के प्रति होने वाली प्रतिक्रिया ही उन स्थायी मूल्यों के विकास में योगदान करती हैं जिनसे बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता हैं।

अधिगम : प्रभावक प्रतिकारक

;स्मंतदपदह रू प्दसिनमदबपदह थ्ंबजवतेद्ध

1. उचित वातावरण ;च्तवचमत म्दअपतवदउमदजद्ध – अधिगम, वातावरण से प्रभावित होता है। वातावरण बाहय हो या आंतरिक घर का हो या समुदाय का, विद्यालय का हो या कक्षा का, अधिगम का वातावरण ठीक हैं तो क्रिया को सीखने में कठिनाई नहीं होगी। कक्षा में प्रकाश, वायु का प्रबंध, सफाई आदि बाहय वातावरण की सृष्टि करते हैं। छात्रों को किसी भी क्रिया या ज्ञान के सीखने के लिये यह आवश्यक हैं कि वे मानसिक रूप से तैयार हों अर्थात् अध्यापक को चाहिए कि वह उनके लिये मनोवैज्ञानिक परिस्थिति उत्पन्न करे।

2. प्रेरणा ;ड्वजपअंजपवदद्ध – अधिगम में सबसे महत्वपूर्ण प्रेरणा महत्वपूर्ण हैं। सीखने में प्रेरकों का होना अत्यंत आवश्यक हैं। ये बालकों को नई बातें सीखने के लिये प्रोत्साहन प्रदान करते हैं प्रेरक एक आंतरिक शक्ति होती हैं। जो व्यक्ति को क्रिया करने के लिये बाध्य करती हैं। जो कार्य आन्तरिक प्रेरणा से किया जाता है। उसमें अधिक उत्साह और सक्रियता देखने को मिलती हैं।

3. रूचि और रूझान ;प्दजमतमेज ंदक ।चजपजनकमद्ध – व्यक्ति की रूचि और रूझान से सीखने का घनिष्ठ संबंध है। बालक की जिस विषय के प्रति रूझान होती है और जिसमेंवह रूचि रखता हैं। उसीको वह अधिक पढ़ता है। फलतः उसे वह आसानी से सीख लेता हैं। इसलिये शिक्षण को या सीखने की क्रिया को सफल बनाने के लिये बालक में विषय के प्रति रूचि उत्पन्न करना आवश्यक है। सफल अध्यापक प्रेरक प्रसंगों रूचिकर विधियों द्वारा इस कार्य को आसानी से कर लेता हैं।

4. सीखने की इच्छा ;पसस जव स्मंतदद्ध – जिन व्यक्तियों में सीखने की इच्छा होती हैं वही सीख सकते हैं। इच्छा न रखने वाले व्यक्तियों को सिखाना असम्भव है। इच्छा होने पर वह किसी न किसी प्रकार प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सीख लेता है। इसलिये आवश्यक हैं, कि शिक्षक बालकों की रूचि और जिज्ञासा को जाग्रत करके उनकी इच्छा शक्ति को दृढ़ करने का प्रयत्न करे।

5. बुद्धि ;प्दजमससपहमदबमद्ध – सीखना, बहुत कुछ सीखने वाले की बौद्धिक क्षमता पर निर्भर करता हैं। तीव्र बुद्धि वाले बालक कम बृद्धि वाले बालकों की अपेक्षा शीघ्र सीख लेते हैं।

विचार, कल्पना, तर्क, चिन्तन, निर्णय, शक्ति सभी बुद्धि से संबंधित हैं और सीखने में इनका विशेष हाथ होता हैं। इसलिये अधिगम को प्रभावित करने वाला बुद्धि एक प्रमुख कारक हैं।

6. सीखने का समय तथा अवधि ;ज्पउम ंदक क्नतंजपवद व िस्मंतदपदहद्ध – यदि छात्र अधिक देर तक किसी क्रिया को करता रहता हैं, तो वह थकान का अनुभव करने लगता है और थकान अनुभव होने से अधिगम प्रक्रिया में शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। विद्यालयों में समय चक्र बनाते समय भी इस बात का ध्यान रखा जाता हैं कि पहले कठिन विषय तथा बाद में सरल विषय पढ़ाये जाये। मध्यान्तर की भी व्यवस्था इसी उद्देश्य से ही जाती हैं।

7. अधिगम प्रक्रिया ;स्मंतदपदह च्तवबमेद्ध – किसी क्रिया को किस प्रकार सम्पादित किया जाना है इससे भी अधिगम प्रभावित होता है यद्यपि मनोवैज्ञानिक अधिगम की प्रक्रिया के सम्पादन पर एक मत नहीं है फिर भी यह बात अपनी जगह सत्य है कि बालक किसी भी क्रिया को अपने ढंग से ग्रहण करता हैं। चाहे अधिगम की प्रक्रिया किसी भी ढंग से क्यों न सम्पादित की जाये।

8. परिपक्वता ;डंजनतपजलद्ध – अधिगम की प्रक्रिया को बालक की शारीरिक एवं मानसिक परिपक्वता अधिक प्रभावी बनाती है। छोटी कक्षाओं में बालक की माँसपेशियों को मजबूत बनाने की ओर ध्यान दिया जाता है ताकि वे कलम, किताब आदि को पकड़ना सीख जाये।

शिक्षण एवं अधिगम शैक्षिक प्रक्रिया के दो महत्वपूर्ण अंग है, ये दोनों प्रक्रियाएँ एक–दूसरे की पूरक हैं।

अधिगम का अर्थ है सीखना या व्यवहार में परिवर्तन। यह व्यवहार में परिवर्तन अनुभव एवं प्रशिक्षण के द्वारा होता है। अधिगम शब्द प्रक्रिया एवं उसके परिणाम दोनों के लिये प्रयोग किया जाता है। प्रक्रिया के रूप में अधिक सीखने वाले के अनुभवों उसकी आंतरिक एवं बाहय क्रिया तथा उसकी अपनी परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रियाओं का उल्लेख करता हैं। प्रक्रिया के परिणाम के रूप में अधिगम व्यवहार में परिवर्तन का उल्लेख करता है ये व्यवहार परिवर्तन स्थायी व अस्थायी दोनों प्रकार के हो सकते है।

अधिगम परिस्थिति

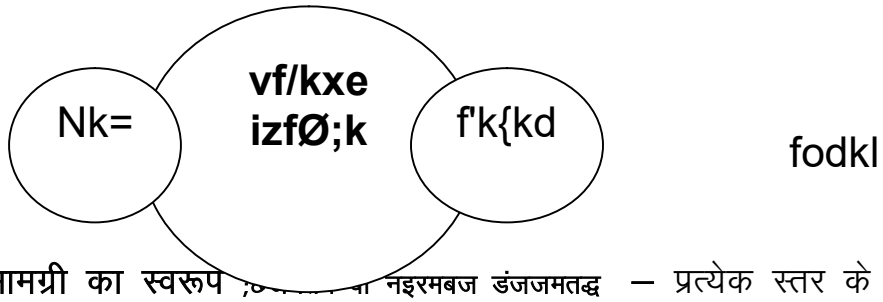

9. विषय सामग्री का स्वरूप ;ठ.....ा नइरमबज डंजजमतद्ध – प्रत्येक स्तर के छात्रों के लिये उनकी बुद्धि, रूचि एवं अभिक्षमता के अनुरूप पाठ्यवस्तु सरल, रोचक एवं अर्थपूर्ण होने पर बालक उन्हें रूचिपूर्ण एवं शीघ्रता सीखते हैं। कठिन नीरस तथा अर्थहीन विषय सामग्री बच्चे शीघ्रता से नहीं सीख पाते हैं।

10. सीखने की विधि ;स्मंतदपदह डमजीवकद्ध – सीखने की विधि का संबंध छात्र और विषय दोनों से है यह विधि जितनी ही अधिक रूचिकर और उपयुक्त होती हैं, सीखना उतना ही अधिक सरल होना हैं। इसलिये प्रारंभिक कक्षाओं में 'खेल' ;च्संलद्ध और 'करके सीखना'

;स्मंतदपदह इल कवपदहद्ध विधियों का और उच्च कक्षाओं में 'पूर्ण' ;ीवसमद्ध सामूहिक ;ब्वससमबजपअमद्ध और सहसंबंध ;ब्वततमसंजपवदद्ध विधियों का प्रयोग किया जाता हैं।

11. सम्पूर्ण परिस्थिति ;ज्वजंस ैपजनंजपवदद्ध – बालक के सीखने को प्रभावित करने वाले तत्व उस पर पृथक रूप के बजाय सामूहिक रूप से प्रभाव डालते हैं। अतः सीखने की सम्पूर्ण परिस्थिति का विद्यालय में होना आवश्यक हैं। विद्यालय की सम्पर्ण परिस्थिति का बालक के बाहय तथा समाज में सामान्य जीवन से घनिष्ट संबंध होना चाहिए।

विद्यालय

विद्यालय वह स्थल है जहाँ शिक्षा प्रदान की जाती हैं। "विद्यालय एक ऐसी संस्था हैं जहाँ बच्चों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं नैतिक गुणों का विकास होता हैं।" विद्यालय परिवार के बाद वो दूसरा स्थान होता है। जहाँ बालक सम्पूर्ण विकास की ओर अग्रसर होता हैं। वह स्वयं के जीवन से मिलने वाले अनुभवों के आधार पर छोटी से छोटी स्थितियों में अधिगम करता है। जो उसे कहीं न कहीं अनुशासित व संगठित करता है। वातावरण के अनुसार स्वयं को परिमार्जित करता है।

अधिगम का संप्रत्यय

;ब्वदबमचज व िस्मंतदपदहद्ध

सीखना मानव व्यवहार संबंधी एक आधारभूत संप्रत्यय है सीखना मानव का स्वभाव है। और यह सामान्य जीवन का आधार भी है। एक तरह से अधिगम में वह सब सम्मिलित होता हैं जो कोई व्यक्ति करता तथा सोचता हैं। उसका सम्पूर्ण व्यवहार उस द्वारा ज्ञान का संग्रहण, उस के विश्वास तथा अभिवृत्तियों, उसके उद्देश्य, उस की उपलब्धियाँ, सफलताएँ तथा असफलताएँ उस के जीवन के समायोजित व कुसमायोजित पक्ष और यहाँ तक कि उस के व्यक्तित्व के शीलगुण सभी अधिगम को प्रतिबिम्बित करते है।

साधारणतया अधिगम को व्यक्ति के व्यवहार में अनुभव व प्रशिक्षण के परिणाम स्वरूप होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जाता हैं।

स्मंतदपदह पे हमदमतंससल कमपिदमक ं तमसंजपअमसल चमतउंदमदज बींदहम पद इमींअपवनत जींज वबबनते ं तमेनसज व िमगचमतपमदबम ंदक चतंबजपबमण

अधिगम की एक अच्छी परिभाषा में मुख्य तीन तत्वों का समावेश होता हैं।

;पद्ध अधिगम व्यवहार में एक परिवर्तन होता है –अच्छा या बुरा।

;पपद्ध यह परिवर्तन अनुभव व प्रशिक्षण के परिणाम स्वरूप घटित होता है। अभिप्राय यह है कि संवृद्धि परिपक्वता अथवा चोट लगने व अंगों की क्षति के कारण व्यवहार में होने वाले परिवर्तन अधिगम नहीं कहलाते हैं।

;पपपद्ध अधिगम के परिणाम स्वरूप होने वाले परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं अर्थात् सीखी गई अनुक्रियाएँ पर्याप्त काल तक व्यवहार का अंग बनी रहनी चाहिए।

अर्थ तथा परिभाषाएँः– ;डमंदपदह ंदक क्मपिदपजपवदेद्ध

अधिगम का स्वभाव :–;छंजनतम व िस्मंतदपदहद्ध

1. अधिगम मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है।

स्मंतदपदह पे ंद प्ददंजम ज्मदकमदबल

2. अधिगम व्यक्ति के प्रत्यक्ष पर निर्भर करता हैं।
स्मंतदपदह कमचमदके न्चवद च्मतबमचजपवद
3. अधिगम सोद्देश्य होता हैं।
स्मंतदपदह पे चनतचवेपअम
4. अभिप्रेरणा अधिगम को गति देती है।
डवजपअंजपवद ।बबमसमतंजमे स्मंतदपदह
5. अधिगाम एक निरंतर प्रक्रिया हैं। स्मंतदपदह पे ं ब्वदजपदनवने च्तवबमेद्ध
6. अधिगम एक सार्वभौमिक व क्रमिक प्रक्रिया हैं। स्मंतदपदह पे न्दपअमतेंस
7. अधिगम विकासशील तथा प्रगतिशील है। स्मंतदपदह पे क्मअमसवचउमदजंस
8. अधिगम में स्थानांतरण संभव होता है। स्मंतदपदह पे ज्तंदेमितंइसम
9. अधिगम की प्रक्रिया में तीन तत्व सम्मिलित होते हैं।
त्मसंजमक स्मंतदपदह ब्वदेपेजे पद जीतमम म्समउमदजे
10. अधिगम निष्पादन से संबंधित होता हैं। स्मंतदपदह पे जीतमम म्समउमदजे
11. अधिगम एक प्रक्रिया है, उत्पादन नहीं स्मंतदपदह पे ं चतवबमे दवज ं च्तवकनबज
12. अधिगम वंशानुक्रम एवं पर्यावरण दोनों पर निभग्र करता है।
स्मंतदपदह क्मचमदके न्चवद इवजी भ्मतमकपसल ंदक म्दअपतवदउमदज

व्यवहारवाद ठमींअपवनतंसपेउ

मनोविज्ञान में व्यवहारवाद (बिहेवियरिजम) की शुरूआत बीसवीं सदी के पहले दशक में जे.बी. वाटसन द्वारा 1913 में जॉन हॉपीकन्स विश्वविद्यालय में की गयी। उन दिनों मनोवैज्ञानिक से मांग की जा रही थी। कि वे आत्म–विश्लेषण की तकनीक विकसित करे।

प्उचवतजंदबम व िठमींअपवनतंसपेउ पद म्कनबंजपवद

पी.साइमण्ड ने शिक्षण व अधिगम के क्षेत्र में व्यवहारवाद की उपयोगिता बताते हुये कहा कि सीखने में पुरस्कार (पुर्नबलन) की महत्वपूर्ण भूमिका हैं, जिसकी जानकारी एक अध्यापक के लिये होना आवश्यक हैं। अध्यापक द्वारा प्रदत्त पुर्नबलन बच्चों के भविष्य की गतिविधियों के क्रियान्वयन में निर्देशन का कार्य करता हैं। अध्यापक द्वारा मात्र सही या गलत की स्वीकृति ही बच्चे के लिये पुरस्कार कार्य करती हैं।

व्यवहारवाद का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान निम्नलिखित हैं–

1. व्यवहारवाद ने जो विधियाँ व तकनीक प्रदान करी उनसे बच्चों के व्यवहार हो समझने में काफी मदद मिली।
2. सीखने और प्रेरणा के क्षेत्र में व्यवहारवाद ने जो विचार प्रस्तुत किये वे अत्यंत महत्वपूर्ण है।
3. बच्चों के संवेगों का प्रयोगात्मक अध्ययन करके व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने इनके संवेगात्मक व्यवहार को समझाने का ज्ञान प्रदान किया।
4. व्यवहारवाद ने मानव व्यवहार पर वातावरणीय कारको की भूमिका पर विशेष जोर दिया। वाटसन का यह कथन कि यदि उन्हें एक दर्जन भी स्वस्थ बच्चे दिये जाते है तो वे उन्हें चाहे तो क्तण् महण् ंबजवतए या भिखारी कुछ भी उचित वातावरण प्रदान कर बना सकते हैं ने वातावरण की भूमिका पर विशेष प्रकाश डाला है।

पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत

च्यंहमज जीमवतल व िब्वदहदपजपअम क्मअमसवचउमदज

5. स्किनर द्वारा सीखने के लिये जो नयी विधि कार्यक्रमित सीखना (प्रोग्राम्ड लर्निंग) दी गयी, ने शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में हलचल मचा दिया। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि को अत्यंत महत्वपूर्ण माना है और अनेक तरह के पाठों को सिखाने में उन्हें सफलता भी मिली।
6. कुसमायोजित बालको के समायोजन के लिये व्यवहारवाद द्वारा जो विधियाँ दी गयी वे अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।
7. व्यवहारवाद ने मानव व्यवहार को समझाने के लिये पूर्ववर्ती समस्तवाद जो कि मानसिक प्रक्रियाओं पर बल देते थे के विवाद का अंत किया।

वातावरण क्या है

ींज पे म्दअपतवदउमदज

वातावरण का समार्नाथक शब्द है पर्यावरण अर्थात् परि आवरण, दूसरे शब्दों में परि त्र चारों ओर तथा आवरण त्र ढकना या ढका हुआ अथवा घिरा हुआ होना। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के चारों ओर जो कुछ विद्यमान है, वह उस का वातावरण हैं। आसपास के सभी व्यक्ति, पदार्थ, जीव, घटनाएँ तथा समी त्व वातावरण में सम्मिलित होते हैं तथा ये सभी व्यक्ति के व्यवहार या विकास को प्रभावित करते हैं।

वातावरण का अर्थ तथा परिभाषा

डमंदपदह ंदक क्मपिदपजपवद

..... (1958) : जीन्स के अतिरिक्त वातावरण मेंवह प्रत्येक वस्तु सम्मिलित है जो व्यक्ति को प्रभावित करती हैं। ;जैम मदअपतवदउमदज पे मअमतल जीपदह जींज मंमिबजे जीम पदकपअपकनंस मगबमचज हमदमेद्ध

वुडवर्थ तथा मार्क्विस (1948) : "वातावरण में वे सभी बाहरी कारक आ जाते हैं जिन्होंने व्यक्ति को जीवन प्रारंभ करने के समय से प्रभावित किया हैं।"

वातावरण के प्रकार ;ज्लचमे व िम्दअपतवदउमदजद्ध

सामान्यतः वातावरण के दो प्रकार हैं।

1. आंतरिक वातावरण ;प्दजमतदंस म्दअपतवदउमदजद्ध
2. बाहय वातावरण ;म्गजमतदंस म्दअपतवदउमदजद्ध

1. आंतरिक वातावरण :– इसका संबंध व्यक्ति के वैयक्तिक व मनोवैज्ञानिक वातावरण से रहता है। इस वातावरण में वे सभी तत्व तथा परिस्थितियाँ आती है। बालक पर जिन का प्रभाव गर्भाव्यवस्था से ही पड़ने लगता हैं। गुणसूत्र एवं जीन्स वंशानुक्रम के अंग हैं जो कोशिका द्रव (ब्लजवचसेंउद्ध से घिरे रहते है। इस अंतः कोशिय ;प्दजमत ब्मससनसंतद्ध वातावरण कहते है। इसमें व्यक्ति के गुणसूत्र व जीन्स संबंधी बनावट एवं संगठन, संवेग, संवेगात्मक स्थिति तथा स्वभाव आदि निहित होते हैं।

2. बाहय वातावरण : इस वातावरण में वे सभी कारक उपस्थित रहते हैं जो बालक को विभिन्न उद्दीपकों के रूप में प्रभावित करते हैं। और उसे किसी विशेष परिस्थिति में विशेष प्रकार के व्यवहार के लिये निर्दिष्ट करते है। ऐसे बाहय उद्दीपक असंख्य है जिस में भौतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण से संबंधित कारक मौजूद रहते हैं। भोजन, पानी, सूर्य, जलवायु, प्रकृति सभी व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। पारिवारिक स्थिति, पारिवारिक वातावरण व संबंध परिवार के सदस्यों में अंतः क्रिया की प्रकृति व प्रकार सामाजिक घटक हैं। खान–पान, जीवन–शैली, रीति–रीवाज, सामाजिक रूढियाँ पूर्वाग्रह ;स्ॅत्द्ध व प्रथाएँ आदि व्यक्ति के

सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन के पक्ष हैं। व्यक्ति के रहन सहन के तौर–तरीके, सामाजिक रीतियाँ, दूसरे शब्दों में समाज, सामाजिक – संबंध तथा संस्कृति सभी व्यक्ति के विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं।

वातावरणके शैक्षिक महत्वः–

म्कनबंजपवदंस प्उचसपबंजपवदे

गुणसूत्र तथा जीन्स का ज्ञान ;ज्ञदवूसमकहम वर्बिंतवउवेवउमे ंदक ळमदमेद्ध

विद्यालयी शिक्षा का महत्वपूर्ण श्रेष्ठ और सक्रिय साधन हैं। बालक के सर्वांगीण विकास के लिये अधिगम बहुत ही आवश्यक हैं। परिवार में बालक की अंतः क्रियाएँ माता–पिता, तथा अन्य संबंधियों तक ही सीमित होती हैं। पाँच–छः वर्ष की अवस्था में जब बालक विद्यालय में प्रवेश लेता हैं तो उसकी अतः क्रियाओं का दायरा बढ़ जाता है। विद्यालय के मित्रों और अध्यापकों के साथ उसकी अन्तः क्रियाएँ प्रारंभ हो जाती हैं। लगभग सात वर्ष की अवस्था में बालक की यह अन्तः क्रियाएँ अधिक बढ़ने लग जाती हैं। विद्यालय के मित्रों और अध्यापकों के साथ उसकी अतः क्रियाएँ अधिक बढ़ने लग जाती हैं। ग्यारह–बारह वर्ष की अवस्था तक उसकी विद्यालय से संबंधित अन्तः क्रियाएँ परिवार की अपेक्षा अधिक हो जाती है। जब तक बालक विद्यालय से संबंधित रहता है तब तक उसमें यह अन्तः क्रियाएँ बनी रहती हैं।

- थार्नडाइक, पावलक, स्किनर
- ब्वदहउपजपअमए च्मतेचमबजपअमे समंतदपदह चपहंहमज जीमवतल
- ैवबपंस . ब्वदेजतनबजपअपेज च्मतचमबजपअमे
-

पियाजे का संज्ञान–विकास सिद्धांतः–

संज्ञान विकासात्मक सिद्धांत स्विट्जर लैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जीन पियाजे ;श्रमंदे च्यंहमजद्ध द्वारा विकसित किया गया है। पियाजे ने इस सिद्धांत में बालक के भीतर चलने वाली संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के विकास की व्याख्या की हैं। मूल रूप से पियाजे ज्ञान शास्त्र ;म्चपेजमउवसवहलद्ध में रूचि रखते हैं। वे बालक द्वारा अर्जित ज्ञान के स्वरूप को समझने का सबसे अच्छा उपाय उसके विकास का अध्ययन करना है। अतः उन्होंने अपने ही बच्चों के संज्ञान–विकास का अध्ययन प्रारंभ कर दिया।

पियाजे के सिद्धांत की अवधारणाएँ

पियाजे ने बतलाया है कि संज्ञान व्यक्ति को अपने वातावरण के साथ समायोजित होने के लिये एक आवश्यक तत्व है। जन्म के समय बच्चों के भीतर केवल एक नैसर्गिक क्षमता विद्यमान होती है। आयु और परिपक्वता में वृद्धि होते रहने के कारण उसके भीतर संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विकास होता रहता है। संज्ञानात्मक विकास चार प्रमुख अवस्थाओं से होकर गुजरता हैं। प्रत्येक अवस्था में ज्ञान का एक नया भंडार निर्मित होता है जो पिछली अवस्था में पाये जाने वाले ज्ञान भण्डार से गुणात्मक दृष्टि से भिन्न होता हैं। इस प्रकार प्रत्येक अवस्था में बालक न केवल अधिक ज्ञान अर्जित करता हैं बल्कि उसके ज्ञान में संशोधन एवं परिमार्जन

भी होता है। सभी विकसित होने वाले बालक संज्ञान–विकास की इन चारों अवस्थाओं से गुजरते हैं। पियाजे की उक्त अवधारणा के आधार पर ही उनके सिद्धांत को अवस्था सिद्धांत माना जाता हैं। पियाजे के संज्ञान–विकासात्मक सिद्धांत का आधार जीव – वैज्ञानिक भाषा जाता है। उन्होंने संज्ञान या बुद्धि को पाचन क्रिया, श्वास क्रिया एवं रक्त संचार क्रिया की भांति एक जैविक क्रिया माना है। संज्ञान मानव प्राणी को अपने सामाजिक भौतिक वातावरण के साथ समायोजित होने में सहायक होता है और इसलिये संज्ञान जीवन के लिये उतना ही महत्वपूर्ण हैं जितनी अन्य जैविक क्रियाएँ। प्राणी के सम्पूर्ण विकास काल में संगठन और अनुकूलन की क्रियाएँ चलती रहती हैं।

पियाजे विशेष रूप से संज्ञान – विकास में उत्पन्न होने वाले गुणात्मक परिवर्तनों में अधिक रूचि रखते हैं। उनके द्वारा सम्पन्न अध्ययन अत्यंत सरल ढंग से अध्ययन है।

पियाजे के मूलभूत संप्रत्यय ;ठेंपब ब्वदबमचज वि च्पंण्ण्ण्ण्ण्द्ध

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या करते हुये बताया है कि संज्ञान प्राणी का वह ज्ञान है जिसे वातावरण में सक्रिय रूप से व्यवहन होकर अर्जित करता है उन्होंने संज्ञान को क्रिया पर आधारित ज्ञान कहा हैं।

पियाजे के दो अन्य संप्रत्यय हैं संगठन तथा अनुकूलन। संगठन से पियाजे का यह अभिप्राय है कि बुद्धि में सन्निहित विभिन्न क्रियाएँ जैसे प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, चिंतन एवं तर्क आदि परस्पर संगठित होकर कार्य करती हैं। जब कोई बालक वातावरण के किसी उद्दीपक परिस्थिति के सम्मुख होता है उस समय उसकी विभिन्न मानसिक क्रियाएँ पृथक–पृथक कार्य नहीं करती बल्कि एक साथ संगठित होकर ज्ञान अर्जन में उसकी सहायता करती हैं। मानसीक स्तर पर संगठन की यह क्रिया सदा चलती रहती हैं।

पियाजे कि संज्ञानात्मक विकास की अवस्थायें :–

ै;जंहम वि ब्बिहपदपजपअम क्मअमसवचउमदजद्ध

पियाजे के मतानुसार संज्ञानात्मक विकास की निम्नलिखित चार अवस्थाये होती है–

1. संवेदी–गत्यात्मक अवस्था ै;मदेवतपउवजवत ैजंहमद्ध रू जन्म से दो वर्ष
2. प्री आपरेशनल अवस्था ;च्तम . व्वमतंजपवदंस ैजंहमद्ध रू 2 वर्ष से6 वर्ष तक।
3. स्थूल – क्रियात्मक अवस्था ;ब्वदबतमजम व्वमतंजपवदंस ैजंहमद्ध रू 6 वर्ष से 11 अथवा 12 वर्ष तक
4. यथा नियम क्रियात्मक अवस्था ;थ्वतउंस व्वमतंजपवदंस ैजंहमद्ध रू 11 अथवा 12 वर्ष से आगे।

1. संवेदी – गत्यात्मक अवस्था – यह अवस्था जन्म से दो वर्ष की आयु तक होती हैं। बालक के विकास के आधार पर उसके संवेदी – गत्यात्मक प्रतिमान ै;बीमउंजंद्ध होते हैं। ैबीमउं पियाजे के सिद्धांत का एक प्रमुख तत्व है, जिससे अभिप्रायः ।बजपवदए ैजतंजमहल अथवा ैापसस मानते है, इस अवस्था में सीखने अथवा वातावरण संबंधी ज्ञान प्राप्त करने के लिये बालक संवेदी गत्यात्मक क्रियाएँ जैसे :– देखना, छूना, धकेलना, चूसना तथा दूसरी शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से प्राप्त करता हैं। साथ ही साथ अनुकूलन तथा समावेशन की प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं।

प्री आपरेशनल अवस्था ;च्तम. व्वमतंजपवदंस ैजंहमद्ध

इस अवस्था का काल 2 से 6 अथवा 7 वर्ष तक होता हैं। इस अवस्था को दो उपभागों में विभाजित किया जाता है।

;पद्ध पूर्व – संप्रत्ययात्मक अवस्था ;च्तम ब्वदबमचजनंसद्ध (2 वर्ष से 4 वर्ष तक)

;पपद्ध अन्तबोध की अवस्था प्दजनपजपअम ैजंहम (4 वर्ष से 6 अथवा 7 वर्ष तक)

1. पूर्व परिचालन की इस अवस्था में बालक उन वस्तुओं के विषय में भी सोचने में समक्ष होने लगता हैं जो उसकी दृष्टि से परे होती हैं। इस अवस्था में बालक वस्तुओं एवं स्थितियों के संबंध में क्यो ? के अर्थ समझने लगता है। पूर्व संप्रत्यय प्रात्मक अवस्था बालक के लिये संप्रत्यों के निर्माण में अवस्था होती हैं। वह पदार्थो तथा वातावरण संबंधी वस्तुओं के अर्थ समझने योग्य होने लगता हैं। लेकिन अभी वह वस्तुओं की एक विशेषता पर ही ध्यान केन्द्रित कर पाता हैं। भाषा के विकास के साथ–साथ उसमें नये प्रत्ययों का निर्माण होने लगता है। भाषा के विकास के कारण उसकी संप्रेषण योग्यता में लचीलापन आने लगता है। लेकिन भौतिक, मानसिक एवं सामाजिक वास्तविकताओं में वह अभी विभेदन नहीं कर पाता है। उसे प्रतीत होता है कि प्रत्येक वस्तु जो चलती हैं। वह जीवित होती है। उससे परिदृश्य में चन्द्रमा एवं बादल जीवित वस्तुएँ है वह अभी संरक्षण के नियम नहीं समझ पाता हैं।

ैवबपंस . ब्वदेजतनबजपअपेज . टलह व ालश्े जीमवतल ंदक पजे ंचचसपबंजपवद पद जमंबीपदह समतदपदह

सोवियन संघ के मनोवैज्ञानिक थे तथा वाइगोव्स्की मंडल के नेता थे। उन्होंने मानव के सांस्कृतिक ऐतिहासिक मनोविज्ञान कहा जाता हैं। इनका मुख्य कार्य क्षेत्र विकास मनोविज्ञान था। उन्होंने बच्चों में उच्च संज्ञानात्मक कार्यो के विकास से संबंधित एक सिद्धांत प्रस्तुत किया।

डवकमत

म्कनबंजपवदंस च्लेबीवसवहल

वींदचंज तंप च्नइसपीपदह ब्वउचंदल

वाइगोत्सकी का सामाजिक दृष्टिकोण संज्ञानात्मक विकास का प्रगतिशील विश्लेषण प्रस्तुत करता हैं। वस्तुतः वाइगोत्सकी ने बालक के संज्ञानात्मक विकास में समाज एवं उसके सांस्कृतिक संबंधों के बीच संवाद को एक महत्वपूर्ण आयाम घोषित किया। वाइगोत्स्की के अनुसार बच्चे ज्ञान का निर्माण करते हैं।

संज्ञानात्मक विकास एकाकी नहीं हो सकता, यह भाषा विकास, सामाजिक विकास, यहाँ तक कि शारीरिक विकास के साथ–साथ सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में होता हैं।

वाइगोत्सकी के अनुसार बच्चे के संज्ञानात्मक विकास को समझने के लिये एक विकासात्मक उपागम की आवश्यकता है जो कि इसका शुरू से परीक्षण करे तथा विभिन्न रूपों में हुये परिवर्तन को ठीक से पहचान पाये। इस प्रकार एक विशिष्ट मानसिक कार्य जैसे – आत्म भाषा को विकासात्मक प्रक्रियाओं के रूप में मूल्यांकित किया जाये, न कि एकाकी रूप से।

वायगॉत्स्की ने अपने सिद्धान्त में संज्ञान और सामाजिक वातावरण का सम्मिश्रण किया। बालक अपने से बड़ो के साथ से बहुत सी चीजों को सीखते हैं। उनके सानिध्य से उनके अनुभवों के द्वारा अपने ज्ञान का विस्तार करते हैं। बालक अपने से बड़े और ज्ञानी व्यक्तियों के संपर्क में आकर चिन्तन और व्यवहार के संस्कृति अनुरूप तरीके सीखते हैं। सामाजिक सांस्कृ

तिक सिद्धान्त के कई प्रमुख तत्व हैं। प्रथम महत्वपूर्ण तत्व है व्यक्तिगत भाषा। इसमें बालक अपने व्यवहार को नियंत्रित और निर्देशित करने के लिए स्वयं से बातचीत करते हैं।

सामा–सांस्कृतिक सिद्धांत का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है– निकटतम विकास का क्षेत्र।

वायगास्की ने शिक्षक के रूप में अनुभव के दौरान यह जाना है कि बालक अपने वास्तविक विकास स्तर से आगे जाकर समस्याओं का समाधान कर सकते है यदि उन्हें थोड़ा निर्देश मिल जाए। इस स्तर को वायगास्की विकास स्तर और सम्भावित विकास स्तर के बीच के अंतर। क्षेत्र को वायगास्की ने निकटतम विकास का क्षेत्र कहा।

संभावित विकास के क्षेत्र ख्वदम वि च्तवगपउंस क्मअमसवचउमदज ंच्च,

वाइगोत्सकी द्वारा प्रयुक्त यह संप्रत्यय उस अंतर को परिभाषित करता है जो कि बच्चे के द्वारा बिना किसी सहायता के किये गए निष्पादन तथा किसी वयस्क या अधिक कुशल साथी की मदद से किए निष्पादन में होता है। दूसरे शब्दों में बच्चा जो कर रहा हैं तथा जो करने कि क्षमता रखता है, के बीच के क्षेत्रों को ंच्च कहा जाता है। वाइगोत्सकी प्रभाव, मुख्यतः निर्देशन को दर्शाने हेतु ंच्च के संप्रत्यय प्रयोग किया।

ढाँचा निर्माण ैमंविसकपदहद्ध

ढाँचा निर्माण, विकास के संभावित क्षेत्र से संबंधित संप्रत्यय हैं। ढाँचा निर्माण एक तकनीक हैं जो सहायता के स्तर में परिवर्तन करती हैं। शिक्षण करते समय या सहयोगी अधिगम में शिक्षक या अधिक कौशल वाले सहयोगी को अधिगमकर्त्ता के समसायिक निष्पादन के अनुसार अपेन परामर्श को समायोजित करना पड़ता हैं जैसे कि यदि कोई नयी तरह की समस्या है तो अधिक निर्देशन देने पड़ते हैं, परन्तु जैसे–जैसे छात्रा की क्षमता व कार्य अभ्यास बढ़ता जाता हैं निर्देशनों की संख्या कम हो जाती हैं।

वाइगोत्सकी के अनुसार संवाद, ढाँचा निर्माण का महत्वपूर्ण औजार हैं। बच्चों के पास अव्यवस्थित तथा असंगठित संप्रत्यय होते हैं जबकि कुशल सहायक के पास क्रमक तार्किक एवं बुद्धि संगत विचार होते हैं। बच्चे तथा कुशल सहायक के बीच संवाद के परिणाम स्वरूप बच्चे के विचार ज्यादा क्रमक हो जाते हैं।

भाषा और विचार

वाइगोत्सकी के अनुसार बच्चे भाषा का प्रयोग न केवल सामाजक संप्रेषण अपितु स्व–निर्देशित तरीके से कार्य करने के लिये, अपने व्यवहार हेतु योजना बनाने, निर्देश देने व मूल्यांकित करेन में भी करते हैं। स्व निर्देशन में भाषा के प्रयोग को आन्तरिक स्व–भाषा या निजी भाषा कहा जाता हैं। पियाजे ने निजी भाषा को आत्म केन्द्रित तथा अपरिपक्व माना हैं परन्तु वाइगोत्सकी के अनुसार आरंभिक बाल्यावस्था में यह बालक के विचारों का एक महत्वपूर्ण साधन हैं।

उद्देश्य :–

;न्दकमतेजंदक जीम ब्वदबमचज वि ळतवूजी ंदक क्मअमसवचउमदजद्ध

वृद्धि और विकास की अवधारणा की समझ

(1) सीखना एक सक्रिय प्रक्रिया हैं।

(2) सीखने का अवलोकन हम प्रत्यक्ष ;क्पतमबजद्ध नहीं कर सकते, बल्कि व्यक्ति के व्यवहारों में यह प्रकट होता है।
(3) अधिगम से व्यक्ति के व्यवहारों में स्थाई परिवर्तन आते हैं।
(4) अधिगम अभ्यास तथा अनुभव पर निर्भर करता है।
(5) सीखना सहज क्रिया नहीं हैं।
(6) सूचना, कौशल, सौंदर्यानुभूति, दृष्टिकोण आदि सीखने के मुख्य क्षेत्र हैं।
(7) अनेक परिस्थितियों में सीखने का संबंध चेतन उद्देश्यों से होता हैं या सामाजिक तथा जैविक अनुकूलन से।
(8) अधिगम वातावरण द्वारा प्रस्तुत उत्तेजकों पर आधारित होता हैं।
(9) रूचि निपुणता, योग्यता एवं सभी सीखने की क्रिया की ही उपज हैं।
(10) सीखना समायोजित हो सकता हैं अथवा असमायोजित।
(11) सीखना सही हो सकता है या त्रुटिपूर्ण।
(12) अधिगम व्यवहार का संगठन हैं।
(13) अधिगम नवीन प्रक्रिया ही पुष्टि है।
(14) सीखने की प्रक्रिया में दो मूल तत्व निहित है – "परिपक्वता" एवं "अनुभूति"

(1) छात्र को सजग ;।बजपअमद्ध रहना चाहिए तथा करके सीखना अधिक प्रभावशाली होता है।

(2) अधिगम की प्रवृत्ति की पुनरावृत्ति अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। इसे अभ्यास का नियम कहते हैं।

(3) अधिगम में पुनर्बलन महत्वपूर्ण होता हैं। वांछित व्यवहारों के लिए धनात्मक पुनर्बलन तथा अवांछित व्यवहारों के लिये ऋणात्मक पुनर्बलन महत्वपूर्ण होता हैं।

- नवीन व्यवहारों को सीखने में छात्रों की अधिक रूचि होती हैं। छात्र अनुकरण से जल्दी सीखते हैं।
- छात्र के लिये लक्ष्य निर्धारण, उसके अधिगम के लिये प्रेरणा प्रदान करते हैं।
- अधिगम में छात्र की योग्यताएँ महत्वपूर्ण कार्य करती हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में आधारभूत विशेषताएँः–

भारतीय अर्थव्यवस्था एक कम आय स्तर की विकासशील अर्थव्यवस्था हैं। इसमें कोई संदेह नहीं हैं कि भारतीय जनसंख्या का एक चौथाई भाग दयनीय स्थिति में जीवन यापन करता हैं, इसलिये भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को जानना अनिवार्य हैं जो कि इस प्रकार से है–

1. निम्न प्रति व्यक्ति आय :– विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति आय का स्तर काफी कम पाया जाता हैं। सन 2005 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 720 डालर थीपों कि कुछ देशों को छोड़कर सबसे निम्न स्तर पर थी। 1990 से 2005 के मध्य भारतीय अर्थव्यवस्था

च्ंचमत प्. ठसवबा.4 न्दपज प्– ण्ण्

प्राचीनकाल से ही भारत कृषि प्रधान देश रहा हैं। उस समय देश में विस्तृत कृषि पद्धति प्रचलित थी। विशाल कृषि क्षेत्र एवं सीमित जनसंख्या के कारण ग्रामवासी सरलता से अपनी आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्न पैदा कर लेते थे और वे पूर्णतः खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर थे, किन्तु समय के साथ–साथ जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई तथा कृषि के विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में खाद्यान्न की कमी प्रतीत होने लगी और बड़ी मात्रा में आयात करके देश की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये देश की पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास को प्राथमिकता दी जाने लगी। पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास के लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम सघन कृषि विकास को प्राथमिकता दी गई। पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास के लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम, सघन कृषि योजना, सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि, उन्नत बीजों का अविष्कार एवं उपयोग उर्वरकों व कीटनाशकों का अधिक उत्पादन एवं उनका उपयोग कृषि की उन्नत विधियों का अविष्कार एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का क्रियान्वयन, कृषि क्षेत्र में आवश्यक ऋणों की उपलब्धता हेतु बैंको का राष्ट्रीयकरण, कृषि बीमा आदि कार्यक्रम प्रारंभ किए। कृषि विकास के इन कार्यक्रमों के फलस्वरूप देश में खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ा और देश आत्मनिर्भर होने के साथ–साथ निर्यातक देश बन गया, किन्तु खाद्य तेल एवं दालों की कमी अभी भी बनी हुई है जिसके लिये आयात पर निर्भर रहना पड़ता है।

भारतीय कृषि की विशेषतायेंः– भारतीय कृषि अनेक मामलों में विश्व के अन्य देशों से भिन्न हैं। यही कारण है भारत में कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता विश्व के विकसित देशों से कम हैं भारतीय कृषि की अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं जिसके कारण यहाँ कृषि की विकास दर अत्यंत धीमी है तथा प्रति हैक्टेयर उत्पाद कम हैं। अतः कृषि के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करने से पहले इन विशेषताओं को जानना आवश्यक हैं।

1. कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का अधिक भार :– भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं। कृषि क्षेत्र पर अधिक जनसंख्या की निर्भरता से भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक होता है। प्रति व्यक्ति उत्पादकता फसली क्षेत्र कम होता जाता हैं।

विकसित देशों में विकासशील देशों की तुलना में बहुत कम प्रतिशत जनसंख्या कृषि क्षेत्र पर निर्भर होती हैं।

भारत में कृषि पर निर्भर जनसंख्या के प्रतिशत में बहुत धीमी गति की कमी आ रही हैं, जबकि विकसित देशों में यह तेज गति से घट रही है। भारत में कृषि पर निर्भर कार्यशील जनशक्ति का तुलनात्मक.....

2. कृषि जोतों का अपखण्डन ;श्तंहउमदजंजपवद वि भ्वसकपदहद्धरू.

भूमि के अपखण्डन का अर्थ भूमि –स्वामियों एवं किसानों के खेतों का एक चक्र में न होकर उसके बिखरे हुये होने से हैं। इस प्रकार अपखंडन में खेत एक स्थान पर न होकर उसके बिखरे हुये होने से हैं। इस प्रकार अपखंडन में खेत एक स्थान पर न होकर छोटे–छोटे टुकड़ों में अलग–अलग स्थानों पर हाते हैं। उदाहरण के लिये माना कि किसी किसान के पार 4 हैक्टेयर गाँव के उत्तर में, एक हैक्टेयर गाँव के पश्चिम में हैं और शेष एक हैक्टेयर दक्षिण में है। भारत में खेतों के अपखंडन की जटिल समस्या विद्यमान है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैः–

;पद्ध उत्तराधिकार के नियम ;ईूं वि प्दीमतपजंदबमद्ध

भारत में उत्तराधिकार के नियम के अनुसार सभी बच्चे पिता की सम्पति के समान रूप से भागीदार होते हैं। पहले पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों का ही अधिकार होता था अब हिन्दू कोड बिल के कारण पुत्रियों का भी समान अधिकार हो गया हैं। उत्तराधिकार के इस नियम से भूमि कृषक की संतानों में समान रूप से बँट जाती है इससे खेतों का आकार छोटा हो जाता हैं।

;पपद्ध संयुक्त परिवार प्रणाली का पतन ;क्मपिदम वि श्रवपदज थ्ंउपसल ैलेजमउद्ध

अब पाश्चात्य, सभ्यता, साक्षरता एवं आधुनिक ढंग से परिवार में हरने की प्रथा आदि कारणों से व्यक्ति केवल स्वयं के बारे में सोचने लगा हैं फलतः संयुक्त परिवार प्रणाली का पतन हो रहा हैं। इसके परिणाम स्वरूप खेतों का उप विभाजन एवं अपखंडन बढ़ गया है।

;पपपद्ध जनसंख्या में वृद्धि ;ळतवूपदह च्वचनसंजपवदद्धरू.

स्वतंत्रनता के पश्चात् भारत में जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ी है। इससे उत्तराधिकारियों की संख्या भी बढ़ी हैं। इतना ही नहीं देश में गैर कृषि उद्योगों का विकास भी कम हुआ है। अतः रोजगार प्राप्ति का प्रमुख साधन कृषि रह गया है। इसके परिणाम स्वरूप खेतों का उप विभाजन एवं अपखंडन बढ़ गया हैं।

;पअद्ध भूमि के प्रति लगाव ;।जजंबीउमदज ूपजी स्ंदकद्धरू.

भारतीय ग्रामीणों का भूमि से बहुत अधिक लगाव है। वे खेत कोआय का साधन कम मानते है, वरन् उसे सम्मान एवं प्रतिष्ठा का प्रमुख आधार समझते है। इसके परिणाम वे पैतृक भूमि में से अपना हिस्सा अवश्य चाहते हैं जिसमें भूमि का उप विभाजन एवं अपखंडन होता हैं।

;अद्ध ऋणग्रस्तता ;प्दकमइजमकदमेद्धरू.

अधिकांश कृषक ग्रामीण महाजन से ऊँची ब्याज दर पर जमीनगिरवी रखता ऋण लेते हैं। निर्धन कृषक महाजन का ऋण चुकाने में असमर्थ होता है। वह अन्त में कर्ज के बदले में अपनी भूमि का कुछ भाग महाजन को दे देता हैं जिससे भूमिके कुछ भाग महाजन को दे देता हैं जिससे भूमि के उप विभाजन एवं अपखंडन को प्रोत्साहन मिलता हैं।

;अपद्ध कुटीर उद्योगों का पतन ;क्मकपदम व्ल्तंस प्दकनेजतपमेद्धरू.

ब्रिटिश शासनकाल में देश के कुटिर उद्योगों का पतन हो गया था। वर्तमान समय तक भी इनका पुनर्जीवित करने के लिये कोई ठोस एवं लाभदायक प्रयास नहीं किये गये। इससे ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ी और लोग रोजगार की तलाश में कृषि पर निर्भर रहने लगे हैं। इससे भूमि का उप–विभाजन तथा अपखंडन बढ़ा हैं।

;अपपद्ध भूमि की उर्वरता की भिन्नता ;क्पांमितमदबम पद जीम थ्मतइपसपजल व्ल्स्ंदकद्धरू.

भारत में सभी खेतों की उर्वरता समान नहीं है। एक ही भू–भाग में किसी एक खेत की उर्वरता अधिक और दूसरे की कम होती है। फलतः बँटवारे के समय उत्तराधिकारी को कम और अधिक दोनों प्रकार की उर्वरता वाली भूमियों में से हिस्सा मिलता हैं जिससे भूमि के अधिक टुकड़े हो जाते हैं।

दोषयुक्त भू–धारण पद्धति :– भारतीय कृषि में भू–धारण की दोषयुक्त पद्धति प्रचलित है जिसके कृषक भूमि से उत्पादकता बढ़ाने में इच्छुक नहीं होते हैं। प्रचलित दोषयुक्त पद्धतियों में कृषक एवं सरकार के मध्य मध्यस्थों का होना जोत, अपखण्डन जोत का क्षेत्रफल कम व असमान होना, भू–राजस्व की अधिक राशि वसूल करना आदि प्रमुख है। इस प्रकार की दोषयुक्त भू–धारण पद्धतियों के होने से कृषि विकास में बाधा पहुँचनी हैं। सरकार में स्वतंत्रता के पश्चात भू–धारण की दोषयुक्त पद्धतियों की समाप्ति के लिये अनेक भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाए है।

वैश्वीकरण

वैश्वीकरण अंतराष्ट्रीय व्यापार निवेश सूचना प्रौद्योगिकी और संस्कृतियों के वैष्विक एकीकरण का प्रतिनिधित्व करता हैं। वैश्वीकरण दुनिया भर में लोगों, कंपनियों और सरकारों के बीच बातचीत और एकीकरण की प्रक्रिया है।

वैश्वीकरण के अन्तर्गत व्यापर का विस्तार विश्व के अधिकांश देशों के मध्य होता हैं जिसमें उन देशों के मध्य अपेक्षाकृत अधिक उदार आर्थिक संबंध बनाये जाते हैं।

भूमंडलीयकरण की प्रक्रिया में प्रतिक्रिया में प्रतियोगी संस्कृति के विकास के साथ–साथ उत्पादकता का उच्च दक्षता को बढ़ावा देना, तकनीकी हस्तावरण, शोध एवं विकास के कार्यक्रमों में आपसी सहयोग का लाभ उठाना तथा उद्योगों को बढ़ावा देना सम्मिलित हैं, जिससे बंद अर्थव्यवस्था की बुराइयों से देश को बचाया जा सके।

इसके लिये एक देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था तथा विश्व बाजार से सौहार्दपूर्ण सामंजस्य स्थापित करना होगा जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था खुले बाजार के साथ एक सीमा–विहीन विश्व अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो सके।

भूमण्डलीकरण की वर्तमान विचारधारा प्राचीन भारतीय दर्शन 'वसुर्धेव कुटुम्बकम्' पर ही आधारित है, लेकिन विकसित देशों के समर्थन, भूमण्डलीकरण की परिभाषा को पहले तीन तत्वों तक ही सीमित कर देते हैं अर्थात् निर्बाध व्यापार प्रवाह निर्बाध पूँजी प्रवाह और निर्बाध तकनीकी–प्रवाह, परन्तु विकासशील देशों के बहुत से अर्थशास्त्री यह सोचते हैं कि परिभाषा केवल प्रथम तीन तत्वों पर आधारित होने के कारण अपूर्ण है। यदि भूमण्डलीकरण के समर्थकों का अंतिम लक्ष्य समस्त संसार को एक सार्वभौमिक ग्राम के रूप में परिकल्पित करना है। तो इसके चौथे तत्व अर्थात् श्रम के निर्बाध प्रवाह की अपेक्षा नहीं की जा सकती। इस सम्पूर्ण प्रकरण पर विश्व व्यापार संगठन या अन्य मंचों पर अनेक बार बहस हो युकी हैं, लेकिन श्रम प्रवाहों की पूर्णतया उपेक्षा ही की गयी, भले ही यह भूमण्डलीयकरण का अनिवार्य अंग है।

विश्व आर्थिक परिदृश्य में भूमण्डलीय एक ऐसा रोमांचक शब्द है जिसका गर्मित भाव यह प्रकट करता है। कि विभिन्न राष्ट्र राज्यों को विश्व व्यापार संगठन के ढाँचे के अधीन एकीकृत कर देना चाहिए। इसके समर्थक हैं भूमण्डलीकरण की नीतियों के परिणाम स्वरूप विकासशील देश अपनी स्पर्धा–शक्ति को मजबूत बना पाएंगे और उनमें चरित विकास की प्रक्रिया आरंभ हो जायेगी। परिणामतः विकासशील देशों को कई प्रकार के प्रलोभनों एवं कठोर दबावों द्वारा भूमण्डलीकरण की नीति को अपनाने के लिये बाध्य किया जाता है।

साधारण शब्दों में भूमंडलीयकरण का अर्थ है। देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ 'एकीकृत' करना। भारतीय संदर्भ में इसका अर्थ है विदेशी कंपनियों को भारत की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में निवेश करने की अनुमति देकर अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश के लिये खोलना, विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम जैसे कानूनों को धीरे–धीरे समाप्त करके बहुराष्ट्रीय निगमों को देश में आने की व निवेश करने की सुविधाएँ प्रदान करना। भारतीय कंपनियों को विदेशी कंपनियों के साथ सहयोग करने की अनुमति देना तथा दूसरे देशों में परियोजनाएँ चालू करने के लिए प्रोत्साहित करना, मात्रात्मक प्रतिबंधों के स्थान पर धीरे–धीरे प्रशुल्को को प्रतिस्थापित करना और फिर धीरे–धीरे उनको भी कम कर देना जिससे आयात उदारीकरण कार्यक्रमों को व्यापक आधार पर लागू किया जा सके, तथा कई तरह के नियति प्रोत्साहनों (जैसे नकद, मुआवजा, शुल्क वापसी की व्यवस्था, आयात पुनः पूर्ति योजना, राजकोषिय रियायता इत्यादि) के स्थान पर विनिमय दर में परिवर्तनों द्वारा निर्यातों को प्रोत्याहित करना। भूमंडलीयकरण की दिशा परिवर्तन द्वारा निर्यातों को प्रोत्याहित करना। भूमंडलीयकरण की दिशा में भारत सरकार ने आठवे दशक के आरंभ से ही प्रयास करने शुरू कर दिए थे।

उदारीकरण और कृषि

विकास का नीवन मॉडलः–

विकास का उदारीकरण निजीकरण और वैश्वीकरण जो बड़े जोर शोर से 1991 में चालू किया गया, का मुख्य उद्देश्य विकास के लिये एक नई रणनीति अपनाना था जिसमें निजीकरण ;च्तपअंजपेंजपवदद्ध और वैश्वीकरण ;ळसवइंसपेंजपवदद्ध पर बल दिया जाये। देश के स्तर पर दो मुख्य परिवर्तन किए गये। प्रथम, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग, निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गये। चाहे सरकार हानि उठाने वाले सार्वजनिक उद्यमों को निजी क्षेत्र को सौंपना चाहती थी।

भारत एक कृषि प्रधान देश हैं और यहाँ की अर्थव्यवस्था में खेती का महत्वपूर्ण स्थान हैं, चूँकि भारतीय कृषि अपेक्षाकृत काफी पिछड़ी हुयी हैं इसलिए इसका प्रभाव सीधा अर्थव्यवस्था पर पड़ता और गरीबों की संख्या लगातार बढ़ती जाती हैं।

भारत में गरीबी का मूल कारण कृषि की प्रधानता और यहाँ की पिछड़ी हुयी खेती हैं। आज भी हमारी आबादी का एक बड़ा हिस्सा खेती पर निर्भर हैं। कृषि की स्थिति बेहद दयनीय हैं बीज बोने से लेकर फसल बेचने तक का सारा काम बेहद पुरानी तकनीक से किया जाता है। जिसकी वजह से फसलों की उत्पादकता बेहद कम हैं और प्रति व्यक्ति आय का स्तर काफी निम्न हैं यही कारण है कि खेती पर निर्भर लोग और गरीब होते जा रहे हैं।

पूँजी की कमी के कारण अपना स्वयं का स्वरोजगार भी नहीं खोल पा रहे हैं। पूँजी की कमी का एक कारण यह भी हैं लोगों की प्रति व्यक्ति भी बहुत कम हैं। जिसके कारण वे बचत नहीं कर पाते हैं। इसलिए वे गरीब से और गरीब हो होते जाते हैं।

स्वतंत्रता के बाद से ही कृषि क्षेत्र पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया, जिसके कारण कृषि क्षेत्र और अधिक पिछड़ता गया। भारत एक कृषि प्रधान देश हैं जिसकी अर्थव्यवस्था कृषि पर ही निर्भर रहती हैं। सबसे पहले देश की कृषि क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को मजबूत करेन की हैं। प्रो0 आर्थर लुइस ने कभी कहा था कि कृषि क्षेत्र में उत्पादकता ही आर्थिक विकास के लाभ सुनिश्चित करती हैं। कृषि को विभिन्न नियंत्रणों से मुक्त रखा जाना चाहिए। ताकि बिना किसी व्यवधान के खेती का निरंतर विकास हो सकें।

भारत में कृषि उत्पादकता

।हतपबनसजनतंस च्तवकनबजपअपजल पद प्दकपं

उत्पादन के किसी एक साधन की एक ईकाई मात्रा द्वारा प्राप्त उत्पादन की मात्रा उस साधन की उत्पादकता कहलाती हैं। कृषि के क्षेत्र में उत्पादकता साधरणतया भूमि अथवा श्रम साधन के आधार पर व्यक्त की जाती हैं। भूमि की उत्पादकता से तात्पर्य भूमि के एक ईकाई क्षेत्र से प्राप्त होने वाले उत्पादन की मात्रा से हैं। भूमि की उत्पादकता कुल उत्पादन की मात्रा तथा भूमि के क्षेत्रफल के मध्य बदलते हुये सम्बन्धों का विवेचन करती हैं। उत्पादकता प्रकट करने की यह विधि भौतिक हैं, क्योंकि इसमें उत्पादों के मूल्य का समावेश नहीं होता हैं। भूमि उत्पादन–साधन के आधार पर उत्पादकता प्रकट करने का कार्य सरल हैं, क्योंकि इसे सुगमता से ज्ञात किया जाता। स्वतंत्रता के बाद से ही सरकार द्वारा कृषि उत्पादों की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए निरंतर कृषि क्षेत्र में अनेक कार्यक्रम जैसे– अधिक अन्न उपजाओं कार्यक्रम, पैकेज कार्यक्रम, सघन कृषि, क्षेत्र कार्यक्रम, उत्पादन साधनों के उत्पादन एवं उपभोग में वृद्धि, कृषि विस्तार कार्यक्रम आदि शुरू किये गये है।

उत्पादकता में वृद्धि के लिये विशेष प्रयास वर्ष 1965–66 के उपरांत काल में किये गये। इस काल में उन्नत किस्मों के बीजों का अविष्कार, सिंचाई के साधनों का विकास, कृषि में यंत्रीकरण, कृषि अनुसंधान द्वारा नई तकनीकी विधियों का अविष्कार एवं कृषि विस्तार की नई योजनाएँ प्रमुख हैं।

भारत में कृषि उत्पादकता के कम होने के कारण

ब्नेमे वि स्वू ।हतपबनसजनतंस च्तवकनबजपअपजल पद प्दकपं

भारत में कृषि की उत्पादकता के कम होने के कारण को 5 भागों में विभक्त किया जा सकता हैं।

;पद्ध भूमि संबंधी कारण

;पपद्ध श्रम संबंधी कारण

;पपपद्ध पूँजी संबंधी कारण

;पअद्ध प्रबंध संबंधी कारण

;अद्ध अन्य कारण

1. भूमि संबंधी कारण

;ंद्ध भूमि की उर्वरा शक्ति में हास– उत्पादकता में बाधक प्रथम तत्व भूमि की उर्वरा शक्ति में निरन्तर हास होना है। कृषकों द्वारा भूमि पर निरन्तर फसलों के उत्पादन करने एवं उनके कारण होने वाले भोजन तत्वों की कमी को पूरा करने के लिये आवश्यक मात्रा में खाद एवं ऊर्वरकों का उपयोग नहीं करने से भूमि की उर्वराशक्ति निरंतर कम होती जाती है। हवा व पानी से भूमि के कटाव भूमि पर निरंतर पानी भरा रहने, उचित फसल चक्र का अभाव भी भूमि उर्वराशक्ति निरंतर कम होती जाती हैं। हवा व पानी से भूमि के कटाव, भूमि पर निरंतर पानी भरा रहने, उचित फसल चक्र का अभाव भी भूमि की उर्वरा शक्ति के हास में वृद्धि करते हैं।

;इद्ध जोत उप–विभाजन एवं अपखण्डन– भूमि संबंध दूसरी प्रमुख समस्या देश में प्रचलित उत्तराधिकार कानून के कारण जोत का उप–विभाजन एवं अपखंण्डन होने की हैं, इस समस्या के कारण जोत का आकार निरंतर कम होता जाता है एवं भूमि के खण्ड एक–दूसरे से दूर होते जाते हैं। अतः जोत आर्थिक दृष्टि से लाभकार नहीं होती हैं। फलतः उत्पादकता कम रहती है।

;बद्ध भू–धारण की दोष–युक्त .....– देश में जागीरदारी, जमींदारी, पहेदारी बताईदार, अनुपस्थित जमींदारी आदि अनेक की भू–धृति कुरीतियाँ शताब्दियों से प्रचलित है। इनके कारण भूमि के स्वामी वास्तविक कृषक न होकर जमींदार होते हैं। जमींदार कृषकों से उत्पादन का अधिक भाग लगान के रूप में प्राप्त करते हैं, जिसके कारण कृषकों में उत्पादन–वृद्धि की प्रेरणा का हास होता है और प्रति हैक्टेयर उत्पादन कम रहता हैं।

2. श्रम संबंधी कारणः– कृषि क्षेत्र में श्रम संबंधी समस्याओं के कारण श्रमिकों की कार्यक्षमता कम रहती हैं। और परिणाम स्वरूप उत्पादन कम होता हैं कृषि उत्पादकता कम रहने में श्रम संबंधी प्रमुख कारण निम्नानुसार हैं।

;ब्ध श्रमिक का भूमि पर अधिक भारत देश में जनसंख्या की अधिकता, कृषि व्यवसाय को उत्तम व्यवसाय मानने, गाँवों में रोजगार के लिये कुटीर उद्योगों का अभाव आदि के कारण कृषि क्षेत्र में श्रमिकों का भार अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक हैं। भारत में प्रति कृषि श्रमिक भूमि कम है, जबकि अन्य देशों में इसकी प्रतिशत ज्यादा पाया जाता हैं। जनसंख्या की अधिकता के कारण प्रति व्यक्ति भूमिका क्षेत्र मात्र 0.33 हैक्टेयर ही हैं जो कि अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि एवं भूमि के क्षेत्र की सीमितता के कारण प्रति व्यक्ति भूमि का क्षेत्र निरंतर कम होता जा रहा है फलतः कृषि उत्पादकता कम रहती हैं।

;इब्ध कृषि श्रमिकों में व्याप्त बेरोजगारी– भारतीय कृषि मौसमी व्यवसाय हैं मौसम के प्रारंभ व अन्त में कार्य की अधिकता के कारण कृषि श्रमिकों की माँग अधिक होती हैं वर्ष के अन्य समय में कार्य उपलब्ध होती हे और शेष 6–7 माह में बेकार रहते हैं। रोजगार की निरन्तर उपलब्धि नहीं होने से श्रमिकों की कार्यक्षमता पर विपरित प्रभाव पड़ता हैं और वे अपनी समुचित कार्य क्षमता का उपयोग उत्पादन बढ़ाने में नहीं कर पाते हैं।

;बब्ध कृषि श्रमिकों की मजबूरी का स्तर अन्य क्षेत्रों के श्रमिकों की अपेक्षा कम होनाः– कृषि श्रमिकों में व्याप्त बेरोजगारी के साथ साथ उनको उपलब्ध कार्य की मजदूरी भी अन्य उद्योगों की अपेक्षा कम मिलती हैं इसका मुख्य कारण कृषि क्षेत्र में कार्य कर रहे श्रमिकों का संगठित नहीं होता है कृषि श्रमिकों की माँग व पूर्ति में असंतुलन, श्रमिकों का गाँव छोड़कर शहर में कार्य के लिये जाने को तैयार नहीं होना तथा श्रमिकों द्वारा कृषि व्यवसाय को उत्तम व्यवसाय मानना हैं। कृषि श्रमिकों को मजदूरी कम प्राप्त होने के कारण उनका रहन सहन का स्तर अन्य उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों की तुलना में न्यूनतम स्तर का होता है जिससे उनकी कार्यक्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता हैं।

(3) पूँजी संबंधी कारणः–

;ब्ध कृषि में स्थायी पूँजी की अधिक आवश्यकता– कृषि व्यवसाय में अन्य उद्योगों की अपेक्षा भूमि–सुधार कार्य करने, कुँआ बनाने, सिंचाई की नालियाँ बनाने, खेत की बाड़ लगाने, ट्रेक्टर एवं अन्य मशीने खरीदने आदि कार्यों के लिये अधिक स्थायी पूँजी की आवश्यकता होती हैं। कृषि क्षेत्र में बचत के कम होने के कारण कृषक आवश्यक राशि में स्थायी पूँजी निवेश नहीं कर पाते हैं। कृषि में स्थायी पूँजी राशि अधिक समय तक निवेश रहने के कारण ऋणदात्री संस्थाएँ कृषकों को लम्बे समय के लिए ऋण देने में हिचकिचाती हैं। कृषकों को आवश्यक मात्रा में स्थायी पूँजी उपलब्ध नहीं होती हैं।

;इब्ध कार्यगत पूँजी का अभाव– कृषि व्यवसाय में उत्पादन साधनों बीज, खाद, उर्वरक, कीटनाशी दवाइयों के क्रय करने श्रमिकों को मजदूरी का भुगतान करने, बिजली व तेल के भुगतान आदि कार्यो के लिए कार्यगत पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है। कृषि में आवश्यक बचत के अभाव में कृषक पूँजी भी ऋणदात्री संस्थाओं से उधार लेते हैं लघु कृषक आवश्यक प्रतिभूति के अभाव में कार्यगत पूँजी ऋण के रूप में प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

(4) प्रबंध सम्बन्धी कारकः– प्रबंध संबंधी समस्याओं में कृषकों को फार्म–प्रबंध सिद्धांतों का ज्ञान न होना कृषकों की रूढ़िवादिता, जोखिम वहन क्षमता का अभाव एवं कृषि की उन्नत विधियों का ज्ञानन होना प्रमुख हैं। फार्म प्रबंध–ज्ञान कृषकों को फार्म पर लागत में कभी करने तथा

आय में वृद्धि करने में सहायक होता हैं। फार्म उत्पादन के सभी उत्पादन साधन कृषकों के पास होते हुए भी, प्रबंध ज्ञान के अभाव में वे फार्म से अधिकत्तम उत्पादन प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

(5) अन्य कारण कृषि में उत्पादकता कम रहने के अन्य कारण निम्न प्रकार हैः–

;पद्ध ठोस कृषि–नीति का अभाव :– सरकार स्वतंत्रता के समय से ही कृषि–उत्पादन में वृद्धि की नीति को प्राथमिकता प्रदान कर रही हैं, लेकिन इस विषय पर सरकार की वर्तमान में भी कोई ठोस नीति नहीं है। उदा. सरकार भूमि की अधिकतम सीमा, भू–धृति पद्धति, कृषि पर, कृषि उत्पादन एवं उत्पादन साधनों की कीमत नीति में निरन्तर परिवर्तन करनी रही हैं। परिवर्तनों की सम्भावना की अवस्था में निर्धारित नीतियाँ पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं हो पाती हैं। निर्धारित नीति के समय पर कार्यान्वित नहीं होने से निर्धारित लक्ष्य भी प्राप्त नहीं होते हैं। परिवर्तनशील नीतियाँ अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न करती हैं, जिससे कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों कम रहती हैं।

देश की अर्थव्यवस्था में 50: से अधिक का योगदान करने वाले असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र के लोगों का कुल कामगार आबादी का हिस्सा 80: हैं भारत का अनौपचारिक क्षेत्र या असंगठित क्षेत्र मूल से ग्रामीण आबादी से बना है। ये वे लोग हैं जो गाँव में पुराने तरीके अपने काम धंधे में लगे रहते हैं। ये लोग शहरों में आकर अपनी आजिविका तलाशने का प्रयास करते हैं। गाँवों में परंपरागत पेशेवर, भूमिहीन किसान और छोटे किसान भी इसी श्रेणी का हिस्सा है। शहरों या महानगरों में ये लोग अधिकतर खुदरा कारोबार थोक कारोबर विनिर्माण उद्योग, परिवहन भंडारण और निर्माण उद्योग में काम करते हैं। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं। जो फसल की बुआई और कटाई के समय गाँवों में चले जाते हैं और बाकी समय शहरों में काम करते हैं। मूल तथ्य यह है कि इन लोगों को कोई सामाजिक सुरक्षा या अन्य सरकारी लाभ नियमित तौर पर प्राप्त नहीं होता हैं और न ही किसी विशेष संगठन या संस्थान से जुड़ पाते हैं।

डपहतंजवतल बिंतंबजमत वि प्दिकपंद स्ंइवनत

भारतीय श्रमिकों में एक बड़ी विशेषता पाई जाती हैं जो कि पाश्चात्य देशों जैसे–अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि में नहीं पाई जाती हैं। बाहर के देशों में श्रम शक्ति का बँटवारा कृषि और उद्योगों से संबंधित उद्योगों में पाया जाता हैं वही वे अपने निवास स्थान का स्थाई स्थान बना लेते हैं। पाश्चात्य देशों में औद्योगि क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों का निवास स्थान शहरों में पाया जाता है। इसी तरह कृषि क्षेत्रों में लगे लोग अपना निवास स्थान गाँवों में स्थायित्व कर लेते हैं।

प्रवासिता के प्रकारः–

;ज्ञपदके वि डपहतंजपवदद्ध

1. अस्थायी या आकस्मिक प्रवासः–कुछ श्रमिकों का प्रवास अस्थायी तथा आकस्मिक होता हैं। छोटे–छोटे आकस्मिक आवागमन का मुख्य कारण वह प्रथा है जिसके अनुसार माता–पिता अपने बच्चों के लिये रोजगार की तलाश अन्य क्षेत्रों में करते हैं। अस्थायी प्रवासिता का मुख्य कारण व्यक्तियों का नई निर्माण की जा रही नहरों व रेल्वे भागों के कार्यो पर लगना, तीर्थ यात्रा पर जाना, व्यापार–व्यवसाय संबंधी कार्यो के लिये जाना, विवाह शादी के कार्यक्रमों में आना जाना हैं।

2. स्थायी प्रवासः– जब कोई श्रमिक अपने मूल स्थान को छोड़कर अन्य किसी स्थान पर हमेशा के लिये अथवा बहुत अधिक लम्बे समय के लिये चला जाता है, तो प्रवास की इस प्रवृत्ति को स्थायी प्रवृत्ति कहते हैं जैसे किसान का पुत्र शहर में नौकरी करने के लिये चला जाता हैं या कोई व्यक्ति गाँव छोड़कर शहर में व्यापार आदि कर लेता हैं।

3. सामयिक प्रवासः– सामयिक प्रवास से आशय उस प्रवास से हैं जो कुछ समय के लिये हो। कुछ विशिष्ट मौसमों में श्रमिक कारखानों के काम को छोड़कर फसल आदि काटने के लिये गाँव चले जाते हैं तथा काम पूरा हो जाने के बाद वापस शहर में कारखाने पर आ जाते हैं। उनके इस प्रकार के प्रवास को सामयिक या मौसमी प्रवास कहते हैं।

4. दैनिक प्रवासः– कुछ बड़े औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों में रोजगार के स्थान से बाहर जोन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही हैं। शहर की नगर पालिका की सीमा से बाहर औद्योगिक बस्तियाँ बन गई है, यहाँ से तथा आस–पास के गाँवों में प्रतिदिन ट्रेन, बस आदि के द्वारा श्रमिक कारखानों में काम करने के लिये आते हैं। यद्यपि इन श्रमिकों के पास कृषि हेतु जतीन नहीं होती हैं। किन्तु फिर भी ये लोग गाँवों से अपना संबंध–विच्छेद नहीं करना चाहते हैं, क्योंकि गाँवों में उनके संबंधी रहते है। वहाँ उन्हें पैतृक महान का मोह होता हैं गाँवों में साफ–स्वच्छ वायु एवं भोजन मिलता हैं।

क्मअमसवचउमदज ंदक क्पेचींबंउमदजे ंदक डपहतंजपवद

विस्थापनः– **प्रवीसः7**

(1) कृषि को लाभ– सामान्यतः अधिकांश भारतीय कृषक गरीब होते हैं। अपनी गरीबी के कारण वे कृषि में कोई सुधार नहीं कर पाते हैं परन्तु जब वे फुरसत के समय में शहरी उद्योगों में काम करने चले जाते हैं, तो उनकी कुल आय में वृद्धि होती हैं। इस आय वृद्धि के फलस्वरूप यदि वे अपनी कृषि में सुधार करना चाहते। ..... कर सकते हैं हमारे देश से ऐसे अनेक उदाहरण देखे जा सकते है जब श्रमिकों में मिलों में काम करके अपनी कृषि की दशा को अत्यधिक सुधारा है।

(2) कृषि भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम होनाः– भारत एक कृषि प्रधान देश हैं। यहाँ की लगभग 70ः जनसंख्या कृषि पर आश्रित हैं। लगातार जनसंख्या वृद्धि के इस भार को हल्का करने के लिए कृषि जोते अनार्थिक होती चली जायेगा और कृषि एक गम्भीर समस्या बन जायेगी परंतु जब बढ़ती हुई जनसंख्या का एक भाग उद्योगों में कार्य करने चला जाता है तो कृषि पर जनसंख्या का भार कम हो जाता हैं।

3. ग्रामीण क्षेत्रों में नवीन विचारों का उदय
4. स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव
5. आराम एवं सुरक्षा का स्थान
6. जीवन स्तर में सुधार
7. स्वास्थ्य सुधार एवं कार्यक्षमता में वृद्धि
8. रूढ़िवादिता का अन्त
9. श्रमिकों को विशेष सुविधाएँ

इकाई सारांश : याद रखने योग्य बातेंः–

अपनी प्रगति की जाँच कीजिएः–

- अधिगम की अवधारणा को समझाइए, एवं बालक के अधिगम विकास में विद्यालय की भूमिका को विस्तार से समझाइए।
- अधिगम की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइए।
- बालक के अधिगम विकास की प्रक्रिया में प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को विस्तार से समझाइए?
- परिवार की /सकारात्मक सशक्त भूमिका को अपने शब्दों में बताइये

नियत कार्यः–

- अधिगमः– अनुभव एवं प्रशिक्षण के माध्यम से व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम या सीखना हैं।
- अधिगम विकास की एक सतत प्रक्रिया है।
- अधिगम लगातार चलने वाली प्रक्रिया हैं।
- बालक के अधिगम को प्रभावित करने वाले बहुत से कारक हैं। जो

असंगठित उद्योगों में श्रम शक्ति

;संइवनत पद जीम न्दवतहंदपेमक ैमबजवतद्ध

असंगठित उद्योग धंधों से आशय उन उद्योग धधों से हैं। जो कारखाना। अधिनियम के क्षेत्र के परे हैं। उन पर कारखाना अधिनियम इस कारण लागू नहीं होता क्योंकि या तो श्रमिकों की संख्या 10 से कम है अथवा वे शक्ति का प्रयोग नहीं करते और 20 से कम श्रमिकों को रोजगार प्रदान करते हैं। सामान्यतः असंगठित उद्योगों में ऐसे सभी श्रमिकों को शामिल किया जाता है। जिन्हें किसी भी प्रकार से परिभाषित नहीं किया जा सकता है तथा जो समान उद्देश्यों के लिये संगठित नहीं हो सकते, क्योंकि उनकी कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे ;पद्ध नियोक्ता का अधिक शक्तिशाली होना ;पपद्ध रोजगार की आकस्मिक प्रकृति ;पपपद्ध अज्ञानता एवं अशिक्षा ;पअद्ध कम विनियोग वाले छोटे–छोटे प्रतिष्ठान ;अद्ध उद्योगों का बिखरा होना आदि

इस प्रकार के उदाहरण देने योग्य प्रमुख वर्ग निम्न हैं– ;पद्ध ठेवे का श्रम ;ब्वदजतंबज संइवनतद्ध, जिसमें भवन निर्माण में लगे हुये श्रमिक शामिल है ;पपद्ध आकस्मिक श्रम ;ब्नंस संइवनतद्ध ;पपपद्ध कुटीर एवं लघु स्तरीय उद्योगों में काम करने वाले श्रमिक, ;पअद्ध दुकानों व व्यापारिक संस्थाओं में काम करने वाले श्रमिक ;अद्ध बीड़ी व सिगार उद्योग के श्रमिक ;अपद्ध दुकानों व व्यापारिक संस्थाओं में काम करने वाले श्रमिक ;अपपद्ध मेहतर व सफाई करने वाले श्रमिक ;अपपपद्ध चर्म–शोधन कारखानों के श्रमिक ;पगद्ध आदिवासी श्रम ;ज्तपइंस संइवनतद्ध तथा ;गद्ध अन्य प्रकार के असंगठित श्रमिक।

असंगठित उद्योगों में संलग्न श्रमिकों की सही संख्या उपलब्ध नहीं हैं, क्योंकि इनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक व विस्तृत है। 1947 के पूर्व, श्रम जाँच आयोग के अनुसार इन उद्योगों में अनुमानतः 10 लाख श्रमिक संलग्न थे।

बाजारः

भारत में काफी लंबे समय तक कृषि ही जीवन का आधार थी। किसान अपनी उपज का थोड़ा सा भाग बेचते थे ताकि वे उस मुद्रा से लगान व ऋण चुकाने में समर्थ हो सके। फसल काटने के बाद ही उन्हें बेचा जाता था। क्योंकि उस वक्त भण्डारण सुविधाओं का अभाव था। शक्तिशाली एवं संगठित व्यापारियों द्वारा उनका विभिन्न प्रकास से शोषण किया जाता था, लेकिन बदलते वक्त के साथ सूती वस्त्र तथा जूट उद्योगों के साथ चीनी उद्योगों का भी विकास हुआ। शहरी जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण भी कृषि पदार्थो की माँग में वृद्धि हुई। कृषि जीवन निर्वाह का साधन न होकर एक व्यवसाय बन गया हैं। एक सुव्यवस्थित कृषि विपणन व्यवस्था से किसान को अनेक लाभ होते हैं। उसे उसकी उपज की उचित कीमत प्राप्त हो जाती हैं। फलस्वरूप वह अधिक उत्पादन करने के लिये प्रोत्साहित होता हैं। कृषि पदार्थो को विपणन से शहरी जनसंख्या को जहाँ अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त होती है वहाँ उद्योगों को कच्चा माल प्राप्त होता है।

कृषि बाजार के अंतर्गत किसान से उपभोक्ताओं को सीधे अथवा मध्यस्थों के माध्यम से कृषि पदार्थो का एकत्रीकरण, वर्गीकरण, भण्डारण, परिवहन तथा वितरण सभी बातें सम्मिलित की जाती हैं। कुछ अर्थशास्त्री कृषि में काम आने वाले सामान जैसे बीज, उर्वरक, औजार तथा कृषि पदार्थों दोनों को कृषि बाजार में सम्मिलित करते हैं।

भारत में कृषि बाजार

(1) महाजनों तथा गाँव के व्यापारियों की बिक्रीः– किसान कुल उपज का एक बहुत बड़ा भाग गाँव के महाजनों तथा व्यापारियों को ही बेच देते हैं। गाँवों में अधिकांश किसानों, महाजनों के ऋणों से दबे रहते हैं। अतः महाजन उन्हें इस बात के लिये बाहय करता हैं कि वे उन्हें ही अपनी फसल बेये। वह किसान को फसल बेचने के लिये बाध्य ही नहीं करते वरन् बाजार की तुलना में कीमत कम कर देते है। महाजन थोक व्यापारियों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। किसान को उपज गाँवों में बेचने का लाभ यह होता हैं कि उसे मंडी तक माल ले जाने की असुविधा से छुटकारा मिल जाता है। परंतु इस लाभ की तुलना में उसे हानि अधिक होती हैं। क्योंकि न तो उसे उपज का उचित मूल्य प्राप्त होना है और न ही पूरी उपज का मूल्य क्योंकि व्यापारी प्रायः तौल में गड़बड़ी करते है।

(2) हाट तथा शेण्डीः– हाट गाँव में सप्ताह में एक या दो बार लगने वाला बाजार हैं। जबकि शेण्डी पाक्षिक या विशेष अवसरों पर लगने वाला बाजार हैं। जबकि शेण्डी पाक्षिक या विशेष अवसरों पर लगने वाला बाजार हैं। ग्रामीण लोग यहाँ से अपनी आवश्यकताओं का सामान खरीदते हैं। किसान भी अपनी उपज का एक भाग इन बाजारों में बेचते हैं थोक व्यापारियों के प्रतिनिधि और कृषि पदार्थो को खरीदते हैं इस प्रकार के बाजार पूरे देश में फैले हुये है।

(3) मण्डी या थोक बाजारः– एक थोक बाजार अनेक गाँवों को सेवा प्रदान करता हैं तथा प्रायः शहर में होता हैं। इन मण्डियों में उपज लाने में यातायात संबंधी अनेक कठिनाइयाँ आती है तथा अनेक कुरितियाँ प्रचलित होती है। इसलिए छोटे किसान अपनी थोड़ी सी उपज को यहाँ लाने में सकुचाते हैं तथा प्रायः हाट में ही अपनी उपज को बेच देते हैं थोक बाजार में कृषि पदार्थों की बिक्री मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत कमीशन के रूप में लेते हैं।

(4) सहकारी विपणनः– कृषि विपणन में सुधार तथा मध्यस्थों द्वारा किसानों का शोषण रोकने के लिये सहकारी विपणन समितियों का विकास किया गया है। ये समितियाँ अपने सदस्यों की छोटी–छोटी उपजों को एकत्रित करके सामूहिक रूप से मण्डियों में बेचती है। जिसके

फलस्वरूप इन समितियों के सदस्य किसानों की सौदा शक्ति बढ़ जाती हैं और उन्हें उपज की सही कीमत मिल जाती है। इसके अतिरिक्त ये समितियाँ सदस्यों की अन्य तरीकों से भी मदद करती हैं।

कृषि विपणन व्यवस्था में दोषः–

;क्ममिबजे पद जीम ।हतपबनसजनतंस डंतामजपदह ैलेजमउद्ध

(1) भण्डारण सुविधाओं का अभावः– भारत के गाँवों में उचित भण्डारण सुविधाओं का अभाव है, जिसके कारण किसान अपनी उपज को बोरों में या खत्तियों में भरकर रखने के लिये मजबूर होता है। इस तरह के भण्डारण विधियों के कारण उपज का एक बड़ा भाग बेकार हो जाता है। एक अनुभव के अनुसार कुल उपज का 15 प्रतिशत भाग या तो सड़ जाता हैं या चूहें तथा कीटाणुओं द्वारा खा लिया जाता हैं। इस प्रकार के खतरों से बचने के लिये किसान अपनी उपज को जल्द से जल्द बेच देना चाहता हैं जिससे इन गाँवों में कृषि पदार्थो की पूर्ति एकदम बढ़ जाती हैं और किसान को उनका उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता हैं।

(2) श्रेणीकरण व प्रमाणिकरण का अभाव
(3) यातायात सुविधाओं की अपर्याप्तता
(4) मध्यस्थों की अधिकता
(5) अनियन्त्रित बाजारों में व्यापारिक दुराचार
(6) बाजार संबंधी सूचनाओं का अभाव

(7) साख सुविधाओं का अभाव
(8) प्रतिकूल परिस्थितियाँ
(9) कृषकों द्वारा विक्रय किये जाने वाले उत्पादों की मात्रा का कम होना
(10) विक्रय लागत की अधिकता
(11) कृषकों में संगठन का अभाव
(12) विपणन हेतु वित्त का अभाव

उदारीकरणः– 1991 के आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में किये गये व्यापार नीति के परिवर्तनों में कृषि व्यापार नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। कृषि व्यापार नीति में परिवर्तन के फलस्वरूप 1994 तक कृषि व्यापार नीति में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। नारियल, दाले, चावल, सब्जियाँ, खली एवं गिरी आदि लाइसेंसिंग व्यवस्था में ही बने रहे। वस्तुतः निरंतर उदार होती अर्थव्यवस्था एंव विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद कृषि व्यापार नीति को भी उदार किया जाना जरूरी हो गया। भारत में 14 अप्रैल 1994 को उ....दौर के अनुसार विश्व व्यापार संगठन के समझौते पर हस्ताक्षर के अनुसार विश्व व्यापार संगठन पहली जनवरी 1994 से ही मायमें में कार्यन्वित हुआ। विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर हुये समझौते के अनुसार कृषि व्यापार में मात्रात्मक प्रतिबंधों को भी विश्व व्यापार संगठन के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया गया है। इस समझौते हेतु खेती व्यापार के मात्रात्मक प्रतिबंधों को समाप्त करना, मात्रात्मक प्रतिबंधों को प्रशुल्कों से प्रतिस्थापित करना, प्रशुल्कों में कमी करना और घरेलू कृषि वयापार को अनरू राष्ट्रों के कृषि निर्यातों के लिये खोलना है। विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर समझौता प्रावधान लागू होन से कृषि व्यापार नीति में उदारीकरण की नई व्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

कृषि क्षेत्र में निर्यात वृद्धि कराकर विदेशी मुद्रा प्राप्त करने और किसानों की आय बढ़ाने की व्यापक संभावनाएँ है। अतः कृषिगत, निर्यात को बढ़ाने के लिये खास प्रयास किये गये हैं। निर्यात संवर्धन परिषद और वस्तु बोर्ड संबद्ध वस्तुओं के उत्पादन और निर्यात को बढ़ाने के लिये खास प्रयास किये गये है। निर्यात संवर्धन परिषद और वस्तु बोर्ड संबद्ध वस्तुओं के उत्पादन और निर्यातकों को प्रोत्साहित करते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्रः–

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र और विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में कार्यरत् हैं, जैसे रेल्वे डाक और संचार क्ररेसी और तकसाल वन, विद्युत परियोजनाएँ बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएँ, बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएँ सड़क और वायु परिवहन, जहाज बनाना, इंजन बनाना, तेल खोज एवं शोध भारी बिजली उद्योग, मशीनी औजार, रसायन, उर्वरक खनन औद्योगिक वित्त, 20 राष्ट्रीकृत बैंक बीमा, दवाईयाँ, बैड, दूध आदि।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र में औद्योगिक और व्यावसायिक उद्यमों को तीन ग्रुपों में वर्गीकृत किया गया हैंः ;पद्ध उद्यम जो विभागों अथवा सरकारी प्रशासक एजेंसियों द्वारा संचालित हैं, जैसे रेले, डाक और तार, दिल्ली, दुग्ध स्कीम, कोलार सोना खाने, आदि ;पपद्ध वैधानिक निगमों द्वारा संचालित उद्यम, जैसे जीवन बीमा निगम, केन्द्रीय भण्डारण निगम, एयर इंडिया, इंडियन

एयरलाईन्स, तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग, अधिनियम 1956 के अंतर्गत रजिस्टर्ड है। 31 मार्च 1992 को 241 केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम थे जिसमें से व निर्माण क्षेत्र में, 70 सेवाओं में और 162 निर्माण में कार्यरत् थे।

सार्वजनिक उद्यमों का भारत के आर्थिक विकास में योगदान :–

(1) निवेश वृद्धि ;प्दअमेजउमदज हतवूजीद्धरू. केन्द्रिय विश्वविद्यालय उद्यमों ने पंचवर्षीय योजनाओं के वर्षों में पर्याप्त वृद्धि की है।

(2) आंतरिक संसाधनों का प्रजननः– लाभकारी उद्यमों की संख्या बढ़ने के साथ–साथ इनके द्वारा आंतरिक संसाधनों का प्रजनन भी धीरे–धीरे बढा है। परन्तु उनमें किये जा रहे निवेश की तुलना में बहुत कम। छठी योजना के दौरान (1980–85) में उन्होंने 13,768 करोड़ रुपये प्रजनित किए जो औसत लगभग 2,760 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष थे। परंतु सातवीं योजना के अंतिम वर्ष में उनमें पर्याप्त वृद्धि हुई। जब वे 1989–90 में 10.774 करोड़ रुपये थे। 1995–96 में वे बढ़कर 24,371 करोड़ रुपये हो गये।

संतुलित क्षेत्रीय विकास ;ठंसंअतमक तमहपवदंस कमअमसवचउमदजद्ध :– क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के लिये और संतुलित क्षेत्रीय विकास प्राप्त करवाने हेतु सार्वजनिक उद्यम चननात्मक आधार पर आर्थिक तौर से पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित किये गये हैं। परिणाम स्वरूप वे प्रभावी वृद्धि बिंदुओं का कार्य करते है तथा इन क्षेत्रों में रोजगार के सुअवसर बढ़ने और संसाधनों के प्रवाह में सहायता करते हैं।

आय और धन का पुर्नवितरणः– सार्वजनिक उद्यम अनेक प्रकार से आय तथा धन के पुन्रवितरण को बढ़ाने में सहायक हो रहे हैं जैसे पिद्यड़े क्षेत्रों का विकास करके सस्ती दरों पर लोकहित सेवाओं का प्रबंध करके, शासकीय कीमतों पर मूल आगनों को बेचकर तथा अपने कर्मचारियों को चिकित्सा, शिक्षा, आवास और अन्य सुविधाएँ प्रदान करके।

उद्योगीकरण में भूमिकाः– सार्वजनिक उद्यमों की भारत के सर्वांगीण औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। इन्होंने अर्थव्यवस्थाा की प्रभावशाली शिखर नियंत्रित करने में सफलता प्राप्त की हैं। इनका कोयला, शक्ति, सीमा, लिगनाइट और कच्चे तेल के उत्पादन में एकाधिकार है। ये स्टील, उर्वरक, तेल शोधन तथा पेट्रोलियम पदार्थो के वितरण में मार्केट के अगुआ है। इन्होने भारी और पूँजी पदार्थो के लिए मशीने बनने पर सकेन्द्रित किया हैं। अनेक क्षेत्रों जैसे उर्वरक, इलेक्ट्रानिक्स, विमान–विज्ञान, मशीन औजार, बिजली निपुणता प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आधारभूत उद्योगों के अतिरिक्त वे कई क्षेत्रों में व्याप्त है जैसे व्यापारिक और विपणन सेवाएँ, पर्यटक सेवाएँ, वित्तीय सेवाएँ, निर्माण और संविदा सेवाएँ, दवाइयाँ, ब्रैंड, दूध आदि उपभोक्ता वस्तुएँ इत्यादि। निजी क्षेत्र के साथ प्रतियोगिता में आकर सार्वजनिक क्षेत्र एकाधिकार और संकेन्द्रण की प्रवृत्ति को कम करने में सहायक हुआ है। इस प्रकार यह अर्थव्यवस्था में एक स्वस्थ औद्योगिक आधार स्थापित करने के अपने मूल उद्देश्य में सफल रहा है।

कृषि विकास

;।हतपबनसजनतंस क्मअमसवचउमदजद्ध

विकासशील देशों में प्रमुख व्यवसाय कृषि होती हैं और राष्ट्रीय आय के आधे से अधिक भाग का योगदान देती है। इसके बावजूद, कृषि गतिहीनता की स्थिति में रहती हैं। कृषि में संलग्न व्यक्तियों की संख्या के संबंध में राष्ट्रीय आय का भाग आनुपातिक रूप से कम है। अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का 70: से अधिक भाग कृषि में लगा हैं, जबकि वह राष्ट्रीय आय में 50: के लगभग योगदान देता हैं इसका आधारभूत कारण यह है कि प्रति एकड़ कृषि उत्पादकता बहुत कम होती हैं। कम उत्पादन के कारण हैः जोतों का अनार्थिक आकार, भूमि जोतों का विखरा होना, दोषपूर्ण भूमि पट्टा व्यवस्था जिसे ..... लगान विशिष्टता प्रदान करते हैं और पट्टे की असुरक्षिता समुचित ऋण सुविधाओं का अभाव और ऋण बोझ सिंचाई–सुविधाओं का अभाव और वर्षा पर निर्भरता, उत्पादन के प्राचीन तरीकों का प्रयोग तथा भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव।

(क) उत्पादकता में वृद्धिः– योजना की सफलता अन्ततः इस बात पर निर्भर रहेगी कि कृषि उत्पादकता कहाँ तक बढ़ती हैं। कृषि उत्पादन में वृद्धि इसलिये आवश्यक है ताकि उद्योग की कच्चे माल की आवश्यकताओं को पूरा किया जाए, खाद्यान्नों में आत्म–निर्भरता प्राप्त की जाए, कीमत–वृद्धि को रोका जाए, विकास के लिये अधिक साधन जुटाएँ जाएँ और अर्थव्यवस्था के अप्रयुक्त तथा अल्प–प्रयुक्त मानव शक्ति साधनों का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया जाए।

ग्राम स्तर पर कृषि उत्पादन योजनाएँ तैयार करने में ये प्रमुख तत्व आते हैः ;पद्ध सिंचाई सुविधाओं का पूर्ण उपयोग जिसमें लाभ उठाने वालों के लिये खेत की नालियों को अच्छी हालत में रखना, उनकी मरम्मत, और सामुदायिक सिंचाई निर्माण कार्य की देखभाल शामिल हैं। ;पपद्ध अनेक फसलें उगाने के क्षेत्र में वृद्धि करना ;पपपद्ध गाँव में सुधारे हुये बीजों को बढ़ाना और सब काश्तकारों में उनका वितरण ;पअद्ध उर्वरकों का वितरण ;अद्ध मिश्रित खाद और हरी खाद के प्रयोग के लिये प्रोग्राम ;अपद्ध सुधारे हुये कृषि तरीकों को अपनाना, उदाहरणार्थ भूमि–संरक्षणः परिधि–बाँध बनाना, शुष्क खेती करना, भूमि को कृषि योग्य बनाना, पौधों का संरक्षण आदि ;अपपद्ध गाँव में नए छोट–छोटे सिंचाई निर्माण कार्य प्रोग्राम शुरू करना– सामुदायिक और व्यक्तिगत आधार दोनों के माध्यम से ;अपपपद्ध सुधारे हुये कृषि औजारों के लिये प्रोग्राम ;पगद्ध सब्जियों तथा फलों के उत्पादन बढ़ाने के प्रोग्राम ;गद्ध अण्डों, मछली तथा दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के प्रोग्राम ;गपद्ध पशु–पालन

उदारीकरण ;स्पइमतंसपेंजपवदद्ध

उदारीकरण का अर्थः उदारीकरण का आशय नियमों व प्रतिबंधों में ढील देने या उदारता बरतने से है। जब सरकार औद्योगिक नीति, श्रम नीति, आयात–निर्यात नीति, कर नीति आदि के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विनियोग उत्पादन तथा विवरण में प्रतिबंधों को हटाती हैं तो इसे उदारीकरण की नीति कहा जाता है।

उद्देश्यः उदारीकरण नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. घरेलु उत्पादन प्रणाली में सुधार तथा उत्पादन क्षमता में विकास करना।
2. रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।
3. वस्तुओं तथा सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार करना।
4. अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में शामिल होना।

भारत में उदारीकरण नीतिः–

भारत में उदारीकरण नीति को दो प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।
(1) नरम उदारीकरण नीति
(2) गहन उदारीकरण नीति
1. नरम उदारीकरण नीतिः– (1985 से 1992): भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गाँधी द्वारा सत्ता सम्..... के साथ सन् 1985 से ही उदारीकरण का युग आरंभ हुआ। उदारीकरण के अंतर्गत बहुत से परिवर्तन किये गये जो इस प्रकार हैं–
;पद्ध मार्च 1985 में सरकार ने 25 बड़े श्रेणी के उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त करने की घोषणा की।
;पपद्ध अम.आर.टी.पी. (एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार) और फेरा (विदेशी विनियम नियमन अधिनियम) के अंतर्गत आने वाले 223 उद्योगों को लाइसेंस लेने की आवश्यकता से मुक्ति दी गयी और एम.आर.टी.पी. कंपनी की पूँजी सीमा बीस करोड़ से सौ करोड़ रुपये कर दी गयी।
;पपपद्ध जून 1985 में 82 औषधियों एवं उससे संबंधित औषधिय फार्मूलों को भी लाइसेंसन्मुक्त कर दिया गया।
;पअद्ध छोटे उद्योगों की उन्नति के लिये पूँजी सीमा 20 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 35 करोड़ रुपये कर दी गयी। सहायक उद्योगों के लिये यह सीमा 45 करोड़ रुपये कर दी गयी।
;अद्ध 100 प्रतिशत निर्यात–उन्मुख यूनिटों ग्चवतज व्तपमदजमक न्दपजे ;म्ब्द्ध की लाइसेंसिग को पूर्णतः समाप्त कर दिया गया।

1985–91 की अवधि के दौरान उदारीकरण का यह क्रम जारी रहा। औद्योगिक विस्तार व आधुनिकीकरण के वास्ते सभी इकाइयों को विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहन व ..... दी गयी परंतु हमें आशातीत सफलता नहीं मिली। यह आवश्यक समझा गया कि औद्योगिक नीति के फ्रेम वर्क में थोड़े–बहुत परिवर्तन करके निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता हैं। इसके लिये यह आवश्यक समझा गया कि हमारी .....

निजीकरण के उद्देश्य ;व्इरमबजपअमे वि च्तपअंजपेंजपवदद्ध

विकसित तथा विकासशील दोनों ही प्रकार के देशों में निजीकरण को महत्व दिया जा रहा हैं। निजीकरण के विचारधारा के पक्ष में निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख किया जाता हैं।
1. अर्थव्यवस्था की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के आवश्यक वित्तीय संसाधनों को जुताना।
2. प्रबंधकीय योग्यता और दक्षता प्रदान करना।
3. राष्ट्रीय आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के अनुरूप निजी क्षेत्र की उत्पादन–क्रियाओं को सार्वजनिक क्षेत्र के साथ समन्वित करना।
4. नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना करना तथा योजनाओं में आरंभ की गई आयात प्रतिस्थापन क्रिया को बल प्रदान करना।
5. उपयुक्त तकनीक के प्रसार, अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण तथा उद्योगों के विवेकीकरण के वास्ते औद्योगिक शोध व विकास कार्यक्रम तेज करना और उनका विस्तार करना।
6. बाहय ऋणों को घटाना
7. प्रतियोगिता में वृद्धि करना
8. उत्पादकता में वृद्धि करना तथा परिचालन क्षमता को बढ़ाना।

भारत में निजीकरणः– 1985 में नई सरकार ने आर्थिक उदारीकरण को प्रारंभ किया जिसके अंतर्गत निजीक्षेत्र को अधिक महत्वपूण्र उत्तरदायित्व सौपें जाने का विचार रखा गया। नई सरकार की घोषणा के अनुसार "सार्वजनिक क्षेत्र बहुत अधिक क्षेत्रों में फेल गया है, जहाँ इसे नहीं होना चाहिए।"

आर्थिक विकास के अंतर्गत आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में 1991 में निजीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये गये जब सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों में 20 प्रतिशत अविनियोग करने का निर्णन लिया। निजीकरण की ओर अभिप्रेरित करने वाला एक प्रमुख घटक जापान तथा एशिया ने नव औद्योगीकृत देश–सिंगापुर ताईवान, हांगकांब, कोरिया आदि का सफल आर्थिक निष्पादन है। इन देशों ने अपने आर्थिक विकास के लिये नीजीकरण का मार्ग चुना है। दूसरा महत्वपूर्ण घटक सार्वजनिक उपक्रमों की अकुशलता हैं सार्वजनिक क्षेत्र के जो उपक्रम लाभ भी प्राप्त कर रहे हैं उनमें से अधिकांश एकाधिकारी कंपनियाँ हैं। इसके अतिरिक्त विश्व के घटनाक्रमों के तरह भी सरकार ने निजीकरण को बल देना प्रारंभ किया वर्तमान में सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आरक्षित उद्योगों की संख्या केवल 6 कर दी हैं तथा अब केवल सामरिक के महत्व के उद्योग ही सार्वजनिक क्षेत्र में रह गये हैं।

भारत में निजीकरण को प्रोत्साहित करने वाले कारकः–

1. नये आर्थिक सुधार कार्यक्रमः– 1991 में भारत सरकार ने नये आर्थिक सुधारों के तरत अनेक घोषणनाएँ की इनमें 100 करोड़ रुपये से अधिक सम्पत्ति वाली संस्थाएँ बिल के केन्द्रीय सरकार की अनुमति के भी स्थापित हो सकेगी। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों में कमी बड़े औद्योगिक घरानों को विस्तार से छूट लाइसेंस समाप्ति एंव सरलीकरण, विदेशी विनियोजनकों का उपक्रम में 51 प्रतिशत तक समता पूँजी को रखने की छूट, फेरा एवं एम. आर. टी.पी. अधिनियमों में ढील, रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता सीमा व उत्पाद शुल्कों में कमी आदि प्रमुख रूप से शामिल है। इन सबके फलस्वरूप एक ऐसा वातावरण तैयार हुआ जिसमें निजी उद्यमी अधिक स्वतंत्रता के साथ कार्य कर सकते हैं।

2. सरकार पर बढ़ता ऋणभारः– स्वतंत्रता के पश्चात भारत की सार्वजनिक क्षेत्र को प्राथमिकता के आधार पर विकसित करने का निर्णय सातवीं योजना तक चलता रहा फलस्वरूप सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं व विदेशी सरकारों से ऋण प्राप्त करती रहीं इस समय अधिकांश सार्वजनिक उपक्रम घाटे में चलते रहे तथा सरकार उन्हें सहायता प्रदान करती रही अतः सरकारी विदेशी ऋण जाल में फसती चली गयी। अब सरकार इस ऋण जाल से निकलने के लिए निजीकरण का सहारा ले रही हैं जिससे इन स्थापित उद्योगों का कुशलतापूर्वक संचालन संभव हो सकेगा तथा सरकार को और अधिक ऋण नहीं लेना पड़ेगा।

3. विदेशी कंपनियों की उपस्थितिः– जहाँ एक ओर विकसित पूँजीवादी देशों में आर्थिक मंदी के फलस्वरूप अति उत्पादन तथा बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा हैं, वहीं दूसरी ओर भारत के विदेशी उत्पादनों के उपयोग पर बढ़ते हुये प्रभाव को देखते हुये भारत के विस्तृत बाजार तथा कम प्रतियोगिता को देखते हुये भारत की ओर आकर्षित हुये। फलस्वरूप भारत में निजीकरण को प्रोत्साहन मिला।

4. भारतीय उद्योगों को प्रतियोगी ब....:– भारतीय उद्योगों को सरकार ने पिछले 45 वर्षों से संरक्षण में रखा जिससे इन उद्यमों में नो लागत कम करने का प्रयास किया और न ही अपनी वस्तु की किस्म में सुधार किया अतः स्पष्ट है कि यदि हमें अपने उत्पादनों को निर्यातोन्मुखी

बनाना है तो भारतीय उद्योगों की गुणवत्ता कीमत की दृष्टि से प्रतियोगी बनाना होगा और यह निजीकरण द्वारा ही संभव हो सकता है।

5. उत्पादन बढ़ाने का विस्तृत आधारः– भारत में जहाँ एक ओर विस्तृत बाजार उपलब्ध हैं वहीं दूसरी ओर उसकी औद्योगिक अद्यः संरचना पर्याप्त रूप से विकसित हो चुकी हैं। भारत में सस्ता श्रम तकनीकी एवं प्रबंधकीय कुशलता तथा आवश्यक कच्चा माल प्रचुरता से उपलब्ध हैं। अतः निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने पर उत्पादक कम कीमत पर अच्छे किस्म की वस्तु का उत्पादन करने में समक्ष होगे जिससे न केवल घरेलु बाजार की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता हैं बल्कि विदेशी बाजारों में भी अपनी वस्तु को बेचने में सक्षम हो सकते हैं।

विश्वव्यापीकरण ;ळसवसिपेंजपवदद्धः– विश्वव्यापीकरण से अर्थ व्यापार का विस्तार विश्व के अधिकांश देशों में होने से हैं। यह विश्वव्यापीकरण बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा किया जाता हैं। "एक बहुराष्ट्रीय निगम वह हैं जो अनेक देशों में कार्य करता हैं, उन देशों में अनुसंधान, विकास व निर्माण का कार्य करता है जिनका बहुराष्ट्रीय प्रबंध होता हैं व एकध स्वामित्व बहुराष्ट्रीय होता हैं। बहुराष्ट्रीय निगम एक उद्यम होता हैं जिसकी क्रियाएँ अपेन देश से बाहर अनेक देशों तक फैली रहती हैं।"

आर्थिक उदारीकरण के अंतर्गत सरकार विश्वव्यापीकरण को भी महत्व दे रही हैं ताकि अन्य देशों के साथ अर्थव्यवस्था को बेहतर रूप से एकीकृत किया जा सके।

(अ) आयात और निर्यात की निषेध सूचियों में कांट–छांत भारत में ज्योंहि विदेशी मुद्रा की स्थिति में सुधार होता है और अर्थव्यवस्था अधिक लचीली होती हैं। हमारा उद्ददेश आयात की निषेध सूची से अधिकांश कच्चे मालों को हटाने का हैं। सुधार के बाद के चरणों में निर्मित वस्तुओं को भी निषेध सूची से निकाल देने का उद्देश्य हैं। आठवीं योजना के अंत तक आयात की निषेध सूची में केवल वही वस्तुएँ होगी जिन पर पर्यावरण और सुरक्षा जैसे कारणों से प्रतिबंध लगाया गया हों।

(ब) टैरिफ दरों के स्तर व विस्तार दोनों में धीरे–धीरे कटौती करनाः–

खण्ड–4

इकाई 2

अधिगम का स्वरूप एवं कक्षाषिक्षण के निहितार्थ

संरचना

2.1 परिचय

2.2 उद्देष्य

2.3 अधिगम का व्यवहारवादी दृष्टिकोण

2.3.1 थार्नडाइक के सिध्दांत

2.3.2 पावलव के सिध्दांत

2.3.3 स्कीनर के सिध्दांत

2.3.4 षिक्षण अधिगम में इनका क्रियान्वयन

2.4 अधिगम का संज्ञानाज्मक दृष्टिकोण

2.4.1 पियाजे का सिध्दांत

2.4.2 षिक्षण अधिगम में इनका क्रियान्वयन

2.5 सामाजिक संज्ञानात्मक दृष्टिकोण

2.5.1 वाइगोत्की के सिध्दांत

2.5.2 षिक्षण अधिगम में इनका क्रियान्वयन

2.1 परिचय (प्जतवकनबजपवद):–

बीसवीं षताब्दी के आरंभ में मनोविज्ञान को व्यवहारवाद के विज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। वाटसन, वुडवर्थ, स्किनर आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को एक व्यवहार का निष्चित रूप माना हैं। मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान हैं। जो न केवल मानव बल्कि पषुओं के व्यवहार का भी अध्ययन करता हैं। इस अध्ययन के अंतर्गत व्यवहार उन समस्त निर्धारको को षामिल किया है।

व्यक्ति के मानसिक, षारीरिक एवं संवेगात्मक पक्ष से प्रभावित होते हैं। मनोविज्ञान का उद्देष्य ही मनुष्य या प्राणियों के व्यवहारों के कारणों की खोज करना प्राणी के स्वभाव का सुनियोजित रूप से अध्ययन करना है।

2.2 उद्देश्य (ब्वरमबजपअम):–

2.3 अधिगम के व्यवहारवादी दृष्टिकोण

व्यवहारवाद की स्थापना वाटसन द्वारा 1913 में की गई व्यवहारवादियो ने बालक के सीखने पर बल दिया है तथा मानव व्यवहार को समझने के साधन के रूप में पशओुं के व्यवहार का अध्ययन किया है वाटसन के अनुसार मनोविज्ञान वस्तुनिष्ठ तथा प्रयोगात्मक मनोविज्ञान है जिसकी विषय वस्तु सिर्फ व्यवहार को माना है चेतना को नहीं क्योंकि सिर्फ व्यवहार का ही अध्ययन वस्तुनिष्ठ एवं प्रयोगात्मक ढंग से किया जा सकता है मनोवैज्ञानिक घटना को एक से शुरुआत समझाते हैं उद्दीपन अनुक्रिया मनोविज्ञान को जन्म दिया उद्दीपक से वाटसन का तात्पर्य

वातावरण में उपस्थित वस्तुओं से था व्यक्ति के या मांसपेशियों में हुए परिवर्तन से था उनके अनुसार उद्दीपक साधारण भी हो सकता है तथा से तात्पर्य पशु की क्रिया व्यवहार वादियों के अनुसार मानव व्यवहार की धारणाएं मूल प्रवृत्तियों की शक्तियाँ हैं उसी प्रकार व्यवहार वादियो ने वातावरण को उसकी शक्तियों से अधिक महत्वपूर्ण माना है वातावरण में रहता है वह उसी वातावरण के अनुसार व्यवहार करना सीख जाता है विज्ञान के विभिन्न पहलुओं को प्राणियों में अध्ययन किया फिर इसका प्रभाव उन्होंने मानव व्यवहार को देखने में किया किसी वातावरण का मनुष्य के व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है और वह स्वयं को बनाए रखने के लिए वह इस वातावरण से समायोजित करता है।किसी बालक का व्यवहार इस प्रकार विकास के लिए अधिगम परिस्थितियां और वातावरण उपलब्ध कराने की आवश्यकता को महत्व देते हुए व्यवहारवाद का बहुत अधिक योगदान है व्यवहारवाद मैं सुधारने की तकनीकों तथा व्यवहार में परिवर्तन करने वाले कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देकर व्यवहारवादियो ने इस क्षेत्र में नए युग का प्रारंभ किया।

2.4 परिभाषायेंः—

वाटसनः— मनोविज्ञान व्यवहार का एक निष्चित विज्ञान हैं।

वुडवर्थः— मनोविज्ञान वातावरण के सम्बन्ध में व्यक्ति के क्रियाकलापों का वैज्ञानिक अध्ययन है।

स्किनरः— मनोविज्ञान व्यवहार और अनुभव का विज्ञान हैं।

कॉलसनिकः— मनोविज्ञान मानव व्यवहार का विज्ञान है।

2.5 अधिगम के नियम व सिध्दांत

बालक अपने जीवन में क्यों, कैसे एवं क्या सीखे यह समस्या रहती हैं। वह परिस्थितियों के अनुसार यह निर्धारित करता हैं। अधिगम सिध्दांतो में विभिन्न परिस्थितियों को निर्मित करके अधिगम किया जाता है। अधिगम निरंतर चलने वाली प्रकिया है। व्यवहार में होने वाला स्थायी परिवर्तन अधिगम का परिणाम है।

अधिगम या सीखने के सिद्धांत और उनके ऐतिहासिक विकास के अध्ययन के माध्यम से शिक्षकों को वर्तमान शैक्षिक सिद्धांतों प्रचलित एकरूपता एवं परस्पर विरोध का परिज्ञान हो सकता है

बीगे व हंट

2.5.1 थार्नडाइक के नियम :–कई वर्षो से अमेरिका के मनोवैज्ञानिक, पषुओं पर परिक्षण करके अधिगम के नियमो की खोज में लगे हुए है। अधिगम के नियमो की सबसे अधिक मान्यता थार्नडाइक के नियमों को दी जाती है। उन्होने अधिगम को कुछ नियमों के आधार पर अधिगम की व्याख्या की है।

1 तत्परता या तैयारी का नियम

2 अभ्यास का नियम

3 प्रभाव का नियम

1 तत्परता या तैयारी का नियम(सूं वि त्मंकपदमे) **:–**अधिगम के इस नियम का अभिप्राय है।कि जब अधिगमकर्ता अधिगम के लिये तत्पर या तैयार होता है। तभी अधिगम सुचारू रूप से संभव हो पाता है। अधिगम के लिए बालक को तैयार करना पडता है, तभी उसे कार्य करने में भीआनंद आता है। वह उस कार्य को जल्दी सीख लेता है। जिस कार्य को करने के लिए उस पर दवाब बनाया जाता है।तो वह उसे षीघ्रता से नहीं सीखता है।

यदि बालक गणित के प्रश्न हल करना चाहता है तो वह उनको करता है अन्यथा नहीं इतना ही नहीं तत्परता के कारण है उनको अधिक शीघ्रता और कुशलता से करता है तत्परता उनके ध्यान को कार्य पर केंद्रित करने में सहायता देती हैं जिसके फलस्वरूप उसे संपन्न करने में सफल होता है

भाटिया के अनुसार तत्परता या किसी कार्य के लिए तैयार होना युद्ध को आधा विजय कर लेना है तत्परता के नियम के अनुसार शिक्षक सीखने की परिस्थितियां तैयार करता है । इन परिस्थितियों से बालक एकाकार हो जाता है तो वह सीखने के लिए तत्पर हो जाता है।

2. अभ्यास का नियम (सूं वि ग्मामतबपेम) :—इस नियम के अनुसार किसी क्रिया को बार—बार करने या दोहराने से वह याद हो जाती है और छोड़ देने पर या ना दोहराने पर उसे भूल सकते हैं इस प्रकार यह नियम प्रयोग करने तथा प्रयोग न करने पर आधारित है उदाहरण के लिए कविता व पहाड़े याद करने के लिए उन्हें बार—बार दोहराना पड़ता है तथा अभ्यास के साथ साथ उपयोग में भी लाना पड़ता है ऐसा ना करने पर सीखा हुआ कार्य बालक भूलने लगते है ।

अभ्यास के नियम के अंतर्गत दो उप नियम आते हैः—

- **उपयोग का नियम** (सूं वि न्मे):—
- **अनुप्रयोग का नियम**(सूं वि क्पेनेम):—
- **उपयोग का नियम** (सूं वि न्मे):—जिस कार्य को अभ्यास के द्वारा बार बार किया जाता है वह बहुत ही सरलता से सीख लिया जाता है जैसे साइकिल चलाना सीखने के लिए बालक को अनेक बार प्रयास करना पड़ता है वह गिरता भी है उसे चोट भी लगती है परंतु अंत में अभ्यास के द्वारा वह बिना गिरे साइकिल चलाने लगता है अतः "जब एक परिवर्तनीय संयोग एक स्थिति और अनुक्रिया के बीच बनती है तो अन्य बातें समान रहने पर वह सहयोग दृढ़ हो जाता है''द्य
- **अनुप्रयोग का नियम** (सूं वि क्पेनेम):—यह नियम उपयोग के नियम के ठीक विपरीत है यदि सीखे हुए कार्य का अभ्यास या उपयोग नहीं किया जाता है, तो व्यक्ति उसे भूल जाता है जैसे गाने और बजाने का अभ्यास, टाइप करने का अभ्यास छोड़ देने पर वह व्यक्ति उतना अच्छा गा नहीं सकता ,गणित का नित्य अभ्यास करने पर ही उसे सफलता मिलती हैं संक्षेप में जिस कार्य को बहुत समय तक किया या दोहराया नहीं जाता वह याद नहीं रहता इसे अनुप्रयोग का नियम कहते हैं।

2. प्रभाव का नियम (सूं वि मिमिबज) :—इस नियम के अनुसार कोई भी प्राणी किसी कार्य अनुक्रिया को उसके प्रभाव के आधार पर सीखता है इसे संतोष या असंतोष का नियम भी कहते

हैं जिस कार्य को करने के बाद हमें अच्छा लगता है उसे हम बार–बार करना चाहते हैं तथा जिस कार्य को करने में कष्ट मिलता है और दुखद फल प्राप्त होता है उसे हम दोहराना नहीं चाहते, इस प्रकार व्यक्ति उसी कार्य को सीखता है जिसमें उसे लाभ मिलता है तथा संतोष प्राप्त होता है किंतु जिस कार्य को करने के लिए दंड मिलता है उसे वह नहीं करना चाहता अतः उसे वह नहीं सीखता है।

इन नियमों के अतिरिक्त कुछ अन्य नियम भी हैं जो इस प्रकार हैं:–

1. **बहु प्रतिक्रिया का नियमः–**इस नियम का अभिप्राय है कि जब कोई नया कार्य हम सीखते हैं तब हम उसके प्रति अनेक और विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं करते हैं दूसरे शब्दों में हम विविध प्रकार के उपायों और विधियों का प्रयोग करके उस कार्य में सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं कुछ समय तक प्रयत्न करने के बाद हमें उस कार्य को करने की ठीक विधि या उपाय मालूम हो जाता है प्रयत्न और भूल द्वारा सीखने का सिद्धांत इसी नियम पर आधारित है।
2. **मनोवृति का नियम** :– इस नियम का तात्पर्य है कि जिस कार्य के प्रति हमारी जैसी अभिवृत्ति या मनोवृत्ति होती है उसी अनुपात में हम उसको सीखते हैं यदि हम मानसिक रूप से किसी कार्य को करने के लिए तैयार नहीं है तो या तो हम उसे करने में असफल होते हैं या अनेक त्रुटियां करते हैं या बहुत विलंब से करते हैं यही कारण है कि शिक्षक प्रेरणा देकर बालकों को नवीन ज्ञान को ग्रहण करने के लिए मानसिक रूप से तैयार करते हैं ।
3. **आंशिक क्रिया का नियमः**– इस नियम का अनुसरण करके हम जिस कार्य को करना चाहते हैं उसे छोटे–छोटे अंगों या भागों में विभाजित कर लेते हैं इस प्रकार का विभाजन कार्य को सरल और सुविधाजनक बना देता है हम उन छोटे–छोटे अंगों को शीघ्रता और सुगमता से करके संपूर्ण कार्य को पूरा करते हैं इस नियम पर अंश से पूर्ण की ओर का शिक्षण का सिद्धांत आधारित किया जाता है शिक्षकअपनी संपूर्ण विषय सामग्री को छोटे–छोटे खंडों में विभाजित करके छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

4. **संबंधित परिवर्तन का नियम** नियम पहले की गई क्रिया को उसी के समान दूसरी परिस्थिति में उसी प्रकार करना जिसमें क्रिया का स्वरूप तो वही रहता है पर परिस्थिति में परिवर्तन हो जाता है ।
5. **आत्मीकरण का नियमः**—इस नियम का अभिप्राय यह है, कि हम जो भी नया ज्ञान प्राप्त करते है, उसका आत्मीकरण कर लेते है। या उसे आत्मसातार लेते है।

   हम नवीन ज्ञान को अपने पूर्वज्ञान का स्थायी अंग बना लेते है। यही कारण कि षिक्षक, बालक को कोई नई बात सिखाता है, तब उसका पहले सीखी हुई बात से सम्बन्ध स्थपित कर देता।

2.5.2 थार्नडाइक का अधिगम सिध्दांतः—इस सिध्दांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक एडवर्ड एल. थार्नडाइक ने किया था। थार्नडाइक ने सीखने की व्याख्या व्यवहारवादी सिध्दांतों के अनुकूल की है उन्होने इसकी व्याख्या करते हुये कहा है कि जब कोई प्राणी या व्यक्ति किसी कार्य को करते है। या सीखता हैं तो उसके सामने एक विषेष परिस्थिति या उद्दीपन होता है जो उसे एक विषेष प्रकार की अनुक्रिया करने को बाध्य होती है। वह उसके प्रति कई अनुक्रियायें करता है। इनमें सही अनुक्रिया का सम्बन्ध उस विषेष उद्दीपन के साथ हो जाता है। इसी सम्बंध को ही अधिगम कहते है।

2.5.2.1 सिद्धांत की व्याख्याः— थार्नडाइक ने अपने सिद्धांत की व्याख्या करते हुए लिखा है,''सीखना संबंध स्थापित करना है संबंध स्थापित करने का कार्य मनुष्य का मस्तिष्क करता है''

सीखने की प्रक्रिया में शरीर और मानसिक क्रियाओं का विभिन्न मात्रा में संबंध होना आवश्यक है इस संबंध विशिष्ट उद्दीपक और विशिष्ठ प्रतिक्रियाएं के कारण स्नायु मंडल में स्थापित होता है इस संबंध की स्थापना सीखने की आधारभूत शर्त है यह संबंध अनेक प्रकार का हो सकता है

बिजी एवं हंट के अनुसार सीखने की प्रक्रिया में किसी मानसिक क्रिया का शारीरिक क्रिया से शारीरिक क्रिया का मानसिक क्रिया से मानसिक क्रिया का मानसिक क्रिया से या शारीरिक क्रिया का शारीरिक क्रिया से संबंध होना आवश्यक है।

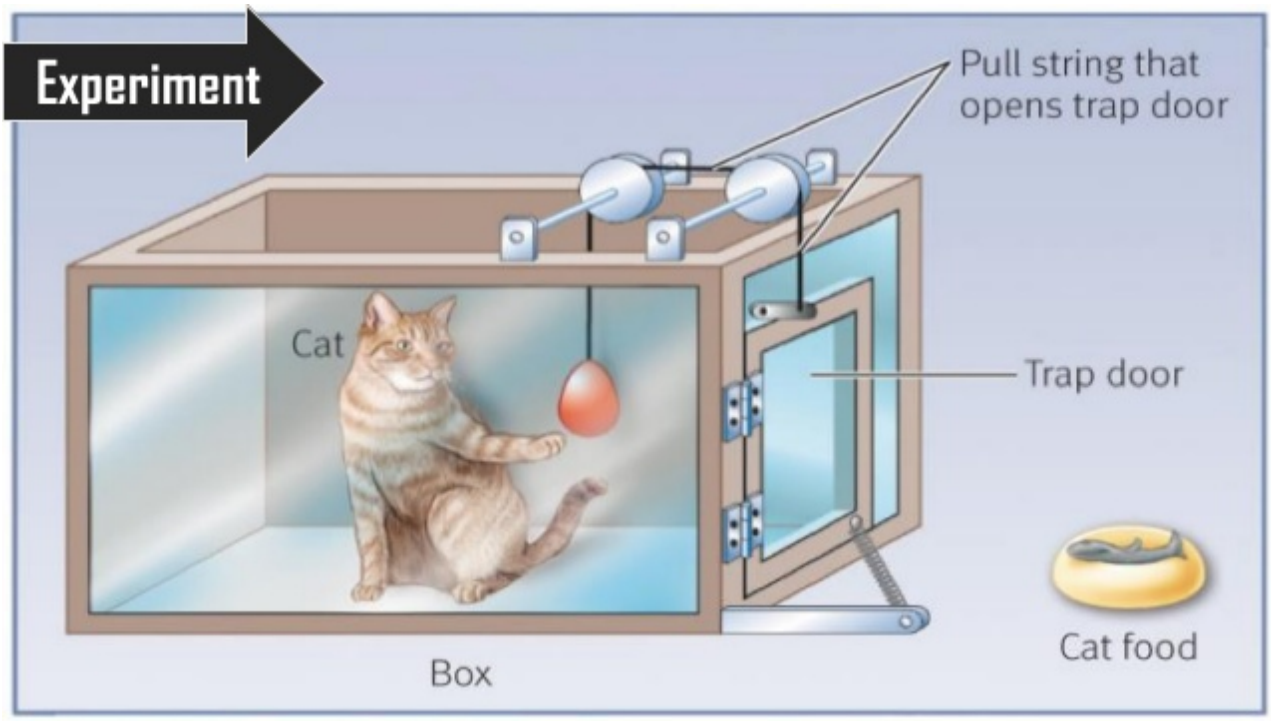

2.5.2.2 थार्नडाइक का प्रयोग :—सीखने के सिद्धांत की परीक्षा करने के लिए अनेक पशुओं और बिल्लियों पर प्रयोग किए उसने अपने एक प्रयोग में एक भूखी बिल्ली को पिंजरे में बंद कर दिया पिंजरे का दरवाजा एक खटके के दबने से खुलता है उसके बाहर भोजन रखदिया बिल्ली के लिए भोजन उद्दीपक था उददीपक के कारण उसमें प्रतिक्रिया आरंभ हुई, उसने अनेक प्रकार से बाहर निकलने का प्रयत्न किया लेकिन संयोग से उसका पंजा खटके पर लग गया दब गया और दरवाजा खुल गया थार्नडाइक ने इस प्रयोग को अनेक बार किया अंत में एक समय ऐसा गया जब बिल्ली बिना किसी गलती के खटके को दबाकर पिंजरे का दरवाजा खोलने लगे इस प्रकार उद्दीपक और प्रतिक्रिया में संबंध स्थापित हो गया था इसमें संबंधवाद के सिद्धांत में सीखने के क्षेत्र में प्रयास तथा तृतीय को विशेष महत्व दिया इस प्रकार प्रयास एवं त्रुटि के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि जब हम किसी काम को करने में त्रुटियां भूल करते हैं और बार—बार प्रयास करके त्रुटियों की संख्या कम हो जाती है तो यह स्थिति प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखना कहलाती है।

2.5.3 कक्षाषिक्षण के निहितार्थः—

1. बड़े तथा मंदबुद्धि बालकों के लिए यह सिद्धांत अत्यंत उपयोगी है।
2. इस सिद्धांत से बालकों में धैर्य तथा परिश्रम के गुणों का विकास होता है।
3. बालकों में परिश्रम के प्रति आशा का संचार करता है
4. अनुभवों का लाभ उठाने की क्षमता का विकास होता है।
5. शिक्षण कार्य प्रारंभ करने से पूर्व शिक्षक को अधिगमकर्ता की रुचि एवं अभी क्षमता की जानकारी कर लेनी चाहिए, जिससे यह पता चल सके कि अधिगमकर्ता में नए ज्ञान को ग्रहण करने के लिए तत्पर है या नहीं।
6. शिक्षक को अधिगमकर्ता की तत्परता के अनुरूप शिक्षण करना चाहिए।
7. अधिगमकर्ता की रुचि के विषय वस्तु पर अधिक बल देना चाहिए जिससे बालक को संतोष मिले और वह विषय वस्तु का भली–भांति समझ सके।
8. शिक्षक को बालक के समक्ष ऐसी अधिगम परिस्थिति का निर्माण करना चाहिए, जिससे उसे सफलता प्राप्त हो सके और संतोष व सुख की अनुभूति हो।
   बालक को जिस कार्य के लिए प्रशंसा मिलती है उसे वे शीघ्र सीख जाते हैं।
9. शिक्षक को कक्षा में छात्रों को ना तो दंड देना चाहिए और ना ही उन्हें डराना धमकाना चाहिए।
10. शिक्षकों कक्षा का वातावरण मनोरम रोचक एवं प्रभावपूर्ण बनाना चाहिए, ताकि अच्छे वातावरण से छात्र कुछ सीख सकें ।
11. यह सिद्धांत अभ्यास द्वारा सीखने पर बल देता है अभ्यास के द्वारा सीखा गया ज्ञान स्थाई एवं तरह होता है अतः कक्षा शिक्षण में भी अभ्यास पर बल दिया जाना चाहिए।
12. यह सिद्धांत छोटे बच्चों के लिए विशेष उपयोगी है ।
13. यह सिद्धांत गंभीर विषय गणित विज्ञान प्रदर्शन आदि के अध्ययन विशेष उपयोगी है, समस्या समाधान के क्षेत्र में इस नियम का प्रयोग किया जा सकता ।

2.6.1 पॉवलव का सिध्दांतः–

आईपी पावलव एक रूसी शिक्षा शास्त्री थे उन्होंने विभिन्न प्रकार के अधिगमको मनोविज्ञान के साथ जोड़ा और पशुओं पर प्रयोग करके यह पता लगाने का प्रयास किया की अधिगम कैसे होता हैपावलव ने अपने सिद्धांत मैं यह स्पष्ट किया जब किसी तटस्थ उद्दीपन को

किसी स्वभाविक उद्दीपन के साथ किसी प्राणी के समक्ष बार–बार प्रस्तुत किया जाता है तो तटस्थ उद्दीपन के प्रति प्राणी वैसे ही अनुप्रिया करना सीख लेता है जैसा स्वाभाविक उद्दीपन के प्रति करता है यही अनुबंधित अनुक्रिया सिद्धांत है इस प्रकार पावलव में अपने सीखने का आधार अनुबंध को माना है अनुबंधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उद्दीपन तथा अनुक्रिया के बीच एक साहचर्य स्थापित होता है

2.6.1.1 सिद्धांत का व्याख्या :– सिद्धांत का अर्थ मानव तथा दूसरे प्राणियों में मूल रूप से प्रतिक्रिया तथा प्रवृत्तियां होती है जो उपयुक्त उत्तेजकों द्वारा गतिशील हो जाती है इससे प्राणी वातावरण में किसी उत्तेजक की उपस्थिति में अनुक्रिया अवश्य करते हैं आंतरिक या बाहयप्रेरणा के फलस्वरूप उत्तेजक और अनुक्रिया में संबंध हो जाता है इसी को अधिगम कहते हैं

2.6.1.2 पावलव का प्रयोग– पावलव ने अपना प्रयोग एक प्रयोगशाला में कुत्ते पर किया इसमें मानने वाले विशेष रूप सजा भारवादी हैं उनका कहना है कि सीखना एक प्रकार से उद्दीपक को प्रतिक्रिया का संबंध है इस विचार को सत्य सत्य करने के लिए रूसी मनोवैज्ञानिक पावलव ने

कुत्ते पर एक प्रयोग किया उसने कुत्ते को भोजन देने से पहले कुछ दिनों तक घंटी बजाई उसके बाद उसने भोजन ना देकर केवल घंटी बजाई तब भी कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगे इसका कारण यह था कि कुत्ते ने घंटी बजने से यह सीख लिया था कि उसे भोजन मिलने वाला है घंटी के प्रति कुत्ते की इस प्रतिक्रिया को पाउडर ने सहज क्रिया की संज्ञा दी कुत्ते के समान बालक और व्यक्ति भी संबंध सहज क्रिया द्वारा सीखते हैं।

2.6.2 कक्षाषिक्षण के निहितार्थः–

1. इस सिध्दांत के प्रयोग से छात्रों में अच्छी अध्ययन आदतों का निर्माण किया जा सकता है।
2. इस सिध्दांत के अनुसार षिक्षण कार्य कराने में क्रियाषीलता को महत्व दिया जाता है जिससे अधिगम प्रक्रिया सुगम हो जाती है।
3. यह सिध्दांत अच्छी आदतों के निर्माण में तथा बुरी आदतों, आचरण व व्यवहार को बदलने में सहायक होता है।
4. उस सिध्दांत की सहायता से उन विषयों को आसानी से सिखाया जा सकता है जिसमें सोचने–समझने की क्रिया नहीं होती हैं।
5. मानसिक रूप से अस्वस्थ बालकों एवं संवेगात्मक रूप से अस्थिर बालकों का इलाज इस अनुबन्धन प्रक्रियासे आसानी से किया जा सकता है।
6. बालको का कक्षा के अन्दर व स्कूल से बाहर के वातावरण में समायोजन करने में भी यह सिध्दांत षिक्षकों के लिए उपयोग हो सकता है।

2.7.1 सक्रिय अनुबंधन का सिद्धांत :–

बीएफ स्किनर एक प्रसिद्ध अमेरिकन मनोवैज्ञानिक थे, उन्होंने इस सिद्धांत की स्थापना पहले के सीखने के विभिन्न सिद्धांतों प्रतिक्रिया स्वरूप में की थार्नडाइक पावलव तथा वाटसन आदि के विचारो से सहमत नहीं थे उनका यह मानना था कि अनुक्रिया या व्यवहार के पीछे कोई ना कोई ज्ञात उद्दीपन अवश्य होता है अगर कोई उद्दीपन नहीं है तो अनुक्रिया भी नहीं

होगी इस मान्यता को लेकर उन्होने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया कि अनुक्रिया या किसी व्यवहार के घटित होने के लिए किसी ज्ञात उद्दीपन का होना आवश्यक नहीं है इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अनुक्रिया तथा व्यवहार के दो रूपों का उल्लेख किया एक को अनुप्रिया व्यवहार का नाम दिया और दूसरे को सक्रिय व्यवहार का नाम दिया।

2.7.1.1सक्रिय अनुबंधन का सिद्धांत :–बीएफ स्किनर के अनुसार सक्रिय अनुबंधन से अभिप्राय एक ऐसी अधिगम प्रक्रिया से है, जिसके द्वारा सक्रिय व्यवहार की सुनियोजित पुनर्बलन कार्यक्रमों के माध्यम से पर्याप्त बल मिल जाने के कारण वंचित रूप में शीघ्र शीघ्र पुनरावृत्ति होती रहती है और सीखने वाला अंत में जैसा व्यवहार सिखाने वाला बन जाता है सीखने में समर्थ हो जाता है अधिगम के इस प्रक्रिया में सीखने वाले को पहले कोई ना कोई क्रिया करनी पड़ती है सक्रिय अनुबंध से अभिप्राय सीखने की प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सीखने वाले के सक्रिय व्यवहार का अनुबंध किया जाता है।

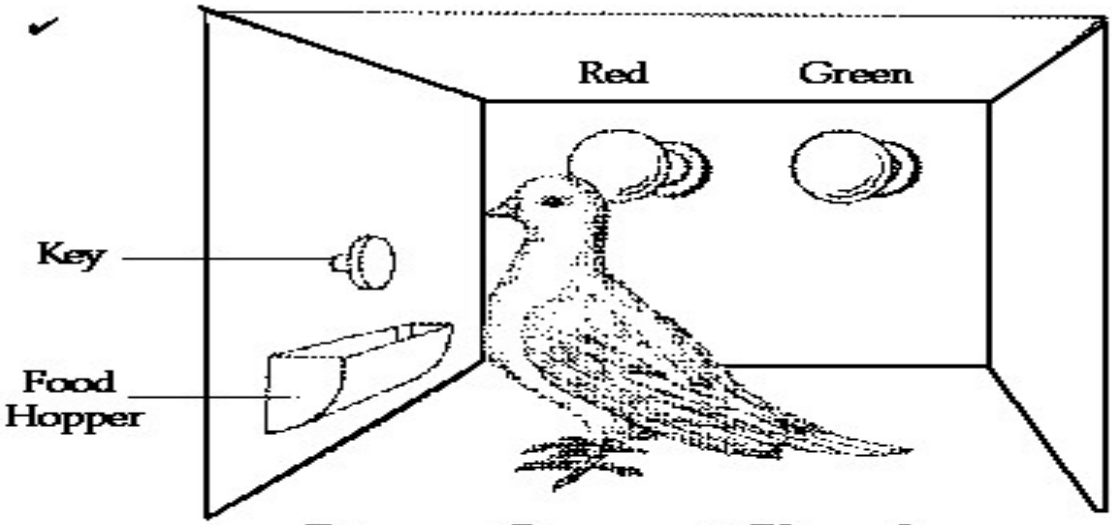

Pigeon Operant Chamber

2.7.1.2 स्किनर का प्रयोग:–स्किनर ने अपने प्रयोग में कबूतर के अधिगम व्यवहार का अध्ययन किया उन्होने यह निश्चित किया कि एक कबूतर को दाहिनी ओर पूरा चक्कर लगाकर घूमना या नाचना सिखाया जाए, इसके लिए एक भूखे कबूतर को एक विशेष पिंजरे में बंद कर दिया गया। कबूतर ने जैसे ही अपनी गर्दन दाहिनी ओर घूमाया उसे स्वचालित उपकरण के

माध्यम से एक अनाज का दाना खाने के लिए प्राप्त हो गया इसके पश्चात जैसे ही उसने दाहिनी ओर अपना शरीर घुमाया उसे दो दाने खाने को मिल गए जैसे जैसे वह दाहिनी ओर घूमता चला गया उसे दानों के रूप में सामग्री मिलती चली गई यह ध्यान रखा गया कि जब उसकी गति दाहिनी और ही हो तथा इसी दिशा में घूमती जाए तभी उसे अनाज का दाना मिले और किसी प्रकार की गतिविधि करने पर कुछ भी नहीं ।इस प्रकार यह पाया गया कि कबूतर ने पहले ही यूं ही जो अपना व्यवहार दाहिनी ओर अपनी गर्दन घुमाकर या दाएं घूमने के द्वारा प्रदर्शित किया था वह उसका सक्रिय व्यवहार का धीरे धीरे अनुकूलन हुआ और परिणाम स्वरूपवांछित व्यवहार को सीखने में सफल हो गया।

2.7.2 कक्षाषिक्षण के निहितार्थः–

1. यह सिद्धांत बालकों की क्रियाशीलता पर बल देता है तथा बालकों को स्वाभाविक अनु क्रियाओं के माध्यम से सीखने की प्रेरणा देता है ताकि वे अनुक्रियाओं के द्वारा अधिगम कर सकें।
2. इस सिद्धांत का प्रयोग बालकों के शब्द भंडार में वृद्धि के लिए किया जा सकता है।
3. इस सिद्धांत के अनुसार जटिल व्यवहार वाले तथा मानसिक रोगियों को वांछित व्यवहार हेतु प्रेरित किया जा सकता है।
4. इस सिद्धांत के अनुसार निदानात्मक शिक्षण संभव है।
5. इस सिद्धांत के अनुसार विभिन्न प्रयोगों से अभिक्रमित अधिगम को गति प्रदान की जा सकती है।

2.8.1 पियाजे का संज्ञान–विकास सिद्धांतः–

संज्ञान विकासात्मक सिद्धांत स्विट्जरलैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जीन पियाजे ;श्रमंदे च्यंहमजद्ध द्वारा विकसित किया गया है। पियाजे ने इस सिद्धांत में बालक के अंदर होने वाली संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के विकास की व्याख्या की हैं। मूल रूप से पियाजे ज्ञान शास्त्र ;म्चपेजमउवसवहलद्ध में रूचि रखते हैं। वे बालक द्वारा अर्जित ज्ञान के स्वरूप को समझने का सबसे अच्छा उपाय उसके विकास का अध्ययन करना है। अतः उन्होंने अपने ही बच्चों के संज्ञान–विकास का अध्ययन प्रारंभ कर दिया।

2.8.1.1 पियाजे के सिद्धांत की अवधारणाएँः–

पियाजे ने बतलाया है कि संज्ञान व्यक्ति को अपने वातावरण के साथ समायोजित होने के लिये एक आवश्यक तत्व है। जन्म के समय बच्चों के भीतर केवल एक नैसर्गिक क्षमता विद्यमान होती है। आयु और परिपक्वता में वृद्धि होते रहने के कारण उसके भीतर संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विकास होता रहता है। संज्ञानात्मक विकास चार प्रमुख अवस्थाओं से होकर गुजरता हैं। प्रत्येक अवस्था में ज्ञान का एक नया भंडार निर्मित होता है जो पिछली अवस्था में पाये जाने वाले ज्ञान भण्डार से गुणात्मक दृष्टि से भिन्न होता हैं। इस प्रकार प्रत्येक अवस्था में बालक न केवल अधिक ज्ञान अर्जित करता हैं बल्कि उसके ज्ञान में संशोधन एवं परिमार्जन भी होता है। सभी विकसित होने वाले बालक संज्ञान–विकास की इन चारों अवस्थाओं से गुजरते हैं। पियाजे की इस अवधारणा के आधार पर ही उनके सिद्धांत को अवस्था सिद्धांत माना जाता हैं। पियाजे के संज्ञान–विकासात्मक सिद्धांत का आधार जीव –वैज्ञानिक भाषा जाता है। उन्होंने संज्ञान या बुद्धि को पाचन क्रिया, श्वास क्रिया एवं रक्त संचार क्रिया की भांति एक जैविक क्रिया माना है। संज्ञान मानव प्राणी को अपने सामाजिक भौतिक वातावरण के साथ समायोजित होने में सहायक होता है और इसलिये संज्ञान जीवन के लिये उतना ही महत्वपूर्ण हैं जितनी अन्य जैविक क्रियाएँ। प्राणी के सम्पूर्ण विकास काल में संगठन और अनुकूलन की क्रियाएँ चलती रहती हैं।

पियाजे विशेष रूप से संज्ञान – विकास में उत्पन्न होने वाले गुणात्मक परिवर्तनों में अधिक रूचि रखते हैं। उनके द्वारा सम्पन्न अध्ययन अत्यंत सरल ढंग से अध्ययन है।

पियाजे द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त मानव बुद्धि की प्रकृति एवं उसके विकास से सम्बन्धित एक विशद सिद्धान्त है। प्याज़े का मानना था कि व्यक्ति के विकास में उसका बचपन एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पियाजे का सिद्धान्त, विकासी अवस्था सिद्धान्त कहलाता है। यह सिद्धान्त बतलाता है कि मानव कैसे ज्ञान क्रमशः इसका अर्जन करता है, कैसे इसे एक–एक कर जोड़ता है और कैसे इसका उपयोग करता है।

बालक वातावरण के तत्वों का प्रत्यक्षीकरण करता है; अर्थात् पहचानता है, प्रतीकों की सहायता से उन्हें समझने की कोशिश करता है तथा संबंधित वस्तु/व्यक्ति के संदर्भ में अमूर्त चिन्तन करता है। उक्त सभी प्रक्रियाओं से मिलकर उसके भीतर एक ज्ञान भण्डार या

संज्ञानात्मक संरचना उसके व्यवहार को निर्देशित करती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कोई भी व्यक्ति वातावरण में उपस्थित किसी भी प्रकार के उद्दीपकों (स्टिमुलैंट्स) से प्रभावित होकर सीधे प्रतिक्रिया नहीं करता है, पहले वह उन उद्दीपकों को पहचानता है, ग्रहण करता है, उसकी व्याख्या करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संज्ञात्माक संरचना वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों और व्यवहार के बीच मध्यस्थता का कार्य करता हैं।

प्याजे ने व्यापक स्तर पर संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया। पियाजे के अनुसार, बालक द्वारा अर्जित ज्ञान के भण्डार का स्वरूप विकास की प्रत्येक अवस्था में बदलता हैं और परिमार्जित होता रहता है। पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त को विकासात्मक सिद्धान्त भी कहा जाता है। चूंकि उसके अनुसार, बालक के भीतर संज्ञान का विकास अनेक अवस्थाओ से होकर गुजरता है, इसलिये इसे अवस्था सिद्धान्त भी कहा जाता है।

संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ

ज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया एवं संरचना

प्याजे ने संज्ञानात्मक विकास को चार अवस्थाओं में विभाजित किया है–

(१) संवेदिक पेशीय अवस्था (ैमदेवतल डवजवत) रू जन्म के 2 वर्ष

(२) पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था (च्तम–वचमतंजपवदंस) रू 2–7 वर्ष

(३) मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (ब्वदबतमजम व्चमतंजपवदंस) रू 7 से 11वर्ष

(४) अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (थ्वतउंस व्चमतंजपवदंस) रू 11से 18वर्ष

संवेदी पेशीय अवस्था

इस अवस्था में बालक केवल अपनी संवेदनाओं और शारिरीक क्रियाओं की सहायता से ज्ञान अर्जित करता है। बच्चा जब जन्म लेता है तो उसके भीतर सहज क्रियाएँ होती हैं। इन सहज क्रियाओं और ज्ञानन्द्रियों की सहायता से बच्चा वस्तुओं ध्वनिओं, स्पर्श, रसो एवं गंधों का अनुभव

प्राप्त करता है और इन अनुभवों की पुनरावृत्ति के कारण वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों की कुछ विशेषताओं से परिचित होता है।

उन्होने इस अवस्था को छः उपवस्था मे बाटा है –

1– सहज क्रियाओ की अवस्था (जन्म से 30 दिन तक)

2– प्रमुख वृत्तीय अनुक्रियाओ की अवस्था (1 माह से 4 माह)

3– गौण वृत्तीय अनुक्रियाओ की अवस्था (4 माह से 8 माह)

4– गौण स्किमेटा की समन्वय की अवस्था (8 माह से 12 माह)

5– तृतीय वृत्तीय अनुक्रियाओ की अवस्था (12 माह से 18 माह)

6– मानसिक सहयोग द्वारा नये साधनों की खोज की अवस्था (18 माह से 24 माह)

पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था

इस अवस्था में बालक स्वकेन्द्रित व स्वार्थी न होकर दूसरों के सम्पर्क से ज्ञान अर्जित करता है। अब वह खेल, अनुकरण, चित्र निर्माण तथा भाषा के माध्यम से वस्तुओं के संबंध में अपनी जानकारी अधिकाधिक बढ़ाता है। धीरे–धीरे वह प्रतीकों को ग्रहण करता है किन्तु किसी भी कार्य का क्या संबंध होता है तथा तार्किक चिन्तन के प्रति अनभिज्ञ रहते हैं। इस अवस्था में अनुक्रमणशीलता पायी जाती है। इस अवस्था मे बालक के अनुकरणो मे परिपक्वता आ जाती है

मूर्त संक्रियात्मक अवस्था

इस अवस्था में बालक विद्यालय जाना प्रांरभ कर लेता है एवं वस्तुओं एव घटनाओं के बीच समानता, भिन्नता समझने की क्षमता उत्पन हो जाती है इस अवस्था में बालकों में संख्या बोध, वर्गीकरण, क्रमानुसार व्यवस्था किसी भी वस्तु ,व्यक्ति के मध्य पारस्परिक संबंध का ज्ञान हो

जाता है। वह तर्क कर सकता है। संक्षेप में वह अपने चारों ओर के पर्यावरण के साथ अनुकूल करने के लिये अनेक नियम को सीख लेता है।

अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था

यह अवस्था 12 वर्ष के बाद की है इस अवस्था की विशेषता निम्न है –

तार्किक चिंतन की क्षमता का विकास।

समस्या समाधान की क्षमता का विकास।

वास्तविक–आवास्तविक में अन्तर समझने की क्षमता का विकास।

वास्तविक अनुभवों को काल्पनिक परिस्थितियों में ढालने की क्षमता का विकास।

परिकल्पना विकसित करने की क्षमता का विकास।

विसंगंतियाँ के संबंध में विचार करने की क्षमता का विकास।

ज्ञानात्मक क्रियाओ से विकास होता है। समीकरण, समझोता और संतुलन से सब साक्रिय क्रियायें है, जिनके द्वारा मस्तिष्क में परिवर्तन होते रहते है, जिनका आधार प्राप्त होने वाली जानकारी है । बालक सक्रिय होता है व केवल जानकारी देने से नही सीखता है। पियाजे ने बच्चों को वैज्ञानिक की तरह देखा है जो खोज विधि से सीखता है ।

बच्चे तब रूचि दिखाते है व सीखते है जब कोई नया अनुभव हो । अनुभव थोडा नया होना आवश्यक है ताकि बच्चा समीकरण व अनुकूलन कर सके । बच्चो की संज्ञानात्मक संसचनाएँ अलग होती है इसलिए जरूरी नही है कि सभी बच्चो को कोई अनुभव एक जितना ही रूचिपूर्ण लगे या फिर सभी उस अनुभव से समान रूप से सीख पाएँ । इसलिए सामूहिक निर्देश देना असंभव हैं। जरूरी है। कि बच्चे अपने द्वारा चुने गए कार्य पर व्यकितगत रूप से कार्य करें कक्षा में इसका प्रावधान व अन्य सामान का प्रावधान होना आवश्यक है। कक्षा का वातावरण बच्चे के घर के वातावरण से जुड़ा होना चाहिए । दोनो मे एक संबन्ध होना चाहिए ।

2.9 सामाजिक संज्ञानात्मक सिध्दांतः–

वाइगोव्स्की ने एक सामाजिक संज्ञानात्मक सिध्दांत प्रतिपादन किया।वाइगोव्स्की के दस सिध्दांत के अनुसार अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें कुछ उपयोगी अन्तःक्रिया साधनों जैसे भाषा तथा सामाजिक व्यवहार का प्रयोग करके दूसरों समूहों के साथ अंतःक्रिया करने अथवा अपने बड़ों या साथियों का इस दिषा में सहयोग प्राप्त करने में सफल रहा है।

वाइगोत्सकी का सामाजिक दृष्टिकोण संज्ञानात्मक विकास का प्रगतिशील विश्लेषण प्रस्तुत करता हैं। वस्तुतः वाइगोत्सकी ने बालक के संज्ञानात्मक विकास में समाज एवं उसके सांस्कृतिक संबंधों के बीच संवाद को एक महत्वपूर्ण घटक बताया । वाइगोत्स्की के अनुसार बच्चे ज्ञान का निर्माण करते हैं।

संज्ञानात्मक विकास एकाकी नहीं हो सकता, यह भाषा विकास, सामाजिक विकास, यहाँ तक कि शारीरिक विकास के साथ–साथ सामाजिक सांस्कृतिक के द्वारा होता हैं।

वाइगोत्सकी के अनुसार बच्चे के संज्ञानात्मक विकास को समझने के लिये एक विकासात्मक उपागम की आवश्यकता है वायगॉत्स्की ने अपने सिद्धांन्त में संज्ञान और सामाजिक वातावरण का सम्मिश्रण किया। बालक अपने से बड़ो के साथ से बहुत सी चीजों को सीखते हैं। उनके सानिध्य से उनके अनुभवों के द्वारा अपने ज्ञान का विस्तार करते हैं। बालक अपने से बड़े और ज्ञानी व्यक्तियों के संपर्क में आकर चिन्तन और व्यवहार के संस्कृति अनुरूप तरीके सीखते हैं। सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धान्त के कई प्रमुख तत्व हैं। प्रथम महत्वपूर्ण तत्व है व्यक्तिगत भाषा। इसमें बालक अपने व्यवहार को नियंत्रित और निर्देशित करने के लिए स्वयं से बातचीत करते हैं।

सामा–सांस्कृतिक सिद्धांत का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है– निकटतम विकास का क्षेत्र।

वायगास्की ने शिक्षक के रूप में अनुभव के दौरान यह जाना है कि बालक अपने वास्तविक विकास स्तर से आगे जाकर समस्याओं का समाधान कर सकते है यदि उन्हें थोड़ा निर्देश मिल जाए। इस स्तर को वायगास्की विकास स्तर और सम्भावित विकास स्तर के बीच के अंतर। क्षेत्र को वायगास्की ने निकटतम विकास का क्षेत्र कहा है ।

संभावित विकास के क्षेत्र ख्वदम वच्तिवगपउंस क्मअमसवचउमदजंच्व,

वाइगोत्सकी सिध्दांत के अनुसार जो बच्चे के द्वारा बिना किसी सहायता के किये गए निष्पादन तथा किसी वयस्क या अधिक कुशल साथी की मदद से किए निष्पादन में होता है। दूसरे शब्दों में बच्चा जो कर रहा हैं तथा जो करने कि क्षमता रखता है, के बीच के क्षेत्रों को ''च्च कहा जाता है।

ढाँचा निर्माण ;मंविसकपदहद्ध

संभावित विकासक्षेत्र में ढाँचा निर्माण, की उस अवधरणा से है।ढाँचा निर्माण एक ऐसी विधि हैं जिसका सहायता से सीखने के स्तर में परिवर्तन कर सकते हैं। शिक्षण करते समय षिक्षक अधिगमकर्त्ता के वर्तमान कियाकलापो का मूल्याकंन करके उसे अभ्याास से संबंधित परामर्ष देते है।

यदि कोई नयी तरह की समस्या है तो अधिक निर्देशन देने पड़ते हैं, उदा0 के लिए जैसे–जैसे छात्रा की क्षमता व कार्य अभ्यास बढ़ता जाता हैं निर्देशनों की संख्या कम हो जाती हैं।

वाइगोत्सकी के अनुसार संवाद, ढाँचा निर्माण का महत्वपूर्ण कड़ी हैं। बच्चों के पास अव्यवस्थित तथा असंगठित तर्क होते हैं जबकि कुशल सहायक के पास क्रमक तार्किक एवं बुद्धि

संगत विचार होते हैं। बच्चे तथा कुशल सहायक के बीच संवाद के परिणाम स्वरूप बच्चे के विचार ज्यादा क्रमक हो जाते हैं।

भाषा और विचार

वाइगोत्सकी के अनुसार सामाजिक रूप से बालक अन्य बालकों के साथ संप्रेषण का कार्य अपनी भाषा से खेल की योजना बनाने निर्देष देने एवं मूल्याकंन करने के लिए भी करते है। स्व निर्देशन में भाषा के प्रयोग को आन्तरिक स्व–भाषा या निजी भाषा कहा जाता हैं। पियाजे ने निजी भाषा को आत्म केन्द्रित तथा अपरिपक्व माना हैं परन्तु वाइगोत्सकी के अनुसार आरंभिक बाल्यावस्था में यह बालक के विचारों का एक महत्वपूर्ण साधन हैं। इस प्रकार से वाइगोत्सकी ने अपने सामाजिक रचनावाद को प्रतिपादित करते हुए यह स्पष्ट किया कि रचना या सृष्टि की एक ऐसी सजीव प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी अपने सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेष में निहित विविध प्रकार के अनुभवों का अपने इस कार्य हेतु वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर इसका प्रयोग किया जाता है। कोई भी बालक या विद्यार्थी उसी अवस्था में ठीक से सीख पाता है। जब वे किसी बड़े या अपने साथियों के संपर्क में रहकर उनसे व्यवहारों को सीखता है।

.....

खण्ड–4
इकाई–3 संप्रत्यय निर्माण

3.3 संप्रत्यय का अर्थ ;डमंदपदह व ब्बिदबमचजद्ध

प्रत्यय, चिन्तन का प्रमुख तत्व और पूर्व अनुभवों का घनीभूत रूप है। बालक कौआ, तोता, गौरेया आदि पक्षियों को देखता है। जब वह उनके पास जाता है या उन्हें मारता है तो वे सभी दूर उड जाते है। इससे उसे अनुभव होता है कि पक्षियों में अनेक सामान्य गुण होता है। पक्षियों के विषय में, यह उड़ना उसके अनुभवों का घनीभूत रूप प्रत्यय है। जब वह किसी उडते जीव को देखता है तो उसे पक्षी कहता है। इस प्रकार प्रत्यय एक सामान्य विचार है।

मार्गन के अनुसार – "सम्प्रत्यय वस्तुओं या घटनाओं के सामान्य गुण को प्रकट करने वाला प्रक्रम है।"

वास्तव में सामान्य गुण ऐसा लक्षण होता है जो प्रत्येक स्थिति में समान रहता है। वह सामान्य गुण ही संप्रत्यय होता है और वर्गीकरण का आधार बनता है।

वुडवर्थ के अनुसार–

"प्रत्यय के विचार है जो वस्तुओं घटनाओं, गुणों आदि का उल्लेख करते है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रत्यय किसी देखी हुई वस्तु के सामान्य गुणों को प्रस्तुत करता है सभी जातिवाचक और भाववाचक संज्ञाएँ प्रत्यय होती हैं जब हम गाये शब्द का उच्चारण करते हैं तो इससे किसी गाय विशेष का बोध न होकर गाय जाति का बोध होता है। इस प्रकार, जाति या समूह के इस विचार को प्रत्यय कहते हैं। जैस– बालक को आरम्भ में गधे–घोड़े में अन्तर नहीं कर पाता है वह गधे को भी घोड़ा समझता है। किन्तु जैसे–जैसे उसका अनुभव बढ़ता जाता है। वह अनेक घोड़ों को एक साथ और उनके कार्यो को देखता है जिससे उसे घोड़े के बारे में सामान्य जानकारी हो जाती है उसमें मस्तिष्क में घोड़े से सम्बन्धित एक विचार या प्रतिमा का निर्माण हो जाता है और वह घोड़े और गधे में अन्तर करने लगता है। इस प्रकार बालक में किसी वस्तु से सम्बन्धित अनेक प्रत्यय और प्रतिमायें बनती है यह उनकी समानताओं पर ध्यान देता है जिसमें फलस्वरूप सामान्य प्रत्यय बनते है। अतः हम कह सकते है कि प्रत्यय बनते है। अतः हम कह सकते है कि प्रत्यय वे शब्द है जिनसे एक ही प्रकार की कई वस्तुओं तथा उनके गुणों का ज्ञान होता हैं।"

संप्रत्यय की विशेषताएँ–

1. प्रत्यय किसी सामान्य वर्ग को व्यक्त करने वाला सामान्य विचार होता है।
2. प्रत्यय का सम्बन्ध हमारे वास्तविक व काल्पनिक विचारों से होता है।
3. प्रत्यय से एक वर्ग की वस्तुओ के सामान्य गुणों और विशेषताओं का सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है।
4. प्रत्यय किसी वस्तु का सामान्य अर्थ होता है जो शब्द या समूह द्वारा व्यक्त किया जाता है।
5. प्रत्यय अनुभवों पर आधारित होता है अनुभवों में वृद्धि होने के साथ ही, प्रत्ययों में भी वृद्धि होती जाती है।
6. प्रत्यय जटिल होते है इसमें बालकों के ज्ञान तथा अनुभवों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

7. आरम्भ में प्रत्यय अस्पष्ट होते है। ज्ञान अनुभव और समय के साथ वे स्पष्ट और निश्चित रूप धारण कर लेते है।
8. प्रत्यय हमारे विचारों और भावनाओं पर आधारित होता है। किसी वस्तु के प्रति जिस प्रकार के हमारे विचार होते है, उसी प्रकार के प्रत्यय का निर्माण होता है। तुलसीदास ने भी लिखा है–

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तीन जैसी।

3.4 मानसिक प्रक्रिया में संप्रत्यय निर्माण–

प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया में बालक निम्नलिखित मानसिक क्रियाओं से गुजरना पड़ता है।

(क) प्रत्यक्षीकरण ;च्मतबमचजपवदद्ध या निरीक्षण ;व्इेमतअंजपवदद्ध बोलना सीखने से पहले ही बालकों में प्रत्ययों का निर्माण होने लगता है। बालक वस्तुओं को देखकर उनका अनुभव प्राप्त करता है और मस्तिष्क में अनकी प्रतिमाएँ बन जाती है। धीरे–धीरे उन वस्तुओं का स्पष्ट प्राप्त कर लेने पर उनके प्रति प्रत्यय का निर्माण हो जाता है। उदाहरणार्थ– बालक, पहले सफेद और फिर काले कुत्ते को देखता है। वह निरीक्षण करके उनका ज्ञान प्राप्त करता है और काले तथा सफेद कुत्ते के प्रति प्रत्यय का निर्माण करता है।

(ख) गुणों का विश्लेषण– ; ।दंसलेपे वि बिंतंबजमत .....द्ध

यह प्रत्यय निर्माण का दूसरा चरण है। इसमें विशेष प्रत्यक्षों के गुणों का विश्लेषण किया जाता है। मनुष्य, ऊँट, हाथी, घोड़े आदि का विशेषण करने पर ही उनके बारे में प्रत्यय ज्ञान होता है। मनुष्य के गुणों का विश्लेषण करके ही उसे अन्य प्राणियों से अलग माना गया है।

(ग) तुलना ;ब्वउचंतपेपवदद्ध.

निरीक्षण और गुणों का विश्लेषण करने के बाद वस्तुओं की परस्पर तुलना करने के बाद उनके अन्तर को समझने लगता है। बालक कुत्ते, बिल्ली, गधे, घोड़े इत्यादि में अन्तर समझने लगता है। तुलना के द्वारा ही वह कई रंग के कुत्तों की असामनता और समानता ज्ञान पाता है वह कुत्तों के रंगों में भिन्नता होते हुए भी समानता पाता है।

(घ) पृथक्करण या अमूर्तकरण ; ।इेजतंबजपवदद्ध.

निरीक्षण, विश्लेषण और तुलना करने के बाद बालक किसी वस्तु में पायी जाने वाली भिन्नता और समानता की बातों को पृथक करता है। इस क्रिया द्वारा वस्तुओं में अन्तर का ज्ञान होता है। और प्रत्यय ज्ञान में वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ बालक, काले और सफेद रंगों के कुत्तों की भिन्नता और समानता की बातों को अलग करता है वह पाता है कि भिन्नता केवल उनके रंगों की है और समानता अनेक बातों की है वह समान गुणों की भिन्नता से अलग करके एक साथ जोड़ लेता है इस प्रकार कुत्तों के प्रति प्रत्यय ज्ञान में वृद्धि होती है।

(ङ) सामान्यीकरण ;ब्न....दमतंसप्रंजपवदद्ध. उपर्युक्त क्रियाओं द्वारा बालक को किसी वस्तु के बारे में ज्ञान प्राप्त हो जाता है और उनके गुणों से परि.... हो जाता है। गुणों के विश्लेषण और तुलना द्वारा उनका अंतर स्पष्ट हो जाता है। फलतः वह किसी वस्तु की अनेक भिन्नताओं में एकरूपता देखने लगता है और उनके समान गुण निश्चित हो जाते है जैसे – बालक को काले, सफेद, लाल आदि रंग के कुत्तों में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। उसे विभिन्न रंग के कुत्ते एक जाति के मालूम होने लगते हैं। उसे कुत्ते शब्द से एक निश्चित जाति के पशु का

बोध होता है। और वह किसी कुत्ते को कुत्ता कहने लगता है। इस प्रकार सामान्य प्रत्यय का नामकरण हो जाता है।

स्पष्ट है कि बालक उपर्युक्त मानसिक क्रियाओं से गुजरने के बाद वस्तु के प्रत्यय का निर्माण कर लेता है। यह प्रत्यय उसे वस्तु का सामान्य ज्ञान प्रदान करता है। बालक को यह ज्ञान केवल वर्ण और परिभाषा द्वारा दिया जा सकता है।

3.5 बाल्यावस्था में संप्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कारक–

संप्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में क्रो व क्रो ने लिखा है– विभिन्न कारक संप्रत्यय विकास को प्रभावित करते है वंशागत नाड़ी मण्डल की रचना सम्भावित विकास की गति और सीमा को निश्चित करती है। कुछ अन्य भौतिक दशाएँ या व्यक्तिगत और वातावरण सम्बन्धी कारक संप्रत्यय प्रगति को तीव्र या मन्द कर सकते है।

इस प्रकार संप्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित है–

(1) वंशानुक्रम– मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि वंशानुक्रम बालक को मानसिक गुण और योग्यतायें प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में गेट्स ने लिखा है। "किसी व्यक्ति का उससे अधिक विकास नहीं हो सकता, जितना कि उसका वंशानुक्रम संभव बनाता है।

(2) परिवार का वातावरण– बालक अधिक समय परिवार में ही रहता है इसलिए परिवार का वातावरण बालक के संप्रत्यय विकास को काफी प्रभावित करता है। दुःखद और कलहपूर्ण वातावरण की अपेक्षा सुखद और शान्त वातावरण में संप्रत्यय विकास अच्छा होता है। इस सम्बन्ध में कुजु स्वामी का विचार है– "एक अच्छा परिवार जिसमें माता–पिता में अच्छे सम्बन्ध होते है, जिसमें वे अपने बच्चों की रूचियों और आवश्यकताओं को समझते हैं एवं जिसमें आनन्द और स्वतंत्रता का वातावरण होता है, प्रत्येक सदस्य के संप्रत्यय विकास में अत्यधिक योग देता है।"

(3) परिवार की आर्थिक स्थिति– टरमैस ने अपने परीक्षणों के आधार पर ये निष्कर्ष निकाला कि ..... परिवारों की अपेक्षा प्रतिभाशाली बालक अच्छी आर्थिक स्थिति वाले परिवारों में अधिक देखने को मिलते है। इसका कारण उन्हें मिलने वाली सुविधाये है। अच्छी आर्थिक स्थिति वाले परिवारेां में कुछ विशेष सुविधाएँ उपलब्ध रहती है, यथा उपयुक्त भोजन, उत्तम शैक्षिक अवसर आदि।

(4) परिवार की सामाजिक स्थिति– उच्च सामाजिक स्थिति के परिवार के बालक का मानसिक विकास, निम्न सामाजिक स्थिति के बालक की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। इसका कारण यह है कि उच्च सामाजिक स्थिति के परिवारों में संप्रत्यय विकास के अच्छे साधन सुलभ होते है।

(5) माता–पिता की शिक्षा– अशिक्षित माता–पिता बालक के विकास की ओर विशेष ध्यान नहीं देते है शिक्षित माता–पिता सदैव इस बात का ख्याल रखते है कि उनके बालक का अच्छा विकास हो इसलिए शिक्षित माता–पिता बालक के संप्रत्यय विकास को अधिक प्रभावित करते हैं। इस निबंध में स्ट्रंग का विचार है– "माता पिता की शिक्षा बच्चों की संप्रत्यय योग्यता से निश्चित रूप से सम्बन्धित है।"

(6) बालक की शिक्षा– उपयुक्त शिक्षा ही बालक की संप्रत्यय शक्तिओं का विकास करती है। अरस्तु ने भी कहा है– "शिक्षा मनुष्य की शक्ति का, विशेष रूप से उसकी मानसिक शक्ति का विकास करते है।"

(7) बालक का स्वास्थ्य– शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक विकास को काफी प्रभावित करता है। निर्बल और अस्वस्थ बालक की अपेक्षा सबल और स्वस्थ बालक का संप्रत्यय विकास अच्छा और तीव्र होता है। इसीलिए शारीरिक स्वास्थ्य को प्राचीन काल से ही महव्त दिया जा रहा है। अरस्तु ने भी कहा है – " स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है।"

(8) विद्यालय– बालक के संप्रत्यय विकास में काफी सहायता कर सकता है। अच्छा विद्यालय, बालक के संप्रत्यय विकास का वास्तविक और महत्वपूर्ण कारक होता है। इस संबंध में ..... स्वामी का विचार है "अच्छा विद्यालय ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है, जो छात्रों की रूचियों और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न क्रियाओं से परिपूर्ण रहात है। ऐसा विद्यालय स्वस्थ संप्रत्यय विकास का एक वास्तविक कारक है।"

(9) शिक्षक– बालक के संप्रत्यय विकास को शिक्षक काफी हद तक प्रभावित करता है। शिक्षक का संप्रत्यय विकास अच्छा होने पर, बालक के प्रति प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करता है, उपयुक्त शिक्षण–विधि और शिक्षण सामग्री का प्रयोग करता है, जिससे बालक का संप्रत्यय विकास भी अच्छा होता है।

(10) समाज– समाज, बालक के संप्रत्यय गति और उसकी सीमा को निर्धारित करता है यदि समाज में अच्छे विद्यालय, पुस्तकालय, वाचनालय, बाल भवन, मनोरंजन गृह होते हे तो बालक संप्रत्यय विकास स्वाभाविक एवं स्वस्थ रूप से होता है।

अन्त में यह कहा जा सकता हैकि शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिए, बालक के संप्रत्यय विकास का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

संप्रत्यय विकास का शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ शिक्षाविद् तो मानसिक जाग्रति को ही शिक्षा मानते है। प्रारंभिक दो वर्षों में होने वाले संप्रत्यय विकास का शिक्षा में कोई विशेष महत्व हनीं है। शिशु के नस्ररी में पहुँचने पर उसकी संप्रत्यय शक्तिओं के विकास में तीव्रता आ जाती है। शिशु में जिज्ञासा प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है और अपने वातावरण को जानने के लिए उत्सुक हो जाता है। इस समय शिक्षक का कर्त्तव्य हो जाता है। इस समय शिक्षक का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसकी जिज्ञासा प्रवृत्ति का उचित विकास करने का प्रयत्न करे। बाल्यावस्था में वह प्राथमिक विद्यालय में पहुँचता है। इस समय उसकी ज्ञानेन्द्रिया, प्रत्यक्षीकरण, निरीक्षण, स्मरण भाषा सम्बन्धी योग्यताएँ विकसित होती है। किशोरावस्था में उच प्रकार की मानसिक शक्तियों, चिन्तन, तर्क निर्णय करने आदि का विकास होता है। इस समय संप्रत्यय शक्तिओं के उचित विकास के लिए शिक्षकों और अभिभावकों, दोनों को ही सतर्क रहना चाहिए।

3.7 ईकाई सारांश। याद रखने योग्य बातें–

- संप्रत्यय वस्तुओं या घटनाओं के सामान्य गुण को प्रकट करने वाला प्रक्रम है।
- संप्रत्यय का सम्बन्ध हमोर वास्तविक व काल्पनिक विचारों से होता है।
- संप्रत्यय हमारे दैनिक अनुभवों से सम्बन्धित होता है।
- ज्ञान और अनुभवों के साथ–साथ संप्रत्ययों में भी परिवर्तन होता रहता है।

- प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया में बालक को विभिन्न जैसे प्रत्यक्षीकरण, गुणों का विश्लेषण तुलना, पृथक्करण, सामान्यीकरण जैसी विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है।
- बाल्यावस्था में संप्रत्यय विकास को वंशानुक्रम परिवार का वातावरण, परिवार की आर्थिक स्थितियाँ सामाजिक स्थिति, विद्यालय, शिक्षक व समाज इत्यादि प्रभावित करते है।
- बुनर

मैकॉले मिनिट

;ड ।ब्स्।ल डफ्छन्ज्द्ध

सन् 1813 के चार्टर एक्ट की 43वीं धारा में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया गया और भारतीय शिक्षा की व्यवस्था के लिए दस हजार पौण्ड अर्थात् एक लाख रुपये की धनराशि स्वीकृत की गई। इस एक्ट में भारतीय शिक्षा की नीति का निर्धारण करते समय केवल उद्देश्यों का ही उल्लेख किया गया था। इन उद्देश्यों में प्रमुखतः 'साहित्य का पुनरुत्थान एवं विकास', 'विद्वान भारतीयों को प्रोत्साहन', 'अंग्रेजी हुकूमत के अधीनस्थ भारतीयों में विज्ञान का प्रसार' का विशेष रूप से उल्लेख किया गया था। परन्तु चार्टर एक्ट में इन उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु कौन से प्रयास या किन विधियों का अवलम्बन करना चाहिए, इसकी ओर कोई संकेत न था। परिणामतः सन् 1813 के चार्टर एक्ट के पारित होने के पश्चात् लगभग 40 वर्ष तक यह एक तीव्र मतभेद का विषय बना रहा। इस विवादास्पद विषय के चार पहलू थे– (1) भारतीय शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिए? (2) शिक्षा देने वाली संस्थाओं का संगठन किन साधनों द्वारा होना चाहिए? (3) सामान्य जनता में शिक्षा का प्रसार करने के लिए किन विधियों का अवलम्बन करना चाहिए? और (4) शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए?

शिक्षा उद्देश्य का मतभेद एक्ट में दर्शाये गये विभिन्न उद्देश्यों में से किस उद्देश्य पर कितना जोर दिया जाना चाहिये – इस सम्बन्ध में था किन्तु उसमें तीव्रता न थी। कुछ लोगों की राय में भारतीय शिक्षा का उद्देश्य–प्रमुखतः भारतीय संस्कृति एवं साहित्य को सुरक्षित रखना

तथा उसका प्रसार करना था, तो कुछ लोगों के मत में भारत में पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान का प्रसार करना– शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था, कुछ अन्य लोगों का कहना था कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य–भारतीयों को कम्पनी की नौकरी के योग्य बनाने तक ही सीमित रखना चाहिए।

कुछ लोगों की राय में शिक्षा–व्यवस्था करने का कार्य मिशनरी लोगों के जिम्मे छोड़ देना अधिक उचित माना जाता था। कुछ लोग इस सुझाव पर धार्मिक निष्पक्षता एवं राजनैतिक औचित्य की दृष्टि से आक्षेप करते हुए, भारतीय संस्कृति का पक्ष लेने वाली देशीय संस्थाओं द्वारा संचालित शालाओं में ही शिक्षा देने के पक्ष में थे। कुछ अन्य लोगों के मत में भारतीयों द्वारा संचालित शालायें अव्यवस्थित होने के कारण कम्पनी के द्वारा संचालित नई शालाओं में ही शिक्षा दिया जाना उचित समझा था।

एक पक्ष का मत था कि शिक्षा का प्रसार ऊपरी स्तर से नीचे के स्तर की ओर होना चाहिए। अतः कम्पनी केवल कुछ उच्च स्तर के लोगों को ही शिक्षित करने का प्रयास करे तथा जन–साधारण की शिक्षा का कार्य इन उच्च–स्तरीय शिक्षित लोगों के जिम्मे छोड़ दिया जाये। इसके विपरीत, कुछ लोगों का मत था कि शिक्षा के प्रसार का यह 'स्यंदन सिद्धान्त' (फिल्ट्रेशन थ्योरी) उस समय में भारत के लिए उपयुक्त न था। अतः जनसाधानण की शिक्षा का कार्य कम्पनी स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथ में ले।

परन्तु सबसे अधिक एवं तीव्र मतभेद का विषय तो शिक्षा के माध्यम का था। इस सम्बन्ध में तीन मत प्रतिपादित किये जाते थे। पहला था कम्पनी के अनुभवी एवं पुराने अफसरों का मत, जो वारेन हेस्टिंग्ज तथा मिन्टो द्वार समर्थित शिक्षा की नीति थी। इसके अनुसार संस्कृत एवं अरबी के अध्ययन को प्रोत्साहन देना श्रेयस्कर था और इन्हीं भाषाओं के माध्यम से पाश्चात्य विज्ञान का प्रसार करना भी उचित था। दूसरा मुनरो एवं एलफिन्सटन द्वारा प्रतिपादित पक्ष वालों का मत था, जो अर्वाचीन भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना अधिक औचित्यपूर्ण समझता था। तीसरे पक्ष के लोग पाश्चात्य विज्ञान का प्रसार अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा करने पर जोर देते थे।

इस प्रकार के मतभेद न केवल सामान्य भारतीयों में या कम्पनी के अफसरों में थे, किन्तु सन् 1823 ई. में बंगाल के गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त की गई लोक शिक्षण की सामान्य समिति के सदस्यों में भी तीव्र रूप से विद्यमान थे। इस समिति में 10 सदस्य थे, जिनमें से पाँच सदस्य, जिनका नेतृत्व श्री एच. टी. प्रिन्सेप, जो कि बंगाल सरकार के शिक्षा–विभाग के सचिव थे, कर रहे थे। वे भारतीय साहित्य और भाषाओं के प्रसार के पक्ष में थे। इस पक्ष को 'प्राच्यवादी' (ओरिएण्टलिस्ट) पक्ष कहा जाता था। शेष पाँच सदस्य भारत में अंग्रेजी माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान के प्रसार के पक्ष में थे। इन्हें 'पाश्चात्यवादी' (एंग्लिसिस्ट) पक्ष कहते थे। इसी पक्ष के एक प्रबल नेता थे राजा राममोहन राय। विधि की विडम्बना देखिए कि प्राच्य ज्ञान का समर्थन अंग्रेज कर रहे थे और पाश्चात्य ज्ञान का समर्थन एक भारतीय कर रहा था।

सन् 1834 ई. में मैकॉले ने जब इस समिति के सभापतित्व का भार सम्हाला उस समय ये मतभेद बड़े तीव्र रूप में थे। परिणामतः समिति के कार्य का सुचारू रूप से संचालन करना बड़ा कठिन हो गया था। ऐसी परिस्थिति में दोनों पक्षों ने अपने–अपने पक्ष का समर्थन करने वाले विचार गवर्नर जनरल के समक्ष निर्णय देने के लिए प्रस्तुत करने का निश्चय किया। यद्यपि मैकॉले ने समिति की बैठकों में किसी भी पक्ष का समर्थन नहीं किया, फिर भी गवर्नर जनरल के सामने निर्णयार्थ भेजे जाने वाले कागजातों पर टिप्पणी **'मैकॉलेज मिनिट'** के नाम

से प्रसिद्ध है। यह 2 फरवरी, सन् 1835 को लिखा गया था और भारतीय शिक्षा की नीति–निर्धारण की दृष्टि से भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख माना जाता है।

मैकॉले मिनिट की मुख्य विशेषताएँ

;ब्मप्थ ब्म्।ट।ब्जम्प्ैज्ै ब्व ड।ब्।न्स्।ल डप्छन्ज्म्द्ध

अपने मिनिट में मैकॉले ने सर्वप्रथम 1813 के चार्टर एक्ट की 43वीं धारा के अर्थ का स्पष्टकरण करते हुए यह प्रस्तुत की कि इस धारा के अन्तर्गत आने वाले साहित्य शब्द का संकेत **'अंग्रेजी साहित्य'** की ओर एवं **'विद्वान भारतीय'** का संकेत 'आंग्ल साहित्य' का ज्ञान रखने वाले भारतीयों की ओर भी हो सकता है। साथ ही 'विज्ञान का ज्ञान' यह केवल अंग्रेजी के माध्यम से दिया जा सकता है। **मैकॉले** का यह तर्क पूर्ण रूप से सही नहीं माना जा सकता। शायद मैकॉले को अपने इस तर्क के थोथेपन की जानकारी थी। अतएव उन्होंने आगे यह भी लिखा कि यदि इस प्रकार का स्पष्टीकरण मान्य न किया गया तो वे एक्ट की 43वीं धारा को अवैध बताने के हेतु एक नया बिल भी प्रस्तुत करने के लिए तैयार है। भारतीय शिक्षा संस्थाओं के कायम रखने के विरूद्ध मैकॉले ने अपना मत देते हुए, यह तर्क प्रस्तुत किया कि ये संस्थाएँ किसी प्रकार का ठोस कार्य नहीं कर रही हैं। अतएव एक्ट के अनुसार जो निधि शिक्षा के प्रसार के लिए सुरक्षित रखी गई थी, उसका विनियम इन संस्थाओं के कायम रखने के लिए न किया जाए।

शिक्षा के माध्यम पर विचार करते हुए, मैकॉले ने इस समस्या का हल वांछनीयता एवं औचित्य की दृष्टि से करना ठीक समझा। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया कि–"सभी पक्षों का यह कथन है कि भारत में विद्यमान विभिन्न भाषाओं में न तो साहित्य का अंश है और न उनमें किसी प्रकार के विज्ञान का ही समावेश है। साथ ही जब तक इन भाषाओं का विकास नहीं होता तब तक अन्य किसी विधि से अंग्रेजी भाषा में लिखित मूल्यवान ग्रन्थों का भाषान्तर किया जाना सम्भव नहीं। अतः ऐसे लोगों के बौद्धिक विकास के लिए जिनके पास ऊँचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त करने के साधन हैं, प्रचलित भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देना सम्भव नहीं। इसके लिए किसी अन्य माध्यम की आवश्यकता है।"

संस्कृत अथवा अरबी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने कि विरूद्ध अपना मत देते हुए मैकॉले ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि–"अच्छे यूरोपीय साहित्य की अलमारी का एक खण्ड ही भारतवर्ष और अरब के सारे देशीय साहित्य के बराबर मूल्यवान है।"

इसके विपरीत, अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्ष में मैकॉले ने अपना मत देते हुए यह बताया कि यह राजभाषा होने के कारण, पूर्वीय देशों में वाणिज्य–व्यवसाय इसी भाषा के माध्यम से होने के कारण तथा भाषा में अनेक भारतीय पारंगत होने के कारण, इसे ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाना अधिक औचित्यपूर्ण होगा।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रति भारतीयों के मन में सन्देह उत्पन्न होने की बात पर मैकॉले ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि अंग्रेज शासकों का कर्त्तव्य है कि वे भारतीयों को ऐसी शिक्षा दें जो उनके 'स्वास्थ्य' के लिए हितकर हो, न कि ऐसी शिक्षा जो कि भारतीय को 'स्वादिष्ट' लगे। यदि रुचि का ही ध्यान रखा जाय तो यह प्रमाणित होता है कि समिति के तत्वाधान में तैयार ही हुई संस्कृत एवं अरबी भाषा में लिखी पुस्तकों की खपत उतनी नहीं, जितनी कि अंग्रेजी में लिखी पुस्तकों की, जिनसे बड़ी मात्रा में लाभ प्राप्त हो रहा था। साथ ही मैकॉले ने इस बात

की ओर ध्यान आकर्षित किया कि संस्कृत तथा अरबी कॉलेजों में विद्यार्थियों के दाखिल होने के लिए जहाँ छात्रवृत्तियों का प्रलोभन आवश्यक था, वहाँ अंग्रेजी शालाओं में विद्यार्थी शुल्क देकर भी भरती होने के लिए उत्सुक थे।

इस तर्क के विरूद्ध कि **हिन्दू धर्म तथा कानू की शिक्षा** के लिए तो संस्कृत साहित्य का जानना आवश्यक है, मैकॉले ने यह युक्ति प्रतिपादित की कि हिन्दू के धार्मिक कानूनों को अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करके उसके माध्यम से शिक्षा देना अधिक मितव्ययता होगी, बजाय इसके कि उनका अध्ययन करने के लिए संस्कृत शालाओं को चलाया जाय।

मैकॉले ने विश्वास व्यक्त किया कि– "इस शिक्षा द्वारा ऐसा समाज तैयार होगा जो हमारे तथा हमारी करोड़ों प्रजा के बीच विचार–वाहक बनेगा। इससे एक ऐसे वर्ग का निर्माण होगा– जो रंग और रक्त में भारतीय परन्तु विचारों, नैतिकता तथा बुद्धि में अंग्रेज होगा।"

इस प्रकार मैकॉल ने मिनिट में अपनी वाक्पटुता से इस बात का प्रबल समर्थन किया कि भारत में शिक्षा का उद्देश्य–पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान का प्रसार अंग्रेजी भाषा के माध्यम से करना है। उन्होंने इस बात की भी सलाह दी कि पूर्वीय साहित्य की शिक्षा देने वाली संस्थाएँ तुरन्त बन्द कर दी जाएँ तथा जो निधि इस प्रकार से बचे, उसे अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार हेतु खर्च किया जाए।

मैकॉले के शिक्षा–कार्य का मूल्यांकन

;म्ट ।स्न।ज्प्छ ब्व ड ।ब।न्स।ल्रै म्क्न्ब।ज्प्छ ।स्ॅव्ज्ञद्ध

भारतीय शिक्षा के इतिहास में मैकॉल के कार्य का मूल्यांकन अलग–अलग ढंग से किया जाता है। कुछ लोगों के मतानुसार मैकॉले का कार्य भारतीय शिक्षा की व्यवस्था को प्रगति के पथ पर आरूढ़ करने में मौलिक था, तो कुछ लोग भारत के राजनैतिक पतन तथा आधुनिक शिक्षा में उपस्थित मूलभूत समस्याओं का सारा दोष मैकॉले पर ही लादते हैं। कुछ लोग भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं धर्म के सम्बन्ध में मैकॉल के गहरे अज्ञान की भर्त्सना करते हैं, जो अन्य कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओं का शिक्षा में दुर्लक्ष्य होने का सारा दोष मैकॉले पर मढ़ते हैं।

वास्तव में इन सभी मतों में अतिशयोक्ति हो सकती है। मैकॉले को पूर्ण श्रेय देने के पूर्व, इस बात का ध्यान रखना होगा कि मैकॉले ने अंग्रेजी शिक्षा के प्रति भारतीयों में किसी प्रकार अभिरुचि उत्पन्न नहीं की। इस शिक्षा से होने वाले लाभों ने ही भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा की ओर उत्प्रेरित किया। मैकॉले का पाश्चात्यवादी दल के संगठन में कोई हाथ न था, वह तो मैकॉले के भारत आगमन के पूर्व ही भारत आगमन के पूर्व ही भारत में बन चुका था। भारतीय लोग अंग्रेजी शिक्षा के उत्सुक थे और कम्पनी के द्वारा उस शिखा के संचालन के अभाव में मिशनरी शालाओं में प्रवेश लेकर उसे ग्रहण कर रहे थे। कम्पनी के नये और तरूण अंग्रेज अफसर पाश्चात्यवादी मत के प्रणेता थे। केवल पुराने अफसर ही लॉर्ड हैस्टिंग्ज और मिन्टो की शिक्षा सम्बन्धी नीति के समर्थक थे। ऐसे अवसर पर मैकॉले का भारत में आगमन हुआ था। इतनी बात अवश्य है कि मैकॉले की केम्ब्रिज विश्वविद्यालयीन शिक्षा ने, जिसमें पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन का बड़ा अंश था, उसको पाश्चात्यवादी मत की ओर आकर्षित करने में प्रभावित किया। साथ ही मैकॉले की प्रतिभा तथा वाक्पटुता ने उसे अपने पक्ष का जोरदार समर्थन करने में सहायता दी। मैकॉले तो पहले से ही विद्यमान विवादास्पद विषय पर एक विशिष्ट निर्णय देने के लिये कारण मात्र था।

इसी प्रकार मैकॉले पर दोषारोपण करने वालों को यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस पक्ष का भी मैकॉले ने प्रतिपादन किया, उसके पीछे कोई दूर्भावना अथवा कुत्सित विचार न था। मैकॉले को अधिक दोषी इसी बात के लिये ठहराया जा सकता है कि प्राच्य साहित्य एवं धर्म से वह पूर्णरूपेण अनभिज्ञ था तथा उसमें अनुभव और दार्शनिक दृष्टिकोण का अभाव था। वह साम्राज्यवाद में विश्वास करता था और 'श्वेतांग–भार' के सिद्धांत का भी कायल था, जिसके अनुसार श्वेत जातियों का यह उत्तरदायित्व समझा जाता था कि वे अश्वेत जातियों को पाश्चात्य संस्कृति और विज्ञान द्वारा सुसंस्कृत तथा परिष्कृत करें। इस प्रकार के पूर्वाग्रहों ने उस पर प्रभाव डाला हो, इसकी सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

भारतीय भाषाओं का विरोध करने के लिये मैकॉले को दोषी ठहराना, यह पूर्णतः न्याय संगत न होगा। मैकॉले को भारतीय भाषाओं के शिक्षा में महत्त्व का अनुमान था। परन्तु उसे तत्कालीन राजनीति में भाग लेने वाले भारतीयों ने सलाह दी कि शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं का होना व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव नहीं। राजा राममोहन राय द्वारा लॉर्ड एम्हर्स्ट को लिखा पत्र इसका प्रमाण है। इस सम्बन्ध में सन् 1836 की लोक–शिक्षण की सामान्य समिति के एक प्रस्ताव का उल्लेख करना अनुचित न होगा। ध्यान रहे कि इस समिति के सभापति का स्थान मैकॉले ने ग्रहण किया था। "भारतीय भाषाओं के विकास एवं प्रोत्साहन सम्बन्धी महत्त्व का हमें पूर्ण ख्याल है। हमें इसका बोध नहीं कि 7 मार्च के आदेश द्वारा भारतीय भाषाओं के विकास एवं प्रोत्साहन पर कोई विशेष अवरोध लागू होता हो.....। हमें इस बात का ध्यान है कि भारतीय भाषाओं के निर्माण एवं विकास का उद्देश्य ही हमारे प्रयासों का लक्ष्य है..... ।"

यद्यपि मैकॉले द्वारा तथा अन्य अधिकारियों द्वारा समय–समय पर भारतीय भाषाओं के विकास के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया परन्तु शिक्षा के अधिकारियों द्वारा इसकी उपेक्षा ही होती रही। अतः इसके लिये मैकॉले को दोषी ठहराना उचित न होगा।

खण्ड–4

इकाई– 4 : ध्यान की कमी और पठन अक्षमता वाले बालक

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देष्य

4.3 ध्यान की कमी

4.4 ध्यान की कमी और अति सक्रियता का विकास

4.5 अधिगम अक्षमता बालकों के लक्षण एवं पहचान

4.6 ध्यान की कमी, ध्यान की कमी और अति सक्रियता, व अधिगम अक्षमता बाले बालकों के साथ कार्य करने में एक षिक्षक की भूमिका

4.7 इकाई सारांष/याद रखने योग्य बातें

4.8 प्रगति की जांच करें

4.9 नियत कार्य/गतिविधियाँ

4.10 चर्चा / स्पष्टीकरण के बिन्दु

4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची/अन्य पठनीय सामग्री

4.1 प्रस्तावना

क्या दिव्यांगता एक अभिषाप है? वर्तमान युग तकनीकी युग है आज के युग में यह कहना गलत होगा कि दिव्यांगता एक अभिषाप है। प्राचीन समय में किसी परिवार में यदि

दिव्यांग बालक का जन्म होता था, तो कहा जाता था कि पूर्व जन्मों के कर्म हैं और बालक को उसके हाल पर छोड़ दिया जाता था। किन्तु वर्तमान समय में पुरानी विचारधाराओं ने आधुनिकता का रुप ले लिया है। आज के वैज्ञानिक युग में अभिभावकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है यदि परिवार में कोई दिव्यांग बालक जन्म ले लेता है तो परिवार सक्रिय हो जाता है और बालक की दिव्यांगता की शीघ्र पहचान और शीघ्र हस्तक्षेप ;म्तसल प्दजमतअमदजपवद प्कमदजपपिबंजपवदद्ध में विष्वास करता है। और ये अटल सत्य है कि दिव्यांग बालक की जितनी जल्दी दिव्यांगता के स्तर की पहचान की जाएगी उतनी जल्दी उसका इलाज किया जा सकेगा और हम उस दिव्यांग बालक को मुख्य धारा ;डंपदेजतमंउद्ध से जोड़ सकेगें और बालक का विकास द्रुत गति से हो सकेगा।

जैसा कि हम जानते हैं कि दिव्यागंता विभिन्न प्रकार की होती है, जैसे मानसिक मंदता, श्रृवण अक्षमता, दृष्टि बाधिता, प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात इत्यादि। इस इकाई में हम ध्यान की कमी, ध्यान की कमी और अतिसक्रियता, पठन अक्षमता विकार के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

4.2 उद्देष्य

1. इस ईकाई को पढ़ने के पष्चात् ध्यान की कमी ;।क्व्द्ध ।जजमदजपवद क्मपिबपज क्पेवतमजमत के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
2. इस ईकाई को पढ़ने के पष्चात् ।क्क बालकों के षिक्षा संबंधी उपायों के बारे में जान सकेगें।
3. इस ईकाई के अध्ययन के बाद छात्र ये भी जान सकेगें कि इन बालकों के साथ किस प्रकार का व्यवहार अपनाया जाना चाहिए।
4. इस ईकाई में न केवल ।क्क बालकों के बारे में जान पाएगें बल्कि ।क्भ्क ;।जजमदजपवद क्मपिबपज भ्लचमतंबजपअम क्पेवतकमतद्ध ध्यान की कमी और अतिसक्रियता के बारे में भी जान सकेगें।
5. ।क्भ्क से पीड़ित बालकों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए, छात्र ये भी जान सकेगें।
6. इस ईकाई में अधिगम अक्षमता के बारे में भी जान सकेगें।
7. छात्र यह भी जानकारी प्राप्त कर सकेगें कि अधिगम अक्षम बालकों के क्या लक्ष्ण है व इनके कितने प्रकार होते हैं।
8. इस ईकाई के अन्त में ये जानकारी भी प्राप्त हो सकेगी कि ।क्क्ए ।क्भ्क और स्क बच्चों के विकास में एक षिक्षक की क्या भूमिका होनी चाहिए?

4.3 ध्यान की कमी ।क्क ;।जजमदजपवद क्ममिबपज क्पेवतकमतद्ध इसे ध्यातिवि भी कहते हैं ये वह विकार है जिसमें वह स्थिति जिसमें ध्यान लगाने में कठिनाई, जिसमें बिना सोचे समझे जल्दबाजी में काम करना इत्यादि शामिल हो सकते हैं।

ये तंत्रिका तंत्र ;छमनतव ैलेजमउद्ध से जुड़ा विकार है। जो सीखने, ध्यान देने और व्यवहार पर अपना प्रभाव डालता है।

लक्षण

बच्चों में ध्यान हीनता के निम्नलिखित लक्ष्ण देखे जा सकते हैं–

- इस विकार का मुख्य लक्ष्ण यह है कि इसमें बालक अपने कार्यों को अधूरा छोड़ देता है जैसे गृहकार्य को अधूरा छोड़ना इत्यादि।
- एक कार्य को अधूरा छोड़कर दूसरे कार्य में लग जाना।
- यदि आस–पास में कोई शोरगुल सुनाई दे रहा है तो विचलित हो जाना।

- गलतियाँ करते जाना व उन गलतियों की परवाह न करना।
- सामाजिक नियमों को पालन नहीं करना। जैसे स्टैण्ड पर गाड़ी नहीं खड़ी करना।
- लगातार गलतियाँ करने की प्रवृत्ति।
- अत्यधिक हठ करना और इस हद तक जिद्द करना जब तक की उनकी जिद्द को पूरा न किया जाए।

पहचान

ध्यान विकार ऐसा विकार है जिसमें बच्चों अथवा व्यस्कों पर कोई परीक्षण नहीं किया जा सकता है परन्तु उपरोक्त लिखित लक्षणों में यदि कोई लक्षण छः महीने तक लगातार दिखाई दे तो समझ लेना चाहिए, कि रोगी, ध्यान की कमी से पीड़ित है।

बालकों तथा व्यस्कों में चिंता, निराषा, ध्यान देने और सीखने समस्याओं तथा कुछ आवष्यक योग्यताओं के अभाव की भी जाँच की जा सकती है।

- इस विकार में बच्चे का शैक्षणिक प्रदर्षन खराब हो सकता है।
- इसमें व्यस्कों में शराब या नषीली दवाओं के सेवन की संभावनाऐं भी शामिल हैं।

4.4 ध्यान की कमी और अतिसक्रियता विकार इस विकार को अंग्रेजी ।जजमदजपवद क्मिबपज भ्लचमतंबजपअम क्पेवतकमत या ।क्भ्क भी कहते हैं। ये भी तंत्रिका तंत्र से जुड़ा विकार है इससे बैचेनी रोषपूर्ण व्यवहार, ध्यान भटकना और अतिसक्रियता जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस विकार से ग्रसित बालक रोजमर्रा के कार्यो में ध्यान नहीं लगा पाते हैं ये विकार बचपन में अधिक रहता है कभी–कभी किषोरावस्था और वयस्कता तक जारी रह सकता है।

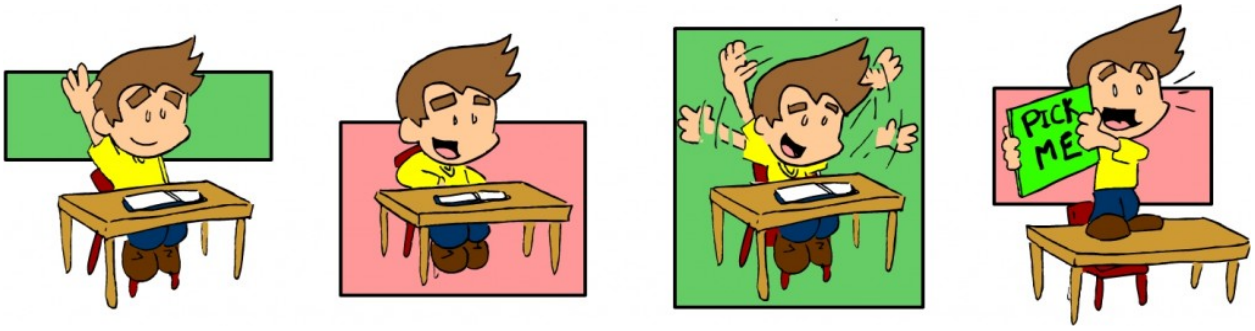

ध्यान की कमी और अतिसक्रियता विकार के लक्षण

इस विकार के निम्न लक्षण बालकों तथा वयस्कों में देखने को मिल सकते हैं।

- ध्यान की अवधि के दौरान गतिरोध का उत्पन्न होना।
- रोजमर्रा के कार्यों को करने में कठिनाई का अनुभव होना।
- किसी भी बात पर आवेषपूर्ण प्रतिक्रिया, और निर्णय देने में जल्दबाजी करना।
- किसी भी बात को ध्यान से न सुनना।
- अधिक तनाव को महसूस करना।

- यदि ऐसे विकार से पीड़ित व्यक्ति को सम्मान नहीं मिल पाता है तो वह आक्रोषित हो जाता है।
- किसी कार्य को डेडलाइन तक पूर्ण करने में कठिनाई का अनुभव करना।
- ऐसे विकार में पीड़ित व्यक्ति को ड्राइविंग इत्यादि पर नियंत्रण नहीं रहता है तो दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता है।

पहचान

ध्यान विकार में बालकों को तुलना में वयस्कों में लक्षण बहुत दबे हुए रहते हैं इस वजह से डॉक्टर भी ठीक–ठीक अनुमान नहीं लगा पाता है कि व्यस्क ।क्ष्क के लक्षण है या नहीं।

मानसिक स्वास्थ्य विषेषज्ञ ही जाँच कर सकता है।

ऐसे बालकों में सीखने की क्षमता कम होती है। ऐसे बालकों का व्यवहार के द्वारा इलाज ;ठमींअपवनतंस जीमतंचलद्ध किया जा सकता है।

व्यवहार संबंधी लक्षणों की पहचान इन बातों से भी की जा सकती है जैसे अत्यधिक संवेदनषीलता, आक्रमकता, खुद पर नियंत्रण की कमी, चिड़चिड़ापन, बिना सोचे समझे जल्दबाजी में काम करना, बैचेनी से शरीर हिलाना–डुलाना, शब्दों या क्रियाओं को लगातार दोहराना इत्यादि से ध्यान की कमी और अतिसक्रियता विकार की पहचान की जा सकती है।

4.5 अधिगम अक्षमता बालकों के लक्षण एवं पहचान

अधिगम अक्षमता को अंग्रेजी में स्मंतदपदह क्पेंइपसपजल कहते हैं या फिर उसे स्क भी कह सकते हैं। उस प्रकार की अक्षमता बाले बालक दिखने में सामान्य नजर आते है किन्तु मनौवैज्ञानिक दृष्टि से यह भी लिखने, पढ़ने व तर्क सम्बन्धी विषयों में कमजोर होते हैं। ऐसे बालकों को लिखना–पढ़ना, नकल करना, भाषा व वाणी संबंधी दोष, गणितीय सम्प्रदायों को समझने में कठिनाई आदि का सामना करना पड़ता है। ऐसे बालक शैक्षणिक क्षेत्र में पिछड़े रहते हैं। इन्हैं 'मन्द शैक्षणिक बालक' भी कहा जाता है। 1962 में सैमुअल किर्क ने अधिगम अक्षमता शब्द का सृजन किया।

अमेरिका पब्लिक कानून ने अधिगम अक्षमता को इस प्रकार परिभाषित किया है।

अधिगम अक्षमता का अर्थ ऐसे दोष से है जो एक या एक से अधिक उन बुनियादी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से जुड़ा है जो भाषा को समझने और लिखित या मौखिक प्रयोग से संबंधित है। इस विकृति से पढ़ने, लिखन, बोलने, चिन्तन करने और गणितीय सवालों का हल करने के कौषल में क्षीणता आती है।

ये परिभाषा भारतीय संदर्भ में स्वीकार की गई है इसके अतिरिक्त अधिगम अक्षमता में बोधात्मक, ज्ञानात्मक कठिनाइयाँ, मस्तिष्क की कार्यप्रणाली दिमाग को चोट आदि विकारों को भी शामिल किया गया है। लेकिन इस प्रकार की अक्षमता वाले बालकों में मानसिक बीमारी नहीं होती है।

अधिगम अक्षमता के प्रकार

अधिगम अक्षमता निम्न प्रकार की होती है–

1. **डिस्लैक्सिया** ;क्लेसमगपंद्ध

2. **डिसग्राफिया** ;क्पेहतंचीपंद्ध

3. **डिसकैलकुलिया** ;क्पेबंसबनसपंद्ध

4. **डिसप्रैक्सिया** ;क्पेचतंगपंद्ध

5. **डिसथैमिया** ;क्लेजीमउपंद्ध

6.**डिसअफैसिया** ;क्लेंचींपंद्ध

1. डिस्लैक्सिया ;क्लेसमगपंद्ध .इसमें बालकों को शब्दों, अक्षरों और अन्य प्रतीकों को पढ़ना या व्याख्या करने में कठिनाई होती है। किन्तु ये सामान्य बुद्धि को प्रभावित नहीं करती है। इसमें पठन से सम्बन्धित समस्याएँ अधिक होती है। जैसे ैा को, बालक ैा पढ़ता है तथा 12 को 21 पढ़ता है।

2. डिसग्राफिया ;क्पेहतंचीपंद्ध .इस विकार में बालक वर्तनी, खराब लिखावट और लेखन पर विचार करने में परेषानी के साथ कठिनाई के रूप में प्रकट हो सकती है। ये समस्या लेखन से सम्बन्धित अधिक होती है।

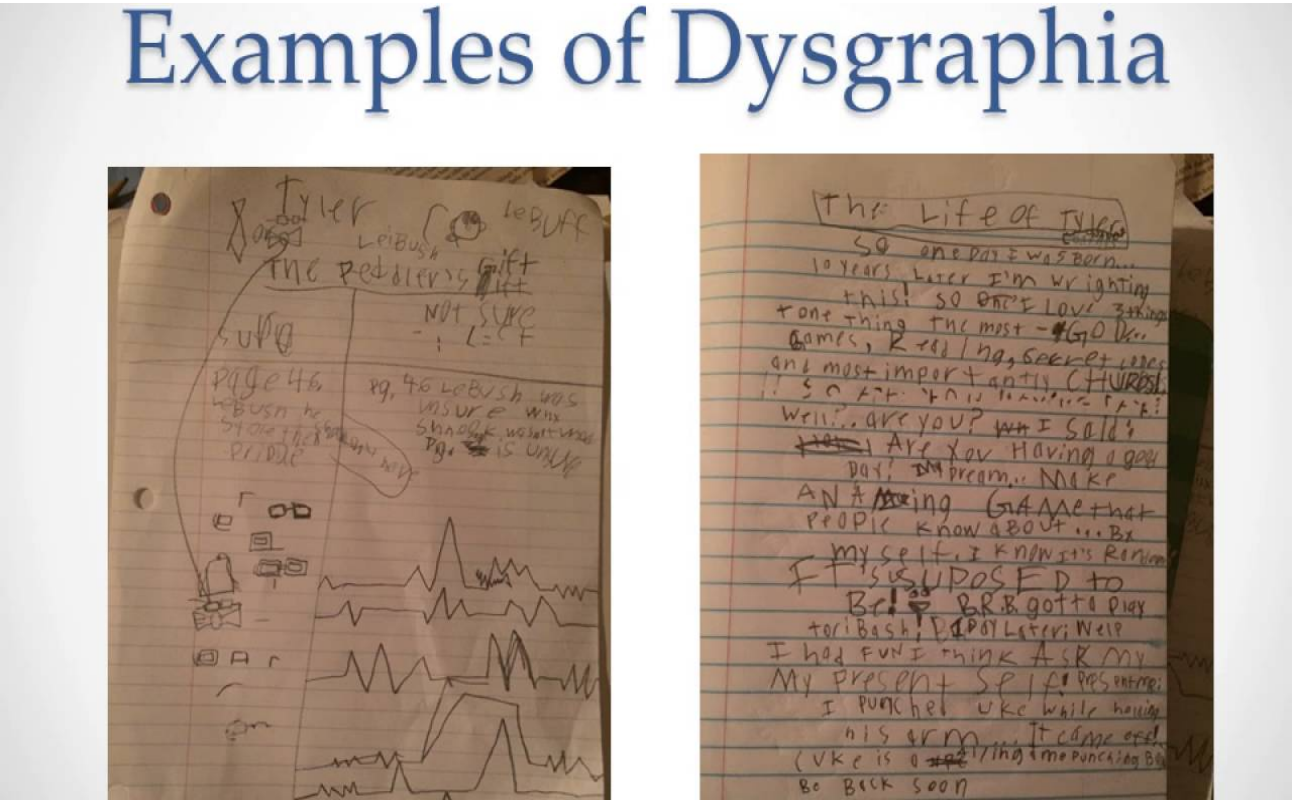

3. डिसकैलकुलिया ;क्पेबंसबनसपंद्ध मस्तिष्क विकार के परिणाम स्वरूप इस विकार में अंकगणितीय गणना में गंभीर कठिनाई होती है। और ये कठिनाई अभ्यास से भी समाप्त नहीं होती है।

4. डिसप्रैक्सिया ;क्पेचतंगपंद्ध .इस विकार में बालक को माँसपेषियाँ से सम्बन्धित ;डवजवत ैापससद्ध समस्या होती है। इस विकार में बालक को एक साथ हाथ–पैर चलाना मुष्किल हो जाता है।

माँसपेषियों की समस्या से पीड़ित बालक

5. डिसथीमिया ;क्लेजीमउपंद्ध .इस विकार में व्यक्ति अवसाद का षिकार हो जाता है। और यदि यह अवसाद छः माह से ऊपर चलता है तो व्यक्ति "वह क्या करे और क्या न करे।" जैसी भावना से ग्रसित हो जाता है।

डिसथीमिया के कारण

उदासी फिर निराषा और फिर अवसादा यह छोटी–सी भावना गहरा जाए तो जानलेवा हो जाती है। भारत जैसा खुषहाजी में यकीन रखने वाला देष अवसाद के मामले में नंबर दो पर आ पहुँचा है। सचेत हो जाइए। समय रहते इससे छुटकारा पाना ही ठीक है। जितनी सतही यह समस्या लगती है। उसकी जड़ें उतनी ही गहरी बैठ जाती हैं, बता रहीं हैं प्रतिका पांडेय।

निराष ही तो है, कुछ दिन में अपने–आप मन बहल जाएगा। सब ठीक हो जाएगा। हम ऐसा ही तो सोचते हैं, जब कुछ दिनों से घर–परिवार में हमें कोई चुप–चुप, अलसाया सा, चिड़चिड़ाया सा दिखता है। हम वक्त को डॉक्टर मान कर निष्चित हो जाते हैं। शायद हम भी नहीं जानते कि ऐसे में क्या करना चाहिए। पता ही नहीं होता कि वह व्यक्ति मानसिक तनाव

की उस दहलीज पर है। जहाँ से तनाव निराषा और फिर अवसाद की जहरीली बेल में तब्दील हो सकता है। फिर ये जहरीली बेल ना सिर्फ उस षिकार मन को खोखला कर देती है, बल्कि उसके तन पर भी असर करने लगती है। अगर इसे जड़ से ना उखाड़ा जाए तो जानलेवा भी हो सकती है।

ऐसे में व्यक्ति का सामाजिक समायोजन बिगड़ने लगता है। तरक्की छोड़िए, सामान्य कामों को पूरा करने लायक आत्म–विष्वास और प्रेरणा तक नहीं बचती। नतीज, हार और रोग आसपास मंडराने लगते हैं। अंततः एक हंसती–खेलती जिंदगी जागरूकता और सही उपचार के अभाव में अंधेरों में गुम हो जाती है।

नेषनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एंड न्यूरोसाइंसेज ने 12 राज्यों में अवसादग्रस्त लोगों पर ऐ सर्वे किया और पाया कि हर 20 में से एक भारतीय अवसादग्रस्त है। सर्वे में यह भी कहा गया कि इस तरह की समस्याओं के सूत्र आगे जाकर डायबिटीज और दिल की बीमारियों से मिलत हैं। 40–49 साल की महिलाओं और मेट्रो शहरों में रहने वाली महिलाओं में अवसाद के मामले ज्यादा हैं। इस सर्वे के मुताबिक कुल बुजुर्गों में से 3.5 फीसदी अवसादग्रस्त है।

इस समस्या की कई परतें हैं। जैसे कि मेजर डिप्रेषन, जो गहन अवसाद की स्थिति है, जिसमें दवाई कॉग्निटिव बिहेवियरल साइकोथेरेपी और काउंसलिंग से निदान किया जाता है। वहीं डिस्थीमिया या क्रॉनिक डिप्रेषन, गहन नहीं होता, लेकिन कम से कम दो साल तक चलता है। इसमें कई बार मरीज को देख कर पता नहीं चलता कि वह डिप्रेषन में चल रहा है। वहीं एटिपिकल डिप्रेषन में जब–जब कोई अच्छी बात होती है, मरीज भी उबर जाता है, लेकिन फिर कुछ समय बाद अवसाद में आ जाता है। इसके साथ ही ज्यादा या कम नींद, अस्वीकार किए जाने के प्रति संवेदनषीलता, ओवरईटिंग और हाथ–पैरों में जकड़न या भारीपन महसूस होने के लक्षण भी होते हैं। यह बीमार व्यक्ति को भी हो सकता है और खुषहाल को भी। यह किसी भी आयुवर्ग के लोगों को हो सकता है। कुछ लोगों में मौसम के हिसाब से भी अवसाद के दौर आते हैं। सीजनल अफेक्टिव डिसॉर्डर–सैड (एसएडी) में साल में सर्दी या गर्मी के आने पर अवसाद घेरता है और बसंत या शरद के आने पर समाप्त हो जाता हैं अमेरिका में इस तरह के डिप्रेषन के मरीज ज्यादा देखने को मिलते हैं।

अभी भी अवसाद के कारणों को पूरी तरह समझ पाना संभव नहीं हो पाया है।, लेकिन कुछ कारण स्पष्ट रूप से सामने आए हैं। अगर डिप्रेषन के मामलों को देखें तो पाएंगे कि उनमें से अधिकतर की कुछ भावनात्मक आवष्यकताएं पूरी नहीं होती और मरीज का उबरना मुष्किल हो जाता है। पहले की अपेक्षा अब स्वकेंद्रित होने की जीवनषैली है। इससे सामुदायिक भावना कम होती जा रही है, जो मानसिक रूप से असुरक्षा की भावना को जन्म दे रही है। माहौल ऐसा है कि तनाव ज्यादा हैं। अवसाद के प्रति जगरूकता भी पर्याप्त नहीं है। एक ट्विटर सर्वे में 50 फीसदी लोगों का कहना था कि वे अपनी सहकर्मी को अपने डिप्रेषन के बारे में बताना पसंद नहीं करेंगे। अवसाद को इन सामाजिक रूढ़ियों के कारण अनदेखा किया जाता है, जो समस्या का रूप ले लेता है। डिप्रेषन के कारण आनुवंषिक, शारीरिक और माहौल से जुड़े भी हो सकते हैं। अध्ययन बताते हैं कि अवसाद के मरीज के परिवार में किसी अन्य के भी डिप्रेषन की चपेट में आने की आषंका अन्य परिवारों की तुलना में छह गुना ज्यादा होती है।

कुछ अध्ययन यह भी बताते हैं कि अवसाद का आधार मस्तिष्क के संदेषों को अंगों तक पहुँचाने वाले न्यूरोट्रांसमिटर है। यहाँ तक कि महिलाओं में एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन अवसाद में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

बहुत सी दवाएं भी हैं, जो अवसाद पैदा करती हैं। ये गैस, हाईबीपी, कब्ज, पार्किन्सन, बीमारी, सूजन जैसी सामान्य समस्याएँ भी हो सकती हैं।

निवारण

व्यायाम और रोगः थोड़ी देर के लिए या फिर एक निष्चित अवधि तक एरोबिक जैसे व्यायाम करने से शरीर में ऐसे केमिकल्स के स्त्राव तेज हो जाते हैं, जो डिप्रेषन कम करने में मदद करते हैं। विभिन्न योगासनों, प्राणायाम आदि से मूड संभालने में मदद मिलती है। ध्यान योग भी सहायक है।

सामाजिकता अवसाद को रोकने और उसके उपाचार में अन्य लोग से सहायता करना बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ये लोग रिष्तेदार, दोस्त या फिर आस–पड़ोस के भी हो सकते हैं। एक मजबूत सामाजिक दायरा होना बहुत जरूरी है।

बीमारियाँ और अवसाद

- गंभीर शारीरिक समस्याएँ, जो प्राणघातक हों या कि उनसे पूरा जीवन प्रभावित हो रहा हो, जैसे डायबिटीज, में रोगी अवसादग्रस्त भी हो सकता है।
- हाइपोथाइरॉएडिज्म, जिसमें थाइरॉएड ग्रंथि हार्मोन का स्त्राव कम करती है, में अवसाद पनपने के मामले भी देखे गए हैं।
- विभिन्न अध्ययनों में पाया गया है कि डिप्रेषन का संबंध भंयकर दर्द की समस्या से भी होता है। जैसे कि तनाव में होने वाला सिरदर्द, माइग्रन, आर्थाइटिस, फाइब्रोमाएल्जिया आदि।
- अगर ब्रेन अटैक हुआ है, दिल का दौरा पड़ा है, तो भी अवसादग्रस्त हो सकते हैं।
- अगर अभिभावकों में से कोई भी अवसादग्रस्त है तो बच्चां को भी अवसाद घेर सकता है।
- अवसाद से केरियर भी प्रभावित होता है। अवसादग्रस्त लोगों को बेरोजगारी और कम आय की समस्या की आषंका होती है।
- अवसादग्रस्त लोगों की एल्कोहल और ड्रग के आदि होने की आषंका बढ़ जाती है। डिप्रेषन के कई मरीजों में सिगरेट पीने की आदत भी पनप जाती है। निकोटिन पर निर्भरता बढ़ जाती है।

खुद से पूछें कुछ प्रष्न–

- क्या लगभग हर दिन उत्साह में कमी महसूस होती है?
- क्या लगभग हर दिन रोजमर्रा के अधिकतर कामों में कोई रूचि नहीं होती?
- क्या मुझे कोई भी चीज मुष्किल से प्रेरित कर पा रही है?
- क्या आसान काम करने में भी बहुत प्रयास करना पड़ रहा है?

- क्या मैं पहले तो एकाग्र न हो पाने के कारण कोई काम टाल देता हूँ और फिर बार–बार उसी के बारे में सोचता रहता हूँ?
- क्या मुझे खुद की अयोग्यता, अपराधबोध से जुड़े निराषावादी विचार आते हैं और अपने को कमतर करके आंकता हूँ?
- क्या बार–बार मृत्यु या आत्म–हत्या जैसे विचार आ रहे हैं?
- क्या हर दिन भूख की कमी या फिर ज्यादा भूख लग रही है?

डिसथीमिया की जाँच

डिसथीमिया का पता लगाने के लिए टेस्ट से ज्यादा मरीज के इंटरव्यू कारगर देखे गए हैं। कई मनावैज्ञानिक टेस्ट भी हैं, जिन्हें मनोवैज्ञानिक ही आपसे करवाएगा। ऑनलाइन भी कुछ टेस्ट उपलब्ध हैं, लेकिन उनकी विष्वनीयता के बारे में कहा नही जा सकता।

लक्षण

अवसादग्रस्त व्यक्ति में निराषा, चिड़चिड़ाहट, प्रसन्नता का अभाव, भूख और वजन का कम या ज्यादा हो जाना, ऊर्जापूर्ण न रहना, मन उखड़ा रहना, अनिद्रा या बहुत ज्यादा सोना, खुद से किसी काम ना करने की भावना का पनपना या फिर अपराबोध, एकाग्र होकर काम न कर पाना और कभी–कभी मृत्यु या आत्यहत्या जैसे विचार आना जैसे लक्षण आम तौर पर लगभग दो–तीन हफते तक चलते हैं। इन लक्षणों की पहचान में यह भी देखना जरूरी होता है कि कहीं ये किसी दवाई या किसी तात्कालीन दुख के कारण तो नहीं है। लेकिन हर हाल में लंबे समय तक ऐसे लक्षण हों तो मनोवैज्ञानिक परामर्ष लेना उचित होगा। बच्चों में उदासी, चिड़चिड़ाहट, पंसद के कामों में अरूचि, सिर दर्द, अनिद्रा, थकान जैसे लक्षणों में यह अभिव्यक्त हो सकता है।

इलाज

डिसथीमिया के इलाज में कॉग्रिटिव बिहेवियरल साइकोथेरेपी और गंभीर मामलों मे दवाओं की भी जरूरत पड़ती है। मनोवैज्ञानिक और साइकियाट्रिस्ट इसके इलाज में अहम भूमिका निभाते हैं। इसका इलाज लंबी अवधि तक चल सकता है। यह मरीज की स्थिति पर निर्भर करता है।

6. डिसअफैसिया ;क्लेंचींपंद्ध ये एक तरह का भाषा–विकार है इस विकार में भाषायी दोष के साथ–साथ वाक–दोष भी पाया जाता है। कभी–कभी ये विकार मस्तिष्क में चोट लगने के कारण भी हो सकता है। यह जन्म के समय या जीवन की किसी भी अवस्था में हो सकता है। इसके मुख्य कारण है जीभ का जलना, दाँतों का न होना, अत्यधिक आलस या नषा करना इत्यादि

अधिगम अक्षमता के लक्षण

अधिगम अक्षमता से ग्रसित बालकों में पढ़ने–लिखने जैसी कई समस्यायें सामने आती हैं। इनमें न केवल पढ़ने–लिखने जैसी समस्यायें मिलती है बल्कि अनेक समस्यायें जैसे

अतिचंचलता, आवेषषीलता संवेगात्मक अस्थिरता वाणी व भाषा संबधी दोष जैसी समस्यायें भी देखने को मिलती है। अधिगम अक्षमता से प्रभावित बालकों में निम्नालिखित लक्षण पाये जाते हैं–

- ऐसे विकार से ग्रसित बालकों में हस्त निपुणता प्रायः निम्न कोटि की होती है। इसके कारण शारीरिक सन्तुलन का अभाव होता है।
- इस अक्षमता में शैक्षणिक उपलब्धि का स्तर निम्न होता है।
- इस समस्या से ग्रसित बालक अनुसरण करने में असफल होते हैं।
- इस प्रकार के बालकों में क्षमता और उपलब्धि के मध्य बहुत उत्तर पाया जाता है।
- इस प्रकार के बालक शब्दों की नकल और उनकों संगठित करने में अक्षम होते हैं।
- इस विकार में बालक समय, स्थान, दिषा सम्बन्धी समस्याओं से ग्रसित होते हैं।
- ऐसे बालक ज्यादा देर तक एक जगह केन्द्रित नहीं हो पाते हैं।
- ये बालक चिन्ता से सदैव, ग्रसित रहते हैं ये इधर–उधर घूमने में अधिक विष्वास रखते हैं।
- ये बालक नेतृत्व क्षमता करने की नाकामयाब कोषिष करते हैं।
- इनमें सहनषीलता जैसे गुणों का अभाव पाया जाता है।
- इनमें भाषा एवं वाणी का विकास धीमा होता है।

पहचान

निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर अधिगम अक्षमता की पहचान की जा सकती है।

- बालकों में यदि उपलब्धि, क्षमता, अक्षरों एवं शब्दों को पढ़ने व लिखने का अभाव प्रायः शैषवावस्था या बाल्यावस्था में होता है परन्तु वास्तविक रूप में उनकी पहचान बालक के विद्यालय जाने के बाद ही हो पाती है।
- अधिगम असक्तता वाले बालक अधिक समय तक अपना ध्यान एक जगह केन्द्रित नहीं कर पाते। इस प्रकार इनमें अवधान से जुड़े विकार पाये जाते हैं।
- अधिगम अक्षमता वाले बालक सामाजिक सम्बन्धों का भी सही मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं। ये प्रायः अपने पारिवारिक सदस्यों एवे सहपाठियों की शारीरिक भाषा पढ़ने में असमर्थ होते हैं।
- ये बालक समय, स्थान और दिषा संबंधी समस्याओं में ग्रसित होते हैं।
- ऐसे बालक शब्दों की नकल और उनको संगठित करने में अक्षम होते हैं।
- अधिगम अक्षमता से पीड़ित बालक अत्यधिक व्याग्र होते हैं और अनावष्यक उत्तेजना का प्रदर्षन करते हैं।

4.6 ध्यान की कमी, ध्यान की कमी और अति सक्रियता, व अधिगम अक्षमता बाले बालकों के साथ कार्य करने में एक षिक्षक की भूमिका शिक्षक समाज का दर्पण है। छात्रों के जीवन में अध्यापक की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। दिव्यांग बालाकों के साथ कार्य करने में और उनके चर्तुमुखी विकास करने में एक षिक्षक की अहम् भूमिका होती है और

षिक्षक उनके लिए एक स्तम्भ के रुप में कार्य करता है और वही अपने क्षेत्रों का सही मार्गदर्षन कर सकता है। उपरोक्त बालकों की षिक्षा में अध्यापक शैक्षिक कार्यों के अतिरिक्त एक ऐसी कक्षा की व्यवस्था करें जहाँ शैक्षणिक गतिविधियों पर ध्यान दिया जा सके। इसके अतिरिक्त अपने दायित्वों में पर्याप्त सफलता प्राप्त करने के लिए एक विषेष षिक्षक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

- विषेष षिक्षक को ध्यान की कमी, अतिसक्रियता तथा अधिगम अक्षमता के बाले माता–पिता से उनकी अक्षमता के बारे में विस्तृत व खुलकर चर्चा करनी चाहिए। ऐसे विकार से पीड़ित बालकों के विषय में तार्किक ढंग से अपनी बात को प्रस्तुत करने की कला होनी चाहिए।
- विषेष षिक्षकों को इस विकार से पीड़ित छात्रों के साथ धैर्य पुर्वक कार्य करने की क्षमता होनी चाहिए। जिससे बालकों की कमी को ज्यादा से ज्यादा दूर किया जा सके।
- षिक्षकों का प्रयास होना चाहिए कि ऐसे बालकों को अमूर्त चिन्तन न करवाये अपितु मूर्त चिन्तन की ओर ध्यान देने का प्रयास करना चाहिए।
- अध्यापक को दिव्यांगता के स्तर को पहचान कर उनकी श्रेणियों के अनुसार व्यवस्था करनी चाहिए।
- अध्यापकों को चाहिए कि इस विकार से पीड़ित बालकों को पूर्ण प्रषिक्षण देना तथा अभिभावकों को परामर्ष देना।
- अध्यापकों को पढ़ाई के समय ऐसे बालकों को छोटे–छोटे अन्तराल देते रहना चाहिए क्योंकि ये बालक एक साथ लम्बे समय तक पढ़ने के लिए तत्पर नहीं होते हैं।
- अध्यापकों का यह कर्तय है कि ऐसे बालकों को बैठने की व्यवस्था इस प्रकार करें कि वे एक स्थान पर तत्पर होकर पढ़ाई कर सकें क्योंकि ये बालक एकाग्रचित्त होकर तभी पढ़ सकते है जबकि इन्हें बाहर का शोरगुल न सुनाई दे। यदि बाहर कोई बालक खेल रहा है तो ये पढ़ाई में अपना मन नहीं लगा सकते।
- इस विकार से पीड़ित बालकों की जरूरतों को समझने के लिए अध्यापकों का प्रषिक्षित होना अति आवष्यक है ताकि वे ऐसे बालकों के व्यवहार एवं मनोवृत्ति को भलीभांति समझ सके। ऐसे अध्यापकों व्यवहारिक, अनुभवी एवं मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञाता होना चाहिए। विषेष अध्यापकों के भीतर कल्याण की भावना निहित होनी चाहिए अन्यथा वे अपने मिषन में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाएंगे। ऐसे बालकों को प्रोत्साहन प्रंषसा, सहायता एवं सहानुभूति पूर्ण व्यवहार की निरन्तर आवष्यकता होती है इसलिए विषेष अध्यापक को पर्याप्त धैर्यषाली होना चाहिए ताकि बालकों की कठिनाईयों को पूर्ण समय देकर समझने का प्रयास करें। विद्यालय प्रषासन को भी विषेष अध्यापकों के माध्यम से बाल केन्द्रित षिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए।
- कक्षा में अध्यापक इन बालकों के साथ उपयुक्त व्यवहार करें एवं छात्रों की उपलब्धि पर प्रोत्साहित करें।
- अध्यापक नकारात्मक पुर्नवलन के स्थान पर सकरात्मक पुर्नबलन का प्रयोग करें।
- यदि अध्यापक को विद्यार्थी की ओर से निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पा रही है तो पुनः षिक्षण की व्यवस्था करने की कोषिष करें।

4.7 इकाई सारांष/याद रखने योग्य बातें

ध्यान की कमी को ध्यानमिति भी कहते हैं तथा आमबोलचाल की भाषा में इसे ए.डी.डी. भी कहते हैं। इसी प्रकार ध्यान की कमी और अतिसक्रियता को ए.डी.एच.डी. भी कहते हैं और अधिगम अक्षमता को एल.डी. कहते हैं।

इन तीनों ही विकारों की जल्दी पहचान नहीं हो पाती हैं। स्कूल जाने पर ही इन अक्षमताओं का पता चल पाता है। अधिगम अक्षमता छः प्रकार की होती हैं– डिस्लैक्सिया डिसग्राफिया, डिसकैलकुलिया, डिसप्रैक्सिया, डिसथैमिया एवं डिसअफैसिया। इन उपरोक्त तीनों विकारों में शैक्षिक उपलब्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सभी विकारों को कम करने व दूर करने के लिए, अध्यापक की भूमिका अहम् होती है। अध्यापक का बालक के प्रति यह प्रथम कर्त्तव्य होता है कि अध्यापक ऐसे बालकों के साथ धैर्यपूर्वक कार्य करें । जिससे बालकों का मनोबल बढ़ सके। और वे कार्य करने के लिए प्रेरित हों। ये सभी बालक, अध्यापकों के सहयोग से मुख्य धारा में शामिल हो सकें तथा अपनी दैनिक दिनचर्या में भी सुधार ला सकें। साधारण बालक भी अपने षिक्षक से प्रेरित होकर कार्य करने के लिए उर्जावान होते हैं, अतः षिक्षक की भूमिका एक रोल मॉडल के रुप में होनी चाहिए। जब साधारण बालकों के लिए अध्यापक प्रेरणा के स्त्रोत होते हैं। परदिव्यांग बालकों की दृष्टि से सोचे तो षिक्षक ही सर्वोपरि है।

4.8 अपनी प्रगति की जाँच करें

- ए.डी.डी. को विस्तारित कीजिए।
- ए.डी.एच.डी. को विस्तारित कीजिए।
- अधिगम अक्षमता क्या है? व यह कितने प्रकार की होती है।
- अधिगम अक्षमता से पीड़ित बालक को सुधारने के लिए एक षिक्षक की क्या भूमिका होनी चाहिए?

4.9 नियत कार्य/गतिविधियाँ

- किसी विद्यालय में जाकर उन बालकों को ढूँढे जो अधिगम अक्षमता से पीड़ित हैं तथा ऐसे बालक के कार्यों में सुधार लाने के लिए एक परियोजना बनाए तथा कुछ गतिविधियों को स्वंय बनाये जिनकों करने से बालकों में संभावित सुधार लाया जा सके।
- ए.डी.एच.डी. से पीड़ित बालकों के लिए योगा के द्वारा कितना ध्यान केन्द्रण करवाया जा सकता है? पन्द्रह दिन तक इस गतिविधि को षिक्षण–प्रषिक्षक द्वारा करवाया जाए।
- षिक्षण–प्रषिक्षक की एक ऐसी रिपोर्ट तैयार करें जिसमें ये स्पष्ट किया जा सके कि क्या ध्यानमिति से पीड़ित बच्चे विद्यालयों में अपेक्षित व्यवहार किया जा रहा है अथवा नहीं। और ऐसे बालक विद्यालय में किन–किन कमियों का सामना कर रहे हैं?

4.10 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दु

अधिगम अक्षमता से पीड़ित बालकों के साथ कार्य करना षिक्षक के लिए एक बड़ी चुनौती है

चर्चा के बिन्दु .....
.....
.....

स्पष्टीकरण के बिन्दु .....
.....
.....

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची/एवं अन्य पठनीय सामग्री

शर्मा, आर. के. (2016). विविधता, समावेषी षिक्षा और जेन्डर, राधा प्रकाषन मंदिर आगरा।

ठाकुर, यतीन्द्र (2016). समावेषी षिक्षा, राखी प्रकाषन प्रा.लि. आगरा।

शर्मा, अंजलि (2001). समावेषी षिक्षा और विद्यालय, राधा प्रकाषन मंदिर आगरा।

नाटी, अंजुम, शर्मा षिल्पी एवं सक्सेना, भारती (2014). समावेषी षिक्षा एस.डी.आर. प्रिंटर्स नई दिल्ली।

आर्या, सतपाल (2016). समावेषी षिक्षा, एस.आर. पब्लिकेषन, नई दिल्ली।

शर्मा, योगेन्द्र के. एवं शर्मा, मधुलिका (2014). समावेषी षिक्षा, कनिष्का पब्लिकेषन, नई दिल्ली।

इकाई– 3 संप्रत्यय निर्माण

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देष्य

3.3 संप्रत्यय का अर्थ

3.4 मानसिक प्रक्रिया में संप्रत्यय निर्माण

3.5 बाल्यावस्था में संप्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कारक

3.6 संप्रत्यय अधिगम में ब्रुनर का मॉडल

3.7 ईकाई सारांष/याद रखने योग्य बातें

3.8 प्रगति की जाँच करें

3.9 नियत कार्य/गतिविधियाँ

3.10 चर्चा/स्पष्टीकरण के बिन्दु

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची/अन्य पठनीय सामग्री

डॉ. याचना सक्सेना

सहा. प्राध्यापक

डी. एम. ई.

मध्यप्रदेष भोज (मुक्त) विष्वविद्यालय, भोपाल

3.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते हैं कि बालक के मानसिक अथवा बौद्धिक विकास के अर्न्तगत उसकी समस्त मानसिक योग्यताएँ और शक्तियाँ सम्मिलित होती है। इन योग्यताओं अथवा शक्तियों का विकास बच्चे में धीरे–धीरे होता है। जन्म के पष्चात् ये किस प्रकार पनपती है यह जानकारी हमारे लिए बहुत ही रोचक एवं उपयोगी सिद्ध हो सकती है। यद्यपि हम ये पहले से ही जानते है कि मानसिक शक्तियों और योग्यताओं के क्षेत्र में बच्चा समान रूप से आगे बढ़ता रहता है। परन्तु किसी आफ अथवा अवस्था विषेष में इन योग्यताओं और शक्तियों में विकास की गति कम अथवा अधिक होती रहती है। इसके साथ ही बच्चों में संप्रत्ययों का निर्माण होना भी उनके मानसिक विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। सम्बोध या संप्रत्यय एक प्रकार से ऐसे सामान्यीकृत विचार है जो एक व्यक्ति द्वारा विभिन्न प्रत्यक्षीकरण अथवा प्रत्यक्ष अनुभवों के माध्यम से आगनात्मक तर्क प्रणाली का प्रयोग करते हुए विभिन्न व्यक्तियों तथा प्रक्रियाओं के बारे में बना लिये जाते हैं। इस ईकाई में विद्यार्थी संप्रत्ययों का निर्माण किस प्रकार होता है ये जानकारी प्राप्त करेगें। संप्रत्ययों के निर्माण में सभी प्रकार के पूर्व तथा वर्तमान अनुभव बहुत अधिक महत्व रखते हैं अतः संप्रत्ययों का निर्माण बाल्यावस्था में किस प्रकार होता है ये जानकारी अत्यावष्यक है। जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है तो उसमें सूलि एवं प्रत्यक्ष अनुभवों के द्वारा ही संप्रत्ययों का निर्माण होने लगता है। और वह धीरे–धीरे निष्चित धारणा बनाना शुरू कर देता है यहीं से संप्रत्ययों का निर्माण शुरू हो जाता है।

3.2 उद्देष्य

इस ईकाई को पढ़ने के पष्चात् छात्र निम्न बातों की जानकारी प्राप्त करे सकेगें–

- बालकों में संप्रत्ययों का विकास किस प्रकार होता है या संप्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया क्या है?
- स्थूल एवं प्रत्यक्ष संप्रत्यय क्या है?

- संप्रत्ययों के विकसित होने की प्रक्रिया में स्थूल से सूक्ष्म की ओर, अस्पष्टता से स्पष्टता की ओर और अनिष्चितता से निष्चितता की ओर कैसे जा सकता है?
- संप्रत्यय शब्द का वास्तविक अर्थ समझ सकेगें।
- संप्रत्यय निर्माण की विषेषताओं क्या है?
- वे कौन से कारक हैं जो बाल्यावस्था में संप्रत्यय विकास को प्रभावित कर सकेगें।
- संप्रत्यय अधिगम में क्रुनर के मॉडल को समझ सकेगें। जिसक पियाजे के विकल्प के रूप में चुना गया है।

3.3 संप्रत्यय का अर्थ ;डमंदपदह वि ब्वदबमचजद्ध

प्रत्यय, चिन्तन का प्रमुख तत्व और पूर्व अनुभवों का घनीभूत रूप है। बालक कौआ, तोता, गौरेया आदि पक्षियों को देखता है। जब वह उनके पास जाता है या उन्हें मारता है तो वे सभी दूर उड जाते है। इससे उसे अनुभव होता है कि पक्षियों में अनेक सामान्य गुण होता है। पक्षियों के विषय में, यह उड़ना उसके अनुभवों का घनीभूत रूप प्रत्यय है। जब वह किसी उडते जीव को देखता है तो उसे पक्षी कहता है। इस प्रकार प्रत्यय एक सामान्य विचार है।

मार्गन के अनुसार – "सम्प्रत्यय वस्तुओं या घटनाओं के सामान्य गुण को प्रकट करने वाला प्रक्रम है।"

वास्तव में सामान्य गुण ऐसा लक्षण होता है जो प्रत्येक स्थिति में समान रहता है। वह सामान्य गुण ही संप्रत्यय होता है और वर्गीकरण का आधार बनता है।

वुडवर्थ के अनुसार–

"प्रत्यय के विचार है जो वस्तुओं घटनाओं, गुणों आदि का उल्लेख करते है। उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रत्यय किसी देखी हुई वस्तु के सामान्य गुणों को प्रस्तुत करता है सभी जातिवाचक और भाववाचक संज्ञाएँ प्रत्यय होती हैं जब हम गाये शब्द का उच्चारण करते हैं तो इससे किसी गाय विशेष का बोध न होकर गाय जाति का बोध होता है। इस प्रकार, जाति या समूह के इस विचार को प्रत्यय कहते हैं। जैस– बालक को आरम्भ में गधे–घोड़े में अन्तर नहीं कर पाता है वह गधे को भी घोड़ा समझता है। किन्तु जैसे–जैसे

उसका अनुभव बढ़ता जाता है। वह अनेक घोड़ों को एक साथ और उनके कार्यो को देखता है जिससे उसे घोड़े के बारे में सामान्य जानकारी हो जाती है उसमें मस्तिष्क में घोड़े से सम्बन्धित एक विचार या प्रतिमा का निर्माण हो जाता है और वह घोड़े और गधे में अन्तर करने लगता है। इस प्रकार बालक में किसी वस्तु से सम्बन्धित अनेक प्रत्यय और प्रतिमायें बनती है यह उनकी समानताओं पर ध्यान देता है जिसमें फलस्वरूप सामान्य प्रत्यय बनते है। अतः हम कह सकते है कि प्रत्यय बनते है। अतः हम कह सकते है कि प्रत्यय वे शब्द है जिनसे एक ही प्रकार की कई वस्तुओं तथा उनके गुणों का ज्ञान होता हैं।"

संप्रत्यय की विशेषताएँ

1. प्रत्यय किसी सामान्य वर्ग को व्यक्त करने वाला सामान्य विचार होता है।

2. प्रत्यय का सम्बन्ध हमारे वास्तविक व काल्पनिक विचारों से होता है।

3. प्रत्यय से एक वर्ग की वस्तुओ के सामान्य गुणों और विशेषताओं का सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है।

4. प्रत्यय किसी वस्तु का सामान्य अर्थ होता है जो शब्द या समूह द्वारा व्यक्त किया जाता है।

5. प्रत्यय अनुभवों पर आधारित होता है अनुभवों में वृद्धि होने के साथ ही, प्रत्ययों में भी वृद्धि होती जाती है।

6. प्रत्यय जटिल होते है इसमें बालकों के ज्ञान तथा अनुभवों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

7. आरम्भ में प्रत्यय अस्पष्ट होते है। ज्ञान अनुभव और समय के साथ वे स्पष्ट और निश्चित रूप धारण कर लेते है।

8. प्रत्यय हमारे विचारों और भावनाओं पर आधारित होता है। किसी वस्तु के प्रति जिस प्रकार के हमारे विचार होते है, उसी प्रकार के प्रत्यय का निर्माण होता है। तुलसीदास ने भी लिखा है–

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तीन जैसी।

3.4 मानसिक प्रक्रिया में संप्रत्यय निर्माण

प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया में बालक निम्नलिखित मानसिक क्रियाओं से गुजरना पड़ता है।

(क) प्रत्यक्षीकरण ;च्मतबमचजपवदद्ध **या निरीक्षण** ;व्इमतअंजपवदद्ध बोलना सीखने से पहले ही बालकों में प्रत्ययों का निर्माण होने लगता है। बालक वस्तुओं को देखकर उनका अनुभव प्राप्त करता है और मस्तिष्क में अनकी प्रतिमाएँ बन जाती है। धीरे–धीरे उन वस्तुओं का स्पष्ट प्राप्त कर लेने पर उनके प्रति प्रत्यय का निर्माण हो जाता है। उदाहरणार्थ– बालक, पहले सफेद और फिर काले कुत्ते को देखता है। वह निरीक्षण करके उनका ज्ञान प्राप्त करता है और काले तथा सफेद कुत्ते के प्रति प्रत्यय का निर्माण करता है।

(ख) गुणों का विश्लेषण– ;।दंसलेपे वि बिंतंबजमतपेजपबेद्ध

यह प्रत्यय निर्माण का दूसरा चरण है। इसमें विशेष प्रत्यक्षों के गुणों का विश्लेषण किया जाता है। मनुष्य, ऊँट, हाथी, घोड़े आदि का विशेषण करने पर ही उनके बारे में प्रत्यय ज्ञान होता है। मनुष्य के गुणों का विश्लेषण करके ही उसे अन्य प्राणियों से अलग माना गया है।

(ग) तुलना ;ब्वउचंतपेपवदद्ध

निरीक्षण और गुणों का विश्लेषण करने के बाद वस्तुओं की परस्पर तुलना करने के बाद उनके अन्तर को समझने लगता है। बालक कुत्ते, बिल्ली, गधे, घोड़े इत्यादि में अन्तर समझने लगता है। तुलना के द्वारा ही वह कई रंग के कुत्तों की असामनता और समानता ज्ञान पाता है वह कुत्तों के रंगों में भिन्नता होते हुए भी समानता पाता है।

(घ) पृथक्करण या अमूर्तकरण ;।इेजतंबजपवदद्ध

निरीक्षण, विश्लेषण और तुलना करने के बाद बालक किसी वस्तु में पायी जाने वाली भिन्नता और समानता की बातों को पृथक करता है। इस क्रिया द्वारा वस्तुओं में अन्तर का ज्ञान होता है। और प्रत्यय ज्ञान में वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ बालक, काले और सफेद रंगों के कुत्तों की भिन्नता और समानता की बातों को अलग करता है वह पाता है कि भिन्नता केवल उनके रंगों की है और समानता अनेक बातों की है वह समान गुणों की भिन्नता से अलग करके एक साथ जोड़ लेता है इस प्रकार कुत्तों के प्रति प्रत्यय ज्ञान में वृद्धि होती है।

(ङ) सामान्यीकरण ;हमदमतंसप्रंजपवदद्ध उपर्युक्त क्रियाओं द्वारा बालक को किसी वस्तु के बारे में ज्ञान प्राप्त हो जाता है और उनके गुणों से परि.... हो जाता है। गुणों के विश्लेषण और तुलना द्वारा उनका अंतर स्पष्ट हो जाता है। फलतः वह किसी वस्तु की अनेक भिन्नताओं में एकरूपता देखने लगता है और उनके समान गुण निश्चित हो जाते है जैसे – बालक को काले, सफेद, लाल आदि रंग के कुत्तों में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। उसे विभिन्न रंग के कुत्ते एक जाति के मालूम होने लगते हैं। उसे कुत्ते शब्द से एक निश्चित जाति के पशु का बोध होता है। और वह किसी कुत्ते को कुत्ता कहने लगता है। इस प्रकार सामान्य प्रत्यय का नामकरण हो जाता है।

स्पष्ट है कि बालक उपर्युक्त मानसिक क्रियाओं से गुजरने के बाद वस्तु के प्रत्यय का निर्माण कर लेता है। यह प्रत्यय उसे वस्तु का सामान्य ज्ञान प्रदान करता है। बालक को यह ज्ञान केवल वर्ण और परिभाषा द्वारा दिया जा सकता है।

3.5 बाल्यावस्था में संप्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कारक

संप्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में क्रो व क्रो ने लिखा है– विभिन्न कारक संप्रत्यय विकास को प्रभावित करते है वंशागत नाड़ी मण्डल की रचना सम्भावित विकास की गति और सीमा को निश्चित करती है। कुछ अन्य भौतिक दशाएँ या व्यक्तिगत और वातावरण सम्बन्धी कारक संप्रत्यय प्रगति को तीव्र या मन्द कर सकते है।

इस प्रकार संप्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित है–

(1) वंशानुक्रम– मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि वंशानुक्रम बालक को मानसिक गुण और योग्यतायें प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में गेट्स ने लिखा है। "किसी व्यक्ति का उससे अधिक विकास नहीं हो सकता, जितना कि उसका वंशानुक्रम संभव बनाता है।

(2) परिवार का वातावरण– बालक अधिक समय परिवार में ही रहता है इसलिए परिवार का वातावरण बालक के संप्रत्यय विकास को काफी प्रभावित करता है। दुःखद और कलहपूर्ण वातावरण की अपेक्षा सुखद और शान्त वातावरण में संप्रत्यय विकास अच्छा होता है। इस सम्बन्ध में कुजु स्वामी का विचार है– "एक अच्छा परिवार जिसमें माता–पिता में अच्छे सम्बन्ध

होते है, जिसमें वे अपने बच्चों की रूचियों और आवश्यकताओं को समझते हैं एवं जिसमें आनन्द और स्वतंत्रता का वातावरण होता है, प्रत्येक सदस्य के संप्रत्यय विकास में अत्यधिक योग देता है।"

(3) परिवार की आर्थिक स्थिति– टरमैस ने अपने परीक्षणों के आधार पर ये निष्कर्ष निकाला कि ..... परिवारों की अपेक्षा प्रतिभाशाली बालक अच्छी आर्थिक स्थिति वाले परिवारों में अधिक देखने को मिलते है। इसका कारण उन्हें मिलने वाली सुविधाये है। अच्छी आर्थिक स्थिति वाले परिवारेां में कुछ विशेष सुविधाएँ उपलब्ध रहती है, यथा उपयुक्त भोजन, उत्तम शैक्षिक अवसर आदि।

(4) परिवार की सामाजिक स्थिति– उच्च सामाजिक स्थिति के परिवार के बालक का मानसिक विकास, निम्न सामाजिक स्थिति के बालक की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। इसका कारण यह है कि उच्च सामाजिक स्थिति के परिवारों में संप्रत्यय विकास के अच्छे साधन सुलभ होते है।

(5) माता–पिता की शिक्षा– अशिक्षित माता–पिता बालक के विकास की ओर विशेष ध्यान नहीं देते है शिक्षित माता–पिता सदैव इस बात का ख्याल रखते है कि उनके बालक का अच्छा विकास हो इसलिए शिक्षित माता–पिता बालक के संप्रत्यय विकास को अधिक प्रभावित करते हैं। इस निबंध में स्ट्रंग का विचार है– "माता पिता की शिक्षा बच्चों की संप्रत्यय योग्यता से निश्चित रूप से सम्बन्धित है।"

(6) बालक की शिक्षा– उपयुक्त शिक्षा ही बालक की संप्रत्यय शक्तिओं का विकास करती है। अरस्तु ने भी कहा है– "शिक्षा मनुष्य की शक्ति का, विशेष रूप से उसकी मानसिक शक्ति का विकास करते है।"

(7) बालक का स्वास्थ्य– शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक विकास को काफी प्रभावित करता है। निर्बल और अस्वस्थ बालक की अपेक्षा सबल और स्वस्थ बालक का संप्रत्यय विकास अच्छा और तीव्र होता है। इसीलिए शारीरिक स्वास्थ्य को प्राचीन काल से ही महव्त दिया जा रहा है। अरस्तु ने भी कहा है – " स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है।"

(8) विद्यालय– बालक के संप्रत्यय विकास में काफी सहायता कर सकता है। अच्छा विद्यालय, बालक के संप्रत्यय विकास का वास्तविक और महत्वपूर्ण कारक होता है। इस संबंध में .....

स्वामी का विचार है "अच्छा विद्यालय ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है, जो छात्रों की रूचियों और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न क्रियाओं से परिपूर्ण रहात है। ऐसा विद्यालय स्वस्थ संप्रत्यय विकास का एक वास्तविक कारक है।"

(9) शिक्षक– बालक के संप्रत्यय विकास को शिक्षक काफी हद तक प्रभावित करता है। शिक्षक का संप्रत्यय विकास अच्छा होने पर, बालक के प्रति प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करता है, उपयुक्त शिक्षण–विधि और शिक्षण सामग्री का प्रयोग करता है, जिससे बालक का संप्रत्यय विकास भी अच्छा होता है।

(10) समाज– समाज, बालक के संप्रत्यय गति और उसकी सीमा को निर्धारित करता है यदि समाज में अच्छे विद्यालय, पुस्तकालय, वाचनालय, बाल भवन, मनोरंजन गृह होते हे तो बालक संप्रत्यय विकास स्वाभाविक एवं स्वस्थ रूप से होता है।

अन्त में यह कहा जा सकता हैकि शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिए, बालक के संप्रत्यय विकास का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

संप्रत्यय विकास का शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ शिक्षाविद् तो मानसिक जाग्रति को ही शिक्षा मानते है। प्रारंभिक दो वर्षों में होने वाले संप्रत्यय विकास का शिक्षा में कोई विशेष महत्व हनीं है। शिशु के नस्ररी में पहुँचने पर उसकी संप्रत्यय शक्तिओं के विकास में तीव्रता आ जाती है। शिशु में जिज्ञासा प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है और अपने वातावरण को जानने के लिए उत्सुक हो जाता है। इस समय शिक्षक का कर्त्तव्य हो जाता है। इस समय शिक्षक का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसकी जिज्ञासा प्रवृत्ति का उचित विकास करने का प्रयत्न करे। बाल्यावस्था में वह प्राथमिक विद्यालय में पहुँचता है। इस समय उसकी ज्ञानेन्द्रिया, प्रत्यक्षीकरण, निरीक्षण, स्मरण भाषा सम्बन्धी योग्यताएँ विकसित होती है। किशोरावस्था में उच प्रकार की मानसिक शक्तियों, चिन्तन, तर्क निर्णय करने आदि का विकास होता है। इस समय संप्रत्यय शक्तिओं के उचित विकास के लिए शिक्षकों और अभिभावकों, दोनों को ही सतर्क रहना चाहिए।

3.6 संप्रत्यय अधिगम में ब्रुनर का मॉडल

प्रसिद्ध संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक जेरोम ब्रूनर संज्ञानात्मक विकास, अनुदेषन तथा अधिगम में अपने बहुचर्चित योगदान के अतिरिक्त अपनी रचनात्मकतावादी विचारधार के लिये काफी जाना जाता है। उसका रचनात्मकतावादी दर्षन एक समन्यवादी दर्षन था जिसमें वैयक्तिता तथा सामाजिक दोनों प्रकार के रचनात्मकतावादी विचारधाराओं का अनूठा संगम नजर आ सकता है। आइये इस बात को उसके द्वारा प्रतिपादित रचनात्मकतावादी सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में परखने का प्रयत्न किया जाये।

1. अपने रचनात्मकतावाद को प्रतिपादित करते हुये ब्रूनर ने कहा कि एक बालक उपयोगी ज्ञान की प्राप्ति तभी कर सकता है। जब उसे ऐसी सभी वांछित सुविधायें तथा अवसर प्रदान किये जाये जिनमें वह स्वयं अपने प्रयत्नों से स्वतन्त्र रूप में अथवा बड़ों की देखरेख, मार्गदर्षन तथा निर्देषन में अपने वातावरण के साथ अन्तःक्रिया करके वांछित ज्ञान की सृष्टि अथवा सृजन कर सके। ब्रूनर ने इस प्रकार की ज्ञान रचना प्रक्रिया या स्व–अधिगम में अधिगम कर्ता का सक्रिय रहना नितान्त आवष्यक है। उसे विषय से सम्बन्धित महत्त्पूर्ण अवधारणाओं तथा सिद्धान्तों से अवगत होने के लिये एक अच्छे आत्मनिर्भर अन्वेषण कर्त्ता तथा खोजी की भूमिका निभानी चाहिये। उसे कभी भी वह ज्ञान जो दूसरों के द्वारा (अध्यापक या अन्य गुरूजन) कहकर, दिखाकर या वर्णन करके उसे दिया जा रहा है तब तक स्वीकार नहीं कर लेना चाहिये जब तक वह स्वयं उसकी सत्यता तथा वास्तविकता से ठीक प्रकार आष्वस्त न हो जाये।

2. ज्ञान की सृष्टि और खोज संबंधी कार्य में यद्यपि ब्रूनर ने एक विद्यार्थी को उचित स्वन्तत्रता प्रदान कर केन्द्रीय भूमिका निभाने के लिये आमंत्रित किया परन्तु यहाँ उसने विद्यार्थी विषेष को उसके उद्देष्य के पूर्ति में समूचित सहायता प्रदान किये जाने के संदर्भ में माता–पिता, अध्यापकों तथा अन्य गुरूजनों की भूमिका को भी नहीं भुलाया। इस संबंध में उसने कहा कि विद्यार्थी अपनी ज्ञान सृष्टि या खोज के कार्य में सदैव अकेला ही लगा रहे यह बात नहीं है। जो ज्ञानवान है उनके द्वारा उसे अपने इस कार्य में उपयोगी सहायता तथा मार्ग दर्षन का प्रदान किया जा सकता है। फलस्वरूप अपने द्वारा प्रतिपादित 'खोज अधिगम' (क्पेबवअमतल स्मंतदपदह) संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान में ब्रुनर ने ये प्रावधान रखा कि षिक्षक द्वारा अपने संप्रत्यय अनुदेषन में विद्यार्थी के सामने कुछ उदाहरण रखे जायें और विद्यार्थी उन उदाहरणों

के प्रति अपनी सक्रिय अनुक्रिया व्यक्त करते हुए अपने स्वयं के प्रत्यनों से संप्रत्यय विषेष के बारे उपयुक्त तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकें या उचित निष्कर्ष निकाल सकें। ब्रुनर ने इस संबंध में यह भी कहा कि ज्ञान सृष्टि या खोज के अपने इस कार्य में विद्यार्थी दो तरह से आगे बढ़ सकते हैं। एक में वह पूरी तरह आत्मनिर्भर रहते हुए अपने वातावरण के साथ अन्तःक्रिया करते हुए और संबंधित क्रियाओं को अपने ही ढंग से संपादित करते हुए नजर आ सकते हैं तो दूसरे में, जिसे ब्रुनर ने निर्देषित खोज का नाम दिया, बालक को उसके उद्देष्य पूर्ति में अध्यापक तथा गुरूजनों से भी समुचित सहायता एवं मार्गदर्षन प्राप्त हो सकता है। इस तरह ब्रुनर ने अपने समकालीन दोनों ही प्रकार की व्यक्तिक तथा सामाजिक विचारधाराओं को अपनी रचनात्मकतावाद में स्थान देने का प्रयत्न किया। कि ब्रुनर जो बालक को अपने ज्ञानार्जन में एक पूर्णरूप से आत्मनिर्भर, स्वतंत्र तथा सक्रिय अनुसंधानकर्ता, पूछताछ करने वाला या खोजी के रूप में देखना चाहता था आखिर उसने इस कार्य में फिर अध्यापक तथा गुरूजनों से सहायता या मार्गदर्षन प्राप्त करने की बात पर क्यों जोर दिया?

इस संबंधी में पहली बात तो यह थी कि खोज अधिगम (ज्ञान सृष्टि या खोज की प्रक्रिया) से संबंधित अपने अनुसंधान कार्य करते हुये ब्रूनर ने यह देखा कि बालाकों को अपने इस स्व–खोज पथ पर चलते हुये नवीन ज्ञान की सृष्टि या खोज में काफी व्यावहारिक अड़चने तथा कठिनाइयाँ आती है विषेषकर तब, जब खोज किये जाने वाले विषय संबंधी तथ्य, संप्रत्यय तथा सिद्धांत एक दम नये, कठिन तथा पेचीदा हों। दूसरी ओर (पियाजे से अलग चलते हुये) उसने यह पाया कि बालकों द्वारा अपने प्रयत्नों से होने वाली ज्ञान सृष्टि या खोज प्रक्रिया में सामाजिक अन्तःक्रियाओं तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुभवों द्वारा काफी प्रभावकारी भूमिका निभाई जा सकती है। अपने इस प्रकार के अध्ययन परिणामों पर प्रकाष डालते हुये उसने अपनी पुस्तक 'दी कल्चर ऑफ एजूकेषन' में लिखा है कि "संस्कृति हमारे मन का निरूपण करती है और यह हमें ऐसा उपकरण बॉक्स देती है जिससे हम केवल अपनी दुनिया की ही रचना नहीं करते बल्कि हमें स्वंय अपने बारे में धारणायें बनाने तथा शक्तियों को प्राप्त करनें में इससे सहायता मिलती है।

अधिगम या ज्ञान सृष्टि प्रक्रिया में संस्कृति और सांस्कृतिक अनुभवों के इस प्रकार में योगदान संबंधी ब्रूनर के विष्वास को एक ठोस आधार फिर तब प्राप्त हुआ जब उसने यह

पाया कि मानव मस्तिष्क का सूचना प्रक्रियाकरण संबंधी दृष्टिकोण यह स्पष्ट करने में असमर्थ रहता है कि इस संदर्भ में हमारा मस्तिष्क किस प्रकार से ज्ञान की रचना या सृष्टि करता है। फलस्वरूप ब्रूनर ने मस्तिष्क की प्रकृति और कार्यप्रणाली को सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में देखने व प्रयत्न करते हुये इस बात पर जोर दिया कि यद्यपि वस्तुओं और घटनाओं के अर्थ (उनसे संबंधित ज्ञान) हमारे मस्तिष्क में ही रहते हुए दिखाई देते है परन्तु वास्तव में उनका स्त्रोत तथा उनसे संबंधित ज्ञान व्यक्ति विषेष की अपनी संस्कृति और सामाजिक अनुभवों में छुपे रहते हैं। यहाँ अब अच्छी तरह समझा जा सकता है कि ब्रूनर द्वारा व्यक्त इस प्रकार के विचार किस तरह से यह कहते हुये नजर आते हैं कि ब्रूनर का रचनात्मकतावाद अपने में सामाजिक रचनात्मकतावाद को किस तरह आत्मसात किये हुये हैं।

इस प्रकार से पियाजे, व्यागोत्सकी, वोन ग्लेजरफील्ड तथा ब्रूनर ने अपनी–अपनी तरह से रचनात्मकतावाद की व्याख्या करके यह बताने की चेष्टा की कि बालक वैयक्तिक या समूह गत अधिगम परिस्थितियों में ज्ञान की सृष्टि या खोज करके आवष्यक अधिगम कैसे ग्रहण करते रहते हैं। देखने में ऐसा लग सकता है कि इन चारों के द्वारा प्रतिपादित रचनात्मकतावादी विचारधाराओं में बहुत अन्तर है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। सबका उद्देष्य एक ही है कि किस प्रकार बालक को उस रूप में देखा जाये कि वह ज्ञान की प्राप्ति स्वयं अपने प्रयत्नों से कर सके। जैसा ज्ञान किसी परिस्थिति विषेष में उसे चाहिये उसका रचनाकार या सजृनकार एवं स्वयं हो अब यह बात अलग है कि वह इस कार्य में बिना किसी सहायता के सफल हो जाये अथवा उसे अपना कार्य करने के लिये माता–पिता, अध्यापक, सहपाठी या अन्य गुरूजन (जो उसे सहायता देने के योग्य हों) की सहायता, निर्देषन या परामर्ष की जरूरत भी पड़ जाये। सीखने वाला कैसा है तथा जो कुछ सीखा जा रहा है उसकी प्रकृति कैसी है इन दोनों पर ही यह निर्भर करता है कि सीखने वाले के द्वारा अपने उद्देष्य की पूर्ति हेतु कोई सहायता किस रूप में ली जाये। जब अपने प्रयत्नों से किसी अधिगम के अर्जन (ज्ञान की रचना या सृजन) में अड़चन और कठिनाई अनुभव हो रही हो तो इस बात में ही समझदारी है कि दूसरों से आवष्यक सहायता या मार्गदर्षन प्राप्त कर लिया जाये। हाँ इस प्रकार की सहायता या मार्गदर्षन देने वाले और प्राप्त करने वालों के लिये यहाँ अब यह जरूरी हो जाता है कि वह अब इस बात का ध्यान रखें कि जितनी जरूरत हो उसी मात्रा में

इस प्रकार की सहायता या मार्गदर्षन से अपनी सार्थक भूमिका निभाई जाये ताकि रचनात्मकतावाद के असली उद्देष्य को पलीता न लग जाये। निष्कर्ष रूप से इस तरह यही कहा जा सकता है कि रचनात्मकतावाद तभी अच्छी तरह से व्यावहारिक और उपयोगी सिद्ध हो सकता है जब उसके व्यैक्तिक रचनात्मकतावाद तथा सामाजिक रचनात्मकतावाद से सम्बंधित दार्षनिक विचाराधाराओं का सुन्दर व्यावहारिक समन्वय देखने को मिले। दूसरे शब्दों में ज्ञान प्राप्ति हेतु रचनात्मकतावादी विचारधारा को अपनाते हुये हमें यह देखना चाहिये कि हम सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरणजन्य परिस्थितियों का इस तरह नियोजन एवं संगठन करें कि इनसे बालकों को ऐसी आवष्यक सहायता प्राप्त हो सके जिसका अच्छे से अच्छा उपयोग कर वे अपनी योग्यताओं और क्षमताओं के अनुरूप प्रयत्न करते हुये वांछित ज्ञान के रचना या सृष्टि सम्बंधी प्रयासों में रत रहकर अपने स्वयं के तथा समाज के विकास में भरसक योगदान कर सकें।

ब्रुनर और संप्रत्यय

जेरोम ब्रुनर ने संप्रत्यय का विकास का मॉडल प्रस्तुत किया जिसमें संप्रत्यय को महत्वपूर्ण स्थान दिया। उनके अनुसार मनुष्य अपने वातावरण से सांमाजस्य स्थापित करता है। इसलिए जीन पियाजे को ब्रुनर के विकल्प के रूप में चुना जाता है। ब्रुनर ने प्रतिनिधित्व को भी अपने सिद्धांत को महत्वपूर्ण स्थान दिया। प्रतिनिधित्व उन नियमों की व्यवस्था है जिनके द्वारा व्यक्ति अपने अनुभवों को भविष्य में आने वाली घटनाओं के लिए संरक्षित करता है। एक व्यक्ति विषेष के लिए उसके संसार का वातावरण ही प्रतिनिधित्व है। प्रतिनिधित्व एक दूसरे से पृथक तो हैं लेकिन संप्रत्ययों के साथ में जुड़े हुए भी हैं। यदि बच्चा किसी समस्या से घिरा है तो वह संप्रत्ययों द्वारा पुनरावृत्ति, मिलान और बेमिलान द्वारा एक दूसरे से स्वतंत्र रहकर प्रतिनिधित्व करता है।

ब्रुनर के संप्रत्यय के भाग

ब्रुनर ने संप्रत्यय को तीन भागों में बांटा है जो निम्न प्रकार है–

1. सक्रियता विधि ;म्दंबजपअम डवकमसद्ध
2. दृष्य प्रतिमा ;प्ववदपब डवकमसद्ध
3. प्रतीकात्मक या संकेत विधि ;लउइवसपब डवकमसद्ध

1. सक्रियता विधि ;म्दंबजपअम डवकमसद्ध **य**ह विधि 2 से 3 वर्ष की अवस्था तक चलती है। इसमें बालक शब्दहीन क्रियाओं के द्वारा अपने आप को व्यक्त करता है। जैसे भूख लगना, रोना, खेलना इत्यादि। भाषा का महत्व इस उम्र में न के बराबर होता है। और मानसिक क्रिया भी नगण्य होती है। इसमें बालक समझता, खेलता, पकड़ता, फेकता, और जमीन पर चीजों को पटकता है। इन क्रियाओं द्वारा बालक बाह्य वातावरण से संबंध स्थापित करता है।

2. दृष्य प्रतिमा ;प्ववदपब डवकमसद्ध इस विधि में बालक अपनी अनुभूति को अपने मन में कुछ दृष्य प्रतिमाओं के रूप में प्रकट करता है। इस अवस्था में प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से सीखता

है। इसमें सूचनाएं प्रतिबिम्बों की सहायता से बालक तक पहुँचती है। बालक चमक से प्रभावित होता है। इस कारण इस अवस्था को छायात्मक अवस्था भी कहते हैं। और ब्रुनर की यह अवस्था पियाजे की पूर्व संक्रित्यात्मक अवस्था से मिलती है।

3. प्रतीकात्मक या संकेत विधि ;लउइवसपब डवकमसद्ध इस विधि में बालक संकेतों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। साथ ही साथ बालक अपने अनुभवों को शब्दों में व्यक्त करता है। इसके अतिरिक्त प्रतीकों और तर्को का भी प्रयोग करना सीख जाता है। जैसे जोड़ करना, घटाना, भाग करना, गुणा करना इत्यादि कार्यों को सीख लेता है।

3.7 ईकाई सारांश/याद रखने योग्य बातें

- संप्रत्यय वस्तुओं या घटनाओं के सामान्य गुण को प्रकट करने वाला प्रक्रम है।
- संप्रत्यय का सम्बन्ध हमोर वास्तविक व काल्पनिक विचारों से होता है।
- संप्रत्यय हमारे दैनिक अनुभवों से सम्बन्धित होता है।
- ज्ञान और अनुभवों के साथ–साथ संप्रत्ययों में भी परिवर्तन होता रहता है।
- प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया में बालक को विभिन्न जैसे प्रत्यक्षीकरण, गुणों का विश्लेषण तुलना, पृथक्करण, सामान्यीकरण जैसी विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है।
- बाल्यावस्था में संप्रत्यय विकास को वंशानुक्रम परिवार का वातावरण, परिवार की आर्थिक स्थितियाँ सामाजिक स्थिति, विद्यालय, शिक्षक व समाज इत्यादि प्रभावित करते है।
- ब्रुनर ने सम्प्रत्ययों में सक्रियता विधि, दृष्य प्रतिमा और प्रतीकात्मक संकेत विधि को स्थान दिया है।
- जैरोम ब्रुनर के सम्प्रत्यय विकास के सिद्धांत को जीन पियाजे के विकल्प के रूप में चुना जाता है।
- प्रतिनिधित्व का ब्रुनर के सिद्धांत में महत्वपूर्ण स्थान है।

3.8 अपनी प्रगति की जाँच करें

;प्द्ध

1. संप्रत्यय किसे कहते हैं? संप्रत्यय की क्या विषेषताएँ हैं?
2. मानसिक प्रक्रिया में संप्रत्यय का निमार्ण किस प्रकार होता है?
3. बाल्यावस्था में संप्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कौन–कौन से कारक हैं?

;प्द्ध एक शब्द में उत्तर दें

1. किस विधि में बालक अपनी अनुभूति को अपने मन में कुछ दृष्य प्रतिमायें प्रगट करता है।

2. किस विधि में सूचनाएँ प्रतिबिम्बों की सहायता से बालक तक पहुँचती हैं तथा बालक चमक से भी प्रभावित होता है।

3. जीन पियाजे और जेरोम ब्रुनर की कौन सी अवस्थाएँ एक जैसी हैं?

3.9 नियत कार्य/गतिविधियाँ

एक षिक्षक को किन बातों को ध्यान में रखकर, छोटे बालकों द्वारा अमूर्त संप्रत्यय के सीखने को प्रोत्साहित करना चाहिए? इसकी सूची तैयार कीजिए।

3.10 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दु

ब्रुनर के विचारों का वर्णन करें कि एक बालक में संप्रत्यय संबंधी विकास किस प्रकार होता है?

चर्चा के बिन्दु .....
.....
.....

स्पष्टीकरण के बिन्दु .....
.....
.....

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

शुक्ल, ओ.पी (2014). षिक्षा मनौविज्ञान, भारत बुक सेंटर, नई दिल्ली।

सिंह अरूण कुमार (2009). **षिक्षा मनौविज्ञान,** भारती भवन पब्लिषर्स, पटना।

मंगल एस.के., मंगल उमा (2014). विद्यार्थी, अधिगम एवं संज्ञान टंडन पब्लिषर्स, लुधियाना।